CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

16.2

# कवि परिपाटी

2260

"भावमय संसार का एक भावमय संसारी भावमय भगवान की सद्भावना में जिस शब्दब्रह्म की प्रतिष्ठा करता है वही सत्य है, वही कविता है।"

श्री दिवाकर 'मणि'
त्रिपाठी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

( स्वर्गीय 'प्रसाद' जी की पुण्य स्मृति में )

# कवि परिपाटी

लेखक
श्री दिवाकर 'मणि'
त्रिपाठी

प्रकाशक
विद्याभास्कर बुकडिपो, चौक, काशी
साहित्य सेवा सदन, गोपालमन्दिर, काशी

स्वतंत्र भारत दिवस
( १५ अगस्त सन् १९४७ )

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथम संस्करण

श्रावण, संवत् २००४

मूल्य ४)

डाक व्यय अतिरिक्त

सर्वाधिकारी लेखक

हिन्दी साहित्य परिषद, गोवर्धन सराय, काशी से मनीआर्डर द्वारा मूल्य और डांक व्यय भेज कर पुस्तकें प्राप्त की जा सकेंगी।

[ कृपया जवाबी कार्ड पर पत्र लिखें, यदि आप उत्तर अवश्य चाहते हैं ]

लेखक का पता :—

C ४/३६४, गोवर्धन सराय

काशी

मुद्रक—पी० घोष, सरला प्रेस, बाँसफाटक, बनारस।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नामशेष जयशङ्कर 'प्रसाद'

के

श्री चरणों में सादर समर्पित

'दिवाकर मणि'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारती की सेवा में

भारत की स्वतंत्रताप्राप्ति के मङ्गलमय क्षण की स्मृति में

श्री..................................................

..................................................

को कोमल उपहार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# प्रकाशकीय

प्रस्तुत ग्रन्थ के......पृष्ठों में केवल सात अध्याय हैं; कवि और काव्य, शब्द और अर्थ कविता की चोरी, मङ्गलवाद, कवि के देश में, कवि-शिक्षा, कवि-कोष। किन्तु इन सातों प्रकरणों में ही कवि और कविता से सम्बन्ध रखने वाले सभी विषय आ गये हैं। 'कवि क्यों कविता करता है ?" यह आज के विद्यार्थियों का साधारण सा प्रश्न है। अब तक जो रीति ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं वे इसका उत्तर न देकर प्रायः काव्य-लक्षण, काव्य-हेतु, काव्य-भेद आदि का विवरण देते चले आये हैं। 'कवि ग्रन्थ के आदि में मंगल का निबन्ध क्यों करता है ?' यह भी आज के विद्यार्थियों का एक स्वाभाविक प्रश्न है। किस ग्रन्थकार ने आज तक इसका समुचित उत्तर दिया है ? किसी ने नहीं। कवि-परिपाटी में यही विशेषता है कि किसी भी विषय को लिखते समय लेखक स्वयं एक विद्यार्थी सा बन गया है और इसीलिए उसका प्रत्येक विवेचन वैज्ञानिक और प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी मतों से सम्मत है। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि हिन्दी साहित्य में यह अपने विषय का अकेला ग्रन्थ है।

कवि-परिपाटी के 'कवि और काव्य' को पढ़कर पाठकों की एतद्विषयक सभी संभाव्य जिज्ञासाओं की परम तृप्ति होगी। सम्पूर्ण साहित्य की मूल भित्ति शब्द और अर्थ है। इस ग्रन्थ के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



'शब्द और अर्थ' को पढ़ लेने पर शब्दों की सामर्थ्य, उनका उचित प्रयोग, दोष-गुण, रस, छन्द आदि विषयों में कुछ भी जानना शेष नहीं रह जायगा। 'कविता की चोरी' के पढ़ने से मालूम हो जायगा कि कवि दूसरों के पद को, पदांश को, शब्द को, वाक्य को, अर्थ को, भाव को कैसे चुरा लेते हैं? एक कवि दूसरे की कविता का अन्यथाकरण द्वारा कैसे अपना लेता है? कविता की चोरी का अर्थ क्या है? किस प्रकार की चोरी को चोरी कह सकते हैं और किसे नहीं? आज आये दिन कविता की चोरियाँ जो होती हैं उनका कारण क्या है? आदि—आदि। मंगलवाद भी हिन्दी के लिए अछूता विषय है। मंगलवाद पर संस्कृत के तर्कशास्त्रियों में जो शास्त्रार्थ हुए हैं उनसे बिलकुल भिन्न कवि-परिपाटी के मंगलवाद का रहस्योद्घाटन है। संस्कृत नैयायिकों के अनुसार विघ्नों के विनाश के लिए मंगल किया जाता है। लेकिन कवि-परिपाटी में लेखक का कहना है कि कवि अपने और पाठक के मन को समाधि की अवस्था में लाने के लिए तथा बुद्धि को विशुद्ध करने के लिए ही मङ्गल-पाठ करता है। पाठक स्वयं विचार करें कि कौन ठीक कहता है। कवि के देश और जन-साधारण के देश में कुछ न कुछ अवश्य अन्तर है। बहुत सी ऐसी बातें हैं जो सत्य होते हुए भी नहीं कही जातीं, कुछ ऐसी बाते हैं जो असत्य होते हुए भी कही जाती हैं, कुछ ऐसी बातें हैं जिनके कहने का नियम है, कुछ ऐसी बातें हैं जो ऐसे भी कही जाती हैं और वैसे भी; वे क्या हैं? कवि के देश में कौन-कौन से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



पदार्थ किस-किस रंग के स्वीकार किये गये हैं ? कवि की दृष्टि में कौन तीक्ष्ण, कौन गुरु, कौन स्थिर, कौन अस्थिर आदि हैं ? किन पदार्थों के वर्णन में कवि को क्या-क्या कहना चाहिये ? स्त्री और पुरुषों के किस अंग की उपमा किन पदार्थों से दी जा सकती है ? उपमाएँ कैसे-कैसे दी जाती हैं ? किन-किन कारणों से उपमा दूषित हो जाती है; आदि-आदि इस प्रकरण में पढ़िये। जो स्वर्ग-मर्त्य-पाताल आदि सम्पूर्ण जगत के ज्ञान राशि का संचित कोष हो वही कवि के लिए उपयुक्त कोष है; केवल शब्द-कोष नहीं। ऐसे कोष की ओर आज तक किसी का भी ध्यान नहीं गया। 'कवि-कोष' इसी अभाव की पूर्ति करता है। यह कोष बहुत विस्तृत था। कागज के अत्यन्त अभाव के कारण इसे संक्षिप्त करने में लेखक को दुबारा परिश्रम करना पड़ा अन्यथा यह ग्रन्थ अपने विस्तार के कारण न जाने कब प्रकाशित हो सकता। इसलिए हमने विचार किया है कि 'कवि-कोष' एक स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशित किया जाय। यदि सहृदय पाठकों ने इस ग्रन्थ का उचित सत्कार किया तो हम प्रोत्साहित होंगे और फलतः कवि-कोष' के प्रकाशन से साहित्य और साहित्यकारों की असाधारण सेवा कर सकेंगे।

इतने धुरन्धर विद्वानों की सम्मतियों के रहते हुए इस ग्रन्थ के विषय में अधिक कुछ कहना मेरी धृष्टता होगी। लेखक का प्रयास स्तुत्य है अथवा निंद्य इसका निर्णय पाठक स्वयं करेंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



इतना मैं अवश्य कहूँगा कि इस ग्रन्थ के प्रकाशक की पदवी प्राप्त कर मैं अपने को धन्य समझता हूँ। यद्यपि मैं नाममात्र का ही प्रकाशक हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक से हिन्दी-जगत पूर्वपरिचित है। लेखक की पूर्व प्रकाशित आग-पानी आदि पुस्तकों से उनकी कीर्ति की दुन्दुभी दिशाओं में पहले से ही बज रही है। लेखक का आग्रह है, न जाने क्यों, कि उनके नाममात्र का परिचय दिया जाय; अधिक से अधिक उन्हें स्वर्गीय 'प्रसाद' जी का एकलव्य कहा जा सकता है। इसलिए मैं विवश हूँ।

देवेन्द्रचन्द्र विद्याभास्कर,

प्रकाशक—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# संक्षेप में कुछ सम्मतियाँ

Minister of Education & Finance,
United Provinces

लखनऊ, २० फरवरी १९४७.

प्रिय दिवाकर जी,

जिस उद्देश्य से आपने पुस्तक लिखी है उसमें मुझे स्वारस्य है। इस प्रकार की कुछ बातों की ओर मैंने अपनी पुस्तक भाषा की शक्ति में संकेत भी किया है। मेरी समझ में ऐसी पुस्तक की आवश्यकता है।

भवदीय—
ह० सम्पूर्णानन्द।

.........मेरा सभी कवियों और साहित्य के विद्यार्थियों से अनुरोध है कि वे कवि-परिपाटी को ध्यान से पढ़ें। इससे उनका कल्याण होगा। यदि वे निविड़ अन्धकार में हैं तो यह निर्मल ज्योत्स्ना है, यदि वे मोह में हैं तो यह ज्ञान की मञ्जूषा है और यदि उन्हें दिग्भ्रम है तो यह ध्रुवतारा है। लेखक ने कहीं भी न तो प्राचीनता के प्रति पक्षपात किया है और न नवीनता का विरोध। इसमें उन सभी तत्वों का वैज्ञानिक विश्लेषण है जो कवि के लिए आवश्यक और उपयोगी हैं। मुझे विश्वास है कि इस ग्रन्थ के प्रकाशन से विज्ञ समाज लेखक को आशीर्वाद देगा, कवि समुदाय आदर प्रदान करेगा और विद्यार्थी वृन्द लाभान्वित होगा। कवि-परिपाटी को विद्यालयों में स्थान मिलना चाहिये।

४ फाल्गुन कृष्ण, २००३.          ह० अखौरी गङ्गाप्रसाद सिंह।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



फा० शु० २ सं० २००३,
काशी ।

श्रीमन्माध्वसंप्रदायाचार्य्य दार्शनिकसार्वभौम—
साहित्यदर्शनाद्याचार्य न्यायरत्नतर्करत्न—
गोस्वामि दामोदर शास्त्री ।

पण्डित दिवाकरमणेः कविपरिपाटी समुपस्कार विषयको यत्नः सर्वपथीनोपकारं संपादयिष्यतीति बाढं विश्वसिति ।

ह० दामोदर गोस्वामी ।

हिन्दी साहित्यकारों की वर्तमान प्रगति को देखते हुए कहना पड़ता है कि वे दूसरों के द्वार खट-खटाकर उनका महत्व बढ़ाते हैं। उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं कि उनके पूर्वजों ने उनके लिए ऐसा भाण्डार रख छोड़ा है जिसकी तुलना सारे संसार की समष्टि नहीं कर सकती। 'कवि-परिपाटी' में उन आत्मविस्मृतों को उचित सम्मति दी गयी है। वास्तविक काव्यलोक में जाने के लिए 'कवि-परिपाटी' एक प्रशस्त मार्ग है। कवि, काव्य और काव्योपयोगी सभी विषयों का ऐसा प्रतिपादन मैंने अन्यत्र कहीं नहीं देखा है। प्राचीनों की परम्परा को स्पष्ट करते हुए उनका वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। यथार्थ को उपस्थित करने की शैली में विशेष आकर्षण है। उक्त ग्रन्थ की एक-एक पंक्ति ध्यान से पढ़ने और मनन करने की वस्तु है। प्रत्येक कवि को चाहिये, आत्मज्ञान के लिए इसका अध्ययन करे। मुझे विश्वास है कि सभी विद्वान लेखक के ऐसे पवित्र प्रयास की प्रशंसा करेंगे। विद्यालयों ने यदि इसे पाठ्य पुस्तक निर्वाचित किया को कल्याण ही होगा।

ह० पण्डित त्रिभुवननाथ मिश्र,
व्याकरण-साहित्य-मीमांसा—आचार्य,
वेदान्त-शास्त्री ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



.........हिन्दी काव्य के वर्तमान व्यक्तित्व में यौवन के उद्दाम उत्साह और ऊँची-ऊँची उमङ्गों की बाढ़ है। ऐसी अवस्था में संयम की विशेष अपेक्षा है। वेगवती धारा ने यदि कूलों के बन्धन में बँधकर चलना सीख लिया तभी कल्याण होगा। आज 'कवि-परिपाटी' की नितान्त आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति सुयोग्य लेखक ने बड़ी ही सफलता पूर्वक की है। आशा है, हिन्दी के विद्वान इसका उचित सम्मान करेंगे।

ह० नृसिंहनाथ त्रिपाठी, व्याकरणाचार्य, लेक्चरर।
चिरगाँव, १६. २. ४७.

.........मैं हृदय से 'कवि–परिपाटी की सफलता चाहता हूँ।
ह० मैथिलीशरण गुप्त।
बांकीपुर पटना।
२२. ३. ४७

मान्यवर महोदय,

.........आपने सचमुच घोर परिश्रम किया है। आपकी मननशीलता धन्य है। हिन्दी साहित्य में आपकी यह पुस्तक अपने विषय की अकेली होगी।......यद्यपि परिपाटी-परिपालन की प्रवृत्ति आज के युग में कहीं नजर नहीं आती तथापि आपका परिश्रम बहुतों के लिए ज्ञानाञ्जन सिद्ध होगा।......पुस्तक स्वयं ही महत्व-पूर्ण है। उसकी लोकप्रियता भी स्वयंसिद्ध है।...... सच्चे साहित्य मर्मज्ञ उसका आदर करेंगे और आपके अथक परिश्रम एवं गम्भीर स्वाध्याय को मुक्तकण्ठ से सराहेंगे। आपके गवेषणा-परायण धैर्य का अनुमान करके आपके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है। आपने हिन्दी का बड़ा उपकार किया।......एक साधारण साहित्यसेवी के नाते मैं आपका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। परमात्मा आपसे और भी ऐसे सत्कार्य कराये।

ह० शिवपूजन सहाय, सम्पादक—'हिमालय'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



कविवर दिवाकर 'मणि' ने अपनी 'कवि-परिपाटी' शीर्षक क्रान्तिकारी रचना में जिस दिशा की ओर संकेत किया है वह पूर्वोदित ज्ञान-भास्कर का केन्द्रस्थल है जिसमें आसपास की अन्य दिशाओं को भी आलोकित करने की क्षमता है। वह वर्तमान वादप्रतियोगिताओं का स्वागत करती है और उन वादों के नाम पर मिथ्याचारिणी तमिश्रा का हरण भी करती है। आँखों पर पट्टी बाँधकर 'छायावाद' की ओर उछल-कूद मार खिलवाड़ खेलने वालों पर शासन करते हुए उन्हें सत्पथ प्रदर्शित करने की क्षमता जिसमें है उसमें प्राचीन रीतिकालीन आचार्यों के 'मतपुष्टि' की प्रखर प्रतिभा भी पूर्णरूप से प्रदीप्त है। 'प्रगतिशीलता' के मदांध पुजारियों के लिए उनके आगे से अज्ञान का आवरण हटाकर वास्तविक प्रगति की बोधगम्य भावनाओं का उदय जहाँ है वहीं मर्यादित छन्द-प्रबन्ध के पुष्पों को गूँथने वाली सूचिका भी है जो उच्छृङ्खल, अशिक्षित एवं नाम के भिखारी कोरे कविनामधारी तुक्कड़ों को चुभेगी। यदि वे इसकी चेतावनी स्वीकार करते हुए सावधान हो गये तो उनका कल्याण है अन्यथा 'राष्ट्रभाषा-मंदिर' के यशलोलुप पुजारियों द्वारा मन्दिर का शृङ्गार न होकर अहित ही होगा. इसमें सन्देह नहीं।

कवि दिवाकर 'मणि' ने युग की आवश्यकता के अनुकूल अपना पग बढ़ाया है। ऐसे ही गुरुग्रन्थ की आज के काव्य-निर्माताओं एवं शिक्षा-संस्थाओं को बड़ी आवश्यकता है। हमें हर्ष है कि हमारे मित्र कवि इस दिशा में कृतसंकल्प हैं और सफल मनोरथ भी। साहित्य संसार स्वयं उनकी कृति का मूल्य निर्धारित करके रहेगा, इसमें रत्तीभर सन्देह नहीं।

कैलास, बैकुण्ठधाम
काशी।
शिवरात्रि सं० २००३

ह० वेणीराम त्रिपाठी
श्रीमाली।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



"पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति"

पण्डित दिवाकर 'मणि' त्रिपाठी का प्राचीन कवित्व-परिपाटी का संरक्षणप्रयास स्तुत्य है। भारतीय कवियों के कवित्व-प्रसार पर आध्यात्मिकमूलता का ही छाप प्रधानतया दीख पड़ता है। भारतीय संस्कृति का जागरण ही भारतीय कवियों का प्रधान कर्तव्य रहा है और होना चाहिये। प्राचीनाचार्यों की चलायी पद्धतियों की रक्षा के लिए प्रयत्न करना ही भारतीयता का प्रतीक होना चाहिये। इसके लिए प्रयत्नशील 'मणि' जी को मैं हृदय से उत्प्रेरित करता हूं और शुभाशीर्वाद देता हूँ कि ये अपने प्रयत्न में सफल हों। मैं अनुरोध करता हूँ कि प्रत्येक कवि 'कवि-परिपाटी' का अध्ययन करे। इसमें काव्योपयोगी सभी विषयों पर गम्भीर विचार किया गया है। विद्यार्थियों को इससे अत्यधिक लाभ होगा। मैं इस ग्रन्थ की ओर शिक्षा-विभाग का ध्यान आकर्षित कर चाहता हूँ कि इसे पाठ्य-पुस्तकों में स्थान मिले।

ह० गोपालशास्त्री, दर्शनकेशरी।

सौर तिथि ६।११।२००३

मीठापुर, पटना।
२८-२ ४७

प्रियवर,

साहित्य के स्रष्टा जब अपना काम कर गुजरते हैं तब साहित्य के इञ्जीनियर आते हैं और वे उन तमाम रीतियों, कौशल और कारीगरी के तरीकों को ढूढ़ते हैं जिनके द्वारा साहित्य में सौंदर्य उत्पन्न हुआ है। यह काम कर लेने पर वे फैसला देते हैं कि आगे के साहित्यकारों को भी इन्हीं नियमों को बरतना चाहिये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



क्योंकि पहले के साहित्यकारों ने इन्हें ही बरत कर साहित्य को सुन्दर बनाया है। मेरे जानते 'कवि-परिपाटी का निचोड़ यही है।......

ह० 'दिनकर'

इधर दशाब्दियों से रीति ग्रन्थों के पठन-पाठन का क्रम ही बन्द सा हो गया है। आपने यह बहुत अच्छा किया जो काव्य-रीति के आवश्यक अङ्गों को सम्मुख रखा। इससे कवियों का बड़ा हित होगा और वे बहुत सी भद्दी भूलों से बचेंगे। इसके लिए आप धन्यवाद के पात्र हैं।

ह० गयाप्रसाद शुक्ल 'स्नेही'।

......'कवि-परिपाटी' मनन और अध्ययन की वस्तु है। इससे मुझे हार्दिक सन्तोष हुआ। आजकल हिन्दी साहित्य में ऐसे ग्रन्थ की सविशेष आवश्यकता थी जिससे कवि और कलाकारों को काव्य के रहस्य और कवि की मर्यादा का आवश्यक ज्ञान प्राप्त हो। इसमें काव्य की उचित मीमांसा की गयी है। प्रत्येक तत्व वैज्ञानिक भित्ति पर स्पष्ट किया गया है। मुझे पूरा विश्वास है कि हिन्दी के कवियों और काव्य-विद्यार्थियों का इस ग्रन्थ से अतुल कल्याण होगा। शिक्षा-विभाग के अधिकारियों से मेरा अनुरोध है कि वे ऐसे ग्रन्थ को पाठ्य पुस्तकों में स्थान दें।

२९. २. ४७. ह० रामगोविन्द त्रिवेदी,

भू० पू० सम्पादक आर्यमहिला, विश्वदूत, सेनापति, गङ्गा आदि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# पन्द्रह अगस्त सन् ४७ का एक दिन

आ रहा है। एक दिन ऐसा आ रहा है जिसका दर्शन साधक और सेवक पहले ही अपने अपने हृदय में कर चुके हैं। कवि और आलोचक शब्द चित्रों में उसका रूप देख चुके हैं। सभी सजग मनुष्य उसे कल्पना में देख कर स्थिर रूप दे चुके हैं। इस प्रकार आनंदोत्सव आरंभ हो चुका है। एक दिन पूर्णाहुति होगी। भीतर की चीज़ बाहर फैल जायगी। एक की वस्तु लोक की बन जायगी। कुटुम्ब की सत्य कल्पना विश्व की सत्य घटना बन जायेगी। हमारी अनुभूति तुम्हारी बन जायेगी। सभी का आत्मविस्तार होगा। सभी एक उत्सव मनायेंगे अपने अपने ढंग से, स्थान, काल और व्यक्तित्व के अनुसार।

प्रिय सखा,

तुम मेरी भाषा जानते हो।...............

*एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुष्ठु प्रयुक्तः।*
*स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति ॥*

एक शब्द का पूरा ज्ञान—उसका पूर्ण अर्थज्ञान रस मग्न कर देता है। ऐसा सरस व्यक्ति जब उस एक शब्द का सुन्दर और सफल प्रयोग करता है तब उस प्रयोगविज्ञान को देखकर सहृदय मुग्ध और चकित हो जाता है। वह प्रयोक्ता यदि कवि होता है तो कालिदास, तुलसीदास अथवा जयशंकर 'प्रसाद' का दर्शन होता है। वह प्रयोक्ता यदि भाषा का वैयाकरण होता है तो पाणिनि और पतंजलि बन जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



वह प्रयोक्ता जिस किसी भी क्षेत्र में जहाँ कहीं भी रहता है उसे शब्द-साधना के बल से उसी क्षेत्र में वहीं पर पूर्ण तृप्ति मिल जाती है।

व्यवहार में सभी लोग देखते हैं—शिष्ट और सभ्य कौन होते हैं? शान्त और स्वस्थ कौन हैं? जो 'मन-क्रम-वचन' ( इच्छा, क्रिया, और ज्ञान ) से एक होते हैं।

संसार में दुःखी और अशांत कौन हैं? जो वचन और प्रयोग में मेल नहीं निभा पाते। वे कहते हैं कुछ और और करते हैं कुछ और।

अतः एक मात्र सरल, अनुभवसिद्ध और व्यावहारिक मार्ग है वाणी का संयम, शब्द की चिंता, नाम की साधना, साहित्य की सेवा।

ऐसा मितभाषी सेवक किसी से भी कुछ अपेक्षा नहीं करता, आत्म-विस्तार में ही तन्मय हो जाता है, मौन हो जाता है। वह संस्कृत पक्ति को मातृभाषा में लिखता है—

मैंने गुरुजनों, शास्त्रों और लोगों के व्यवहार से एक शब्द सीखा है, उसका पूरा अर्थ भी लग गया है, उसका अच्छा ज्ञान हो गया है। जब मुझसे उसका प्रयोग भी देश, काल, पात्र के अनुसार ठीक और सुन्दर होने लगा तो वही एक शब्द मेरे पूर्ण जीवन के लिए कामधेनु बन गया। उसीसे अपने हृदय और बुद्धि—स्वर्ग और लोक दोनों के अनुभवों को मैं स्पष्ट कर लेता हूँ। दो के भेद-भाव और ऐक्य को जान लेता हूँ। अब शब्दों के जाल में नहीं फँसता। विरोधी वचनों में भी समन्वय और मेल की—अपनी एक बात पा जाता हूँ।

यही एक शब्द स्वतन्त्रता और शांति का मूल है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



प्रिय दिवाकर 'मणि',

कवि परिपाटी ऐसा ही एक शब्द है। आपने उसका ज्ञान और प्रयोग दोनों ही अपने ग्रन्थ द्वारा हिन्दी जगत् को भेंट किया है। स्वतंत्र देश को अपनो कवि-परिपाटी का पूरा ज्ञान होना चाहिए।

अतः आपने १५ अगस्त का अभिनंदन अनूठे ढंग से किया है। जिसे अपने भारतीय साहित्य के समर्थ प्रतीकों और राष्ट्र-भाषा के स्वस्थ भावों से सबल बन कर विदेशी साहित्य और भाषा की दासता से मुक्त होने की इच्छा है वह आपके कवि-परिपाटी नामक ग्रन्थ का अवश्य अध्ययन करे; मेरा अनुरोध है। इस ग्रन्थ से प्रत्येक साहित्य-प्रेमी और विद्यार्थी को सहायता मिलेगी। पुस्तकालय और विद्यालय दोनों ही क्षेत्रोंमें इसका अभिनंदन होगा।

आचार्य शुक्ल जी नें एक बार कहा था कि हिन्दी जगत् में विदेशीपन कम करने का एक ही उपाय है; अपनी संस्कृति, परंपरा और निधि का अधिकाधिक ज्ञान। आलोचना के क्षेत्र में वह अमूल्य कार्य करने में आप सर्वप्रथम और समर्थ हैं इसमें संशय नहीं।............

—पद्मनारायण आचार्य

(प्राध्यापक, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

मंत्री—*तुलसी मीमांसा परिषत्, काशी।*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

## विषय-क्रम ।


| | | |
|---|---|---|
| | | पृष्ठ |
| १. | कवि और काव्य | १ |
| २. | शब्द और अर्थ | [illegible] |
| ३. | कविता की चोरी | [illegible] |
| ४. | मङ्गलवाद | [illegible] |
| ५. | कवि के देश में | [illegible] |
| ६. | कवि-शिक्षा | २०५ |
| ७. | कवि-कोष | [illegible] |
| ८. | विषय-क्रम-सूची | [illegible] |


Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# विषय-क्रम ।


| | पृष्ठ |
|---|---|
| १. कवि और काव्य | १ |
| २. शब्द और अर्थ | १३ |
| ३. कविता की चोरी | १११ |
| ४. मङ्गलवाद | १४६ |
| ५. कवि के देश में | १५६ |
| ६. कवि-शिक्षा | २०५ |
| ७. कवि-कोष | २३७ |
| ८. विषय-क्रम-सूची | २८७ |


Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# निवेदन

स्वाध्याय के क्रम में मुझे श्री वाशिङ्गटन इर्विङ्ग का अधोलिखित गद्य खण्ड पढ़ने को मिला :—

"I should almost tremble to see it meddled with during the present conflict of tastes and opinions. Some of the advisers are no doubt good architects, that might be of service, but many, I fear, are mere levellers, who when they had once got to work with mattocks on this venerable edifice, would never stop until they had brought it to the ground, and perhaps burried themselves amonng the ruins."

जब तक हमारा प्राचीन मन्दिर निवास के योग्य है तब तक उसमें हस्तक्षेप करना उचित नहीं। अपनी-अपनी राग और अपनी-अपनी बाँसुरी के वर्तमान युग में जब कोई इसे आमूल ध्वस्त कर उद्धार की योजना करता है, मैं काँप जाता हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सुधारवादियों में से कुछ सफल शिल्पी भी हैं और वे उचित ही करेंगे, फिर भी अधिकांश वे ही हैं जो बनाना नहीं बल्कि बिगाड़ना ही जानते हैं। यदि उन्होंने अनधिकार चेष्टा की तो मुझे भय है कि यह पूज्य मन्दिर ध्वस्त होकर ही रहेगा और वे भी उसी में चकनाचूर हो जायँगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



इन भावनाओं ने मुझे 'कवि परिपाटी' लिखने को उत्प्रेरित किया। लिखने के पूर्व हृदय में कुछ प्रश्नोत्तर भी हुए। सारी शंकाओं का समाधान मैंने इस दृढ़ विश्वास पर कर लिया कि आधुनिक समाज यदि आस्तिक है तो अंधविश्वासी नहीं और यदि नास्तिक है तो मूढ़ाग्रही नहीं। प्रस्तुत पुस्तक में मैंने जो कुछ भी लिखा है, इसी विश्वास पर। कहीं भी मैंने अपने विचारों को अंधविश्वास और मूढ़ाग्रह से दूषित नहीं होने दिया है।

हमारे पास आज जो कुछ भी है, इसमें सन्देह नहीं कि वह अतीत का प्रसाद है। इसलिए उसका कृतज्ञ होकर उसकी महिमा का अध्ययन करना चाहिए। कुछ लोगों का कहना है कि अतीत वर्तमान से जलता है, आगे नहीं बढ़ने देता। लेकिन उनका कहना उचित नहीं। उन्हें भ्रम है। जो इतना उदार है कि उसका जो कुछ भी है हमारे लिए, जो इतना मुक्तहस्त है कि उसका चाहे जितना हस्तगत कर लेना केवल हमारी इच्छा, योग्यता और सामर्थ्य की अपेक्षा करता है और जो इतना महान् है कि उसने स्पष्ट शब्दों में कहा है—"पुत्रात् पराजयो द्वितीयं पुत्रजन्म" पुत्र से पराजित होने में वही सुख है जो पुत्र के उत्पन्न होने में, वही हमसे ईर्ष्या करेगा ! अतीत ने कब कहा है कि आगे न बढ़ो ? उसका आदेश है—मैंने सत्य का इतना अंश तुम्हारे लिए संचित किया है। उसका यथावश्यक उपयोग करते हुए भविष्य में वहाँ तक बढ़ते जाओ जहाँ तक जा सकते हो। उत्कर्ष में तुम स्वतन्त्र हो। इसलिए सत्य का वह विन्दु समझना होगा जो विना श्रद्धा और सहानुभूति के संभव नहीं। कोई परिपाटी का अर्थ नियम न समझे। मैं कविसमुदाय की अपेक्षित स्वतन्त्रता का समर्थक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



हूँ। मैं ही नहीं, बहुत कम ऐसे हैं जो इसके विरोधी हों। काव्य-प्रकाश के प्रारंभ में ही श्री मम्मटाचार्य ने लिखा है--नियति के नियमों से जो नियमित नहीं, आनन्द ही जिसका सर्वस्व है, नव रसों के अस्तित्व से जिसका लावण्य अवर्ण्य है, और जो कभी परतन्त्र नहीं, कवियों की उस वाणी की जय हो। काव्य-मीमांसाकार ने भी कहा है--'सारस्वतः स्वतन्त्रः स्यात्।' फिर भी मैं इसका अवश्य पक्षपाती हूँ कि किसी भी समुदाय के लिए पूर्व परिपाटी का परिज्ञान आवश्यक है। मेरा सभी साहित्यकारों से अनुरोध है कि वे प्राचीनता का अध्ययन करें, मनन करें और देखें कि वर्तमान युग क्या कोई भी युग उसका अनादर नहीं कर सकता।

प्रस्तुत पुस्तक में कवि और काव्योपयोगी तत्वों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। महाकवि कालिदास के शब्दों में--हमारे पूर्व पुरुषों ने हीरों में छेद कर रख छोड़ा है। मैंने तो अधिकतर उन्हें अपने सूत में गूँथ कर हार का स्वरूप दिया है। जो कुछ भी मेरी नवीनता है वह भी उन्हीं की देन है।

जिन विद्वानों ने अपनी बहुमूल्य सम्मतियाँ देकर मुझे अनुगृहीत किया है उनका मैं आभारी हूँ। विशेष कर माध्वसंप्रदायाचार्य, अनेक विषयों के सर्वाचार्य, न्यायरत्न तर्करत्न, आदि श्रद्धेय गोस्वामी दामोदर शास्त्रीजी की सहृदयता और गुणग्राहकता अन्तिम क्षणों में भी मेरे कातर प्राणों को प्रोत्साहित करती रहेगी। देवता के आशीर्वाद तो मिले ही साथ ही साथ वे अनेकानेक विरोध किये जाने पर भी पुस्तक के अग्रिम ग्राहक हुए। जिन सज्जनों ने इसके प्रकाशन का भार स्वीकार किया उनका मैं उपकार मानता हूँ। स्थानीय हिन्दी-साहित्य-परिषद के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सम्मानित सदस्य श्री सरयूप्रसाद जी जायसवाल का विशेष कृतज्ञ हूँ। उन सैकड़ों साहित्यानुरागियों को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने प्रकाशन के पूर्व ही इसके अग्रिम ग्राहक होकर सत्कार किया है। लेकिन इतना मैं अवश्य कहूँगा कि उन महानुभावों ने यदि शीघ्रता करने के लिए इतना आग्रह न किया होता तो पुस्तक किसी दूसरे रूप में ही सेवा में उपस्थित हुई होती। आशा करता हूं कि द्वितीय संस्करण में इससे अधिक सेवा कर सकूँगा।

—दिवाकर 'मणि'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री सरयूप्रसाद जी जायसवाल

आपकी सत्प्रेरणा से यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है।

लेखक आपका विशेष कृतज्ञ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# कवि और काव्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहा जाता है कि वे छः व्यक्ति थे लेकिन अंधे! विधाता की सृष्टि में हाथी का गौरव अनुपम है इसे वे जानते थे लेकिन उसका क्या स्वरूप है इसकी जिज्ञासा थी। यह समझने के लिए वे हाथी के निकट गये।

उनमें से एक हाथी के विशाल कवंध से टकरा गया। उसने हाथ से टटोल कर अनुभव किया और चिल्ला पड़ा—अरे मैं तो समझ गया। हाथी दीवाल की तरह होता है। दूसरा अपने मित्र की सचाई की जांच करने के लिए तत्पर हुआ। उसका हाथ हाथी के दाँत पर पड़ा; चिकना, कठोर नोंकीला! उसने कहा—तुम झूठ कहते हो। यह हाथी तो भाले की तरह है। तीसरा भी आगे बढ़ा। उसके हाथ सूँड़ पर पड़े। उसने कहा—तुम दोनों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



झूठ कहते हो। यह तो लम्बा, कोमल, टेंढ़ा-मेढ़ा साँप की तरह है। अब चौथा भी अपने को सँभाल न सका। उसने हाथी का पैर पकड़ा; रूखा, मोटा, लम्बा। उसने कहा—तुम सब बकते हो। हाथी पेड़की तरह होता है। पाँचवें का कान यह विवाद सुनते-सुनते पक गया। उसने हाथी के कान को हाथ से देखकर कहा—कुछ समझ भी हैं तुम लोगों को! देखते नहीं हाथी पंखे के सदृश है। अब छठें की भी बारी आयी। आतुरता से विवश वह केवल पूँछ तक पहुँच सका। उसने बड़े गर्व से कहा—जैसे कोई मोटा रस्सा हो वैसा ही हाथी है। फिर वे बड़ी देर तक परस्पर विवाद करते रहे। अन्त में किसी सज्ञान ने तथ्य निरूपण किया कि सभी ने ठीक कहा और किसी ने भी नहीं। कवि और कविता के विषय में भी ऐसे ही मत-मतान्तर हैं। कोई कहता है "कवतेऽसौ कविः" जो कविता करता है वही कवि है।

कोई कहता है—कवि अपने वक्तव्य से लोक के हृदय को प्रफुल्लित करता है।

कोई कहता है—कवि सत्य और यथार्थ को स्पष्ट करते हुए सजीव आनन्द का चित्रण करता है।

कोई कहता है—कवि अपनी काव्य-शक्ति से ऐसी घटनाओं का मनोहर उल्लेख करता है जिससे हमारी अन्तरात्मा को परम संतोष होता है।

कोई कहता है—कविकी व्याख्या काल्पनिक, असाधारण तथा आनन्ददायिनी होती है।

कोई कहता है—कवि नैतिक शिक्षा, मानवता और आनन्द का एक योग प्रस्तुत करता है।

कोई कहता है—कवि हमारी आत्मा को उन्नत तथा गौरव-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



पूर्ण बनाने के लिए अपना सर्वस्व निछावर कर प्रयत्नशील रहता है।

कोई कहता है कवि की लौकिक आँखों में तन्मयता का विशेषण होता है। उसकी तन्मय आँखें पृथ्वी से आकाश और आकाश से पृथ्वी की ओर डोलती रहती हैं। कल्पना अज्ञात तत्वों का भी बोध कराती है और कवि अपनी कुशल लेखनी से उनके वर्णनातीत वर्ण-चित्र प्रस्तुत करता है।

कोई कहता है—कवि अव्यक्त भावनाओं को व्यक्त मधुर स्वरूप देता है।

कोई कहता है—कवि अपनी कला से हमारे मानसिक विचारों को उत्तेजित करता है।

कोई कहता है—कवि की साधना सौभाग्य में हमारा विनोद करती है और दुर्भाग्य में आँसू पोंछती है!

कोई कहता है—कवि की अन्तरात्मा सांसारिकता में लिप्त रहती हुई भी असांसारिकता की ओर संकेत करती है।

कोई कहता है—कवि अपने कथन से आनन्द भी देता है और उपदेश भी। तब बड़ा कौतूहल होता है जब वह नासमझ बन कर समझाता है।

कोई कहता है—कवि देश-काल के परिवर्तन से उदासीन हो अक्षर तथा सार्वभौम भावनाओं का विवेचन करता है।

कोई कहता है - कवि सत् का चित् से चिन्तन करता है और साथ ही साथ अपनी व्यापक सहानुभूति से अलौकिक आनन्द का प्रसार करता है।

कोई कहता है—कवि अपनी कविता में जीवन के अत्यन्त मार्मिक और कोमल क्षणों का संग्रह करता है। ज्ञान के कुछ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



कठिन वृन्तों पर उसकी अनुभूतियों के सुरभित सुमन जब मुस्कुराने लगते हैं, वह उन्हें एकत्र कर सौन्दर्य के सूत में पिरो देता है जो सृष्टि का कण्ठहार हो जाता है।

कोई कहता है—कवि स्वयंभू है; बनाये नहीं जाते। इसी लिए उनकी कविता भी रचना नहीं हो सकती।

कोई कहता है—कवि अपनी ही तृप्ति के लिए कविता करता है—भले ही संसार का भी उपकार हो जाय।

कोई कहता है—कवि अपनी कविता की सञ्जीवनी से मृतकों में जीवन का संचार करता है।

कोई कहता है—कवि की कविता हमारे मौन की शान्ति, असन्तोष को तुष्टि और आनन्द की पुष्टि है।

*"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।"*

काव्य प्रकाश के रचयिता श्री मम्मटाचार्य का मत है—जहाँ शब्द और अर्थ दोष रहित हों, गुण सहित हों, अलंकार कहीं हों कहीं न भी हों उसे काव्य कहते हैं।

*"गुणालंकार सहितौ शब्दार्थौ दोषवर्जितौ।"*

श्री विद्यानाथ जी लिखते हैं—गुण और अलंकारों से युक्त निर्दोष शब्द और अर्थ काव्य है।

*"निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषणा।*
*सालंकार रसानेक वृत्तिर्वाक् काव्यनामभाक्॥"*

श्री जयदेव जी ने अपने चन्द्रालोक में कहा है—दोष रहित, लक्षणवती, रीति गुण, अलंकार और रसवती वाणी को काव्य कहते हैं।

*"साधु शब्दार्थ संदर्भ गुणालंकार भूषितम्।*
*स्फुट रीति रसोपेतं काव्यं कुर्वीत कीर्तये॥"*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



महाकवि वाग्भट्ट ने कहा है-गुण, अलंकार, रीति, रस सहित शब्दार्थ को काव्य कहते हैं।

*"अदोषौ सगुणौ सालंकारौ शब्दार्थौ काव्यम् ।"*

वामन जी के मत से दोष रहित, गुण और अलंकार युक्त शब्दार्थ को काव्य कहते हैं।

*"इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली ।"*

काव्यादर्श में कवि दण्डी ने कहा है—कवि जो अवच्छिन्न पदसमूह अपने इच्छित भाव के अनुकूल कहता है वही काव्य है।

*"रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम् ।"*

रस गङ्गाधरमें पण्डितराज जगन्नाथ जी कहते हैं—रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाले शब्द को काव्य कहते हैं।

*"रसात्मकं वाक्यं काव्यम् ।"*

साहित्य दर्पण में श्री विश्वनाथ जी कहते हैं—जिस वाक्य से रस की प्राप्ति हो उसे काव्य कहते हैं। रस का अर्थ है लोकोत्तर आनन्द।

शेली ने अपने 'ए डिफेंस आफ पोएट्री' में कहा है—जिन्हें हम कवि कहते हैं उन्हीं को भूतकाल में शास्त्रकार और भविष्य वक्ता भी कहते थे। कवि के कार्य दो भागों में विभक्त हैं। एक से ज्ञान, शक्ति और आनन्द का विस्तार होता है तथा दूसरे से सौन्दर्य एवं संगीत की महिमा की प्रतिष्ठा होती है।

विलियम बर्ड्सवर्थ का कथन है—यह न समझना चाहिये कि केवल तथ्यार्थ का बोध कराना ही काव्य है, बल्कि प्रकृति और जीवन का सामञ्जस्यप्रकाश ही उत्तम काव्य है।

जान मिल्टन ने सम्मति दी है—कविता को समझने के लिए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



पहले कवि को समझना होगा क्योंकि उसका जीवन स्वयं एक रहस्यमय काव्य है।

बेन जानसन अपनी 'डिसूकवरीज़' में कहते हैं—काव्य तो केवल रचना का प्रकारविशेष है। कवि सत्य का प्रतिबिम्ब अपने ढङ्ग से उपस्थित करता है इसलिए उसे अनुकर्ता और रचयिता दोनों कह सकते हैं।

एड्वांसमेण्ट आफ लर्निंङ्ग में लार्ड बेकन का मत है—आनन्द का प्रतिरूप प्रदान करने के लिए कवि जो प्रयत्न करता है वही काव्य है।

जी पटेनहम ने व्याख्या की है—कवि सत्य और यथार्थ के एकान्त में निहित आनन्द की जो प्रतिच्छाया चित्रित करता है वही काव्य है।

कवि और काव्य के उपर्युक्त लक्षणों में से एक भी ऐसा नहीं जो ठीक न हो पर एक भी ऐसा नहीं जो विवादग्रस्त न हो। किसी ने उचित ही कहा है—कवि और कविता की परिभाषा करना उतना ही कठिन है जितना जीव और जीवन की। लेकिन परिभाषा भाषा में भले ही न लिखी जा सके, कविता क्या है हम सभी मन में समझते हैं। हम नहीं कह सकते कि हवा किसे कहते हैं फिर भी हवा से भली भांति परिचित हैं। किसी पुष्पित उद्यान में जाते ही सुगंधि हमारा स्वागत करती है, हम प्रसन्न हो जाते हैं, हमारी उसकी न जाने कब की घनिष्ठता है, फिर भी हम नहीं बता सकते कि सुगंधि क्या है। हमारा हृदय एक सरोवर है, कविता की धारा आकर उसमें लहरें उत्पन्न कर देती है। हमारा हृदय एक स्वयंवर भवन है जहाँ भिन्न-भिन्न भाव किसी की प्रतीक्षा में बैठे रहते हैं; कविता स्वयंवरा सी मधूकमाला लिए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



रङ्गभूमि में आती है और अपने अनुकूल भावों का वरण कर उसमें हलचल उत्पन्न कर देती है।

किसी सीमा तक हम सभी कवि हैं क्योंकि हमारे भी हृदय है, हम भी अनुभव करते हैं और अपनी अनुभूतियों को अपनी शक्ति के अनुसार व्यक्त भी कर लेते हैं। लेकिन जिन्हें हम कवि कहते हैं उनमें और हममें अन्तर है। अन्नमय और प्राणमय आदि कोषों में यद्यपि वे हमारे ही समान हैं किन्तु उनका ज्ञानमय और आनन्दमय कोष हमारी अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत और गंभीर होता है। वे हमसे अधिक अनुभव करते हैं और हमसे अधिक सफलतापूर्वक अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करते हैं। उनकी अनुभूति, परमानन्द और कला की त्रिवेणी हमारे मरु में भी रसनिधि का सृजन करती है और हम बेसुध से उसमें तिरने लगते हैं। ऊर्बरा भूमि के श्यामल सौन्दर्य को, पार्वतीय उपत्यकाओं के एकान्त सौन्दर्य को, अन्तरिक्ष में छाये हुए रसधर के रसमय सौन्दर्य को, सुमनों के परागमय सुरभित सौन्दर्य को हम देख लेते हैं परन्तु कवि उन्हें देखता है, आनन्द से नाँच उठता है और चिल्ला-चिल्ला कर हमें भी आमन्त्रित करता है जिससे हम भी उस महोत्सव में सम्मिलित हो सकें। वह कहता है—तुमने देखा है अवश्य लेकिन एक बार फिर देखो और मेरी आँखों से देखो, भला होगा। तब हम समझने लगते हैं कि हमने देखा था लेकिन अन्धे की तरह। किसी कल-कल के अव्यक्त मधुर सौन्दर्य को हम सुन लेते हैं लेकिन कवि उसे सुनता है, मूर्च्छना की उन लहरियों में वह स्वयं एक लहर बन जाता है और हमसे अनुरोध करता है—तुम भी सुनो, एक बार फिर सुनो, मेरे कानों से सुनो और इस पयोनिधि की लहरों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



में हिलमिल हिलोर बन जाओ। कल्याण होगा। अब हम समझ पाते हैं कि हमने सुना था लेकिन बहरे की तरह। नाल महा-विस्तार में अलौकिक आलोक से आलोकित एक नक्षत्रलोक! अम्बर के तारों में कुछ खोजते-खोजते वह स्वयं खो जाता है। फिर वहीं से वह इसे बुलाने के लिए अपनी वाणी की अग्रदूती भेजता है; वह वाणी जो उसी की है और उसी की रहेगी। स्वर्ग में, नरक में, यहाँ या वहाँ, ब्रह्माण्ड के जिस किसी कोने में भी सौन्दर्य होगा कवि अपनी तन्मयता के बल पर ढूँढ़ निकालेगा और हमसे परिचित करायेगा। वह सौन्दर्य जिसकी सुगन्ध हमें और किसी तरह मिल ही नहीं सकती थी। कवि की चार आँखें, चार कान और चार हृदय होते हैं और वह चाहता है कि संसार को भी चार आँखें, चार कान और चार हृदय हो जायँ। वह तपस्या करता है, भगवान प्रसन्न होते हैं, फिर वह वर माँगता है कि संसार का कल्याण हो। वह अपने प्राणों के मधु और जीवन के रस से संसार के लिए एक अमर रसायन तैयार करता है, जिससे तीनों ताप आप से आप शीतल हो जाते हैं। वह अलौकिक है; उसके गान अलौकिक हैं, उसका ज्ञान अलौकिक है लेकिन वह लोक का है और लोक उसका। अपनी भाव-नाओं के मृणाल पर सलिल के स्तर के ऊपर वह एक 'कमल' है।

*इसी लोक में किन्तु अलौकिक सा कवि कोई प्राणी।*
*लोकोत्तर आनन्ददायिनी रचता रसमय वाणी॥*

भावमय संसार का एक भावमय संसारी भावमय भगवान की सद्भावना में जिस शब्दब्रह्म की प्रतिष्ठा करता है वही सत्य है, वही कविता है। वेद काव्य की रचना करने वाला भगवान भी तो स्वयं कवि है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

*'कविर्मनीषी परिभू स्वयंभू ।'*

वह अपने सङ्गीत की लहरियों को नक्षत्रलोक के आलोक-मण्डल में उस शुभग्रह के चरणों में समर्पित करता है जिसे वही देखता है और वही समझता है। उसके ललाट की अस्पष्ट रेखाओं में लिखित अव्यक्त चित्र की मधुर मूर्ति, उसकी कल्लोलिनी की चरम गति, उसके कृष्ण-शुक्ल पक्षमय मधुमास की पवित्र पूर्णिमा कहीं उस पार विराजती है। वह वहाँ पहुँच नहीं पाता इसीलिए गाता है।

जीवन के ज्वार और भाटा में महासागर के बीच वह अपनी नन्हीं सी नाव पर निश्चिन्त गुनगुनाया करता है। वेदना ही उसकी जीवनी है। आँखें बन्द कर वंद्य के चरणों में ध्यान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



लगाये वह आहें भरता है तब प्रश्वास के पवन से किसी की मुसकान के अमृतकुण्ड में छोटी-छोटी लहरियाँ उठने लगती हैं। इसके अतिरेक से जब उसे कम्प होता है तब जैसे कोई खिल-खिला कर हँस पड़ता है। अब वह अपने को सँभाल नहीं पाता और आँखें खोलकर उस अलौकिक सौन्दर्य का लौकिक प्रत्यक्षीकरण चाहता है। किन्तु असफल! वह फिर आँखें बन्दकर एक मधुर स्वप्न देखने लगता है—अलसतामरस से मृदुल चरण रजोराजि के पायन्दाज पर धीरे-धीरे…! वह कहता है मेरा हृदय कब का बिछा है! तनिक इसपर भी धीरे-धीरे मेरे देवता।

शंका होती है कि यदि उसका आराध्य वही कोई रहस्यमय है और वह जो कुछ कहता है, उसी की अभ्यर्थना में, तो फिर वह किसलय, कुसुम, चन्द्र, नक्षत्र और सागर आदि लौकिक पदार्थों का सम्मान करते हुए क्यों देखा जाता है। कारण यह है कि चन्दन के किसलय आराध्य के पगतल से, प्रातः, प्राची और रजोगुण उसके जावक से, गुलाब, बंधूक, विद्रुम, विम्ब उसकी पदलालिमा से, रवि-शशि-तारे उसके पदनख से, समीर उसके प्रश्वास सा, सागर उसके हृदय सा और योंहीं सृष्टि के सर्वोत्तम सौन्दर्य उस रूप माधुरी के कण हैं, इसीलिए वह उन्हें भी इष्ट का प्रसाद समझकर उनका आदर करता है। तन्मयता के एकान्त प्रदेश में जब कभी एक क्षण के लिए प्रियतम से मधुर मिलन हो पाता है, वह अपने भावों के कोण से जीवन की वीणा बजाने लगता है जिसकी मूर्छनाओं की धारा हर की जटिल जटा से छूटकर, रजत शैल पर छिटककर, छहर कर, सिमट कर किसी सुरसरि की तरह स्वर्ग को, मर्त्य को, पाताल को कल्पान्त तक पवित्र करती है। ऐसे कुछ क्षणों के अतिरिक्त शेष जीवन में तो वह केवल हा-हाकार ही करता रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



जड़जगत अन्तर्जगत की उन अनुभूतियों को समझने में भूलता है। वह सोचता है—कवि रसिक है, कलिका के परिमल-पराग पर वलि-वलि जानेवाला वही अलि। कवि वही पतङ्ग है, दीपशिखा पर अपने सर्वस्व की आहुति देने वाला। इसे भी किसी मधुवाला ने कभीं एक प्याला पिला दिया है, इसी से मतवाला हो गया है। इसके गान उसी लोक-सुन्दरी के रूप की अभ्यर्थना में, मधुकरियों की भीख माँगते समय और जीवन की एकान्त पगडण्डी पर अकेले चलते-चलते गाये जाते हैं। एक ओर इन्द्रिय-गम्य विषय संसार दूसरी ओर अतीन्द्रिय ब्रह्मपद और बीच में काव्य के अन्तर्जगत का उत्तरकुरु। जनसाधारण उस सुवर्ण-भूमिका की ओर थोड़ी ही दूर जाने पर शक्ति के अभाव के कारण आगे जा नहीं पाता और निराश होकर फिर पीछे की ओर देखने लगता है, उसी अपने चिरपरिचित प्रदेश को। वहीं उसे दिग्भ्रम होता है।

कवि कहता है कुछ और लोग सोचते हैं कुछ और। आकाश-पाताल के मध्य सत्य और असत्य की ऐसी द्विविधा में कवि का जीवन जटिल है। वह गाता है, संसार सुनता है, समझने वाले प्रशंसा करते हैं, सुनने वाले कानाफूसी करते हैं, नीलाम्बर की यवनिका में देवता की छाया डोलती है और कवि भी दूर से उन चरणों के पायल की मधुर रुन-झुन सुन लेता है; बस। वस्तुतः प्रेमी इस लोक का नहीं प्रेमाधार इस लोक का नहीं, गान इस लोक के नहीं, हर्ष इस लोक का नहीं और शोक इस लोक का नहीं। सत्य कोई समझे या न समझे, परन्तु देखा जाता है कि वे गान हर एक के अधरों पर मुस्कुराते हैं। चाँदनी की मीठी हँसी में हवा की मस्तानी चाल में, उसके गान के छींटे



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



उछलते हुए स्पष्ट दीख पड़ते हैं। आँगन से, खिड़कियों से, खेतों से, पगडण्डियों से,जनपद से, निर्जन से, सरिता से, सागर से उसकी प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है।

'महाभारत' के बाद की बात है। युद्ध के अभाव और शान्ति के प्रभाव के कारण अस्त्र-शस्त्रों में अकर्मण्यता के मोर्चे लग रहे थे। एक दिन अर्जुन ने भगवान कृष्ण से एक बार फिर गीता का गान करने के लिए अनुनय किया। भगवान ने उत्तर दिया—गीता फिर से नहीं गायी जा सकती। अब मैं वह नहीं, तुम वे नहीं, वातावरण वह नहीं और अपेक्षित भाव वे नहीं। याद रहे जो गान एक बार गाया गया है वह फिर नहीं गाया जा सकता।

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'कुङ्' धातु से कवि शब्द की व्युत्पत्ति है। 'कुङ्' का अर्थ है शब्द। क्रिया से कम्प और कम्प से शब्द उत्पन्न होता है। एक पदार्थ के दूसरे पदार्थ द्वारा आहत होने पर उसके परिमाणु-समष्टि में कम्प होता है। अपने निकटवर्ती वायु को आन्दोलित करता हुआ उसी के सहारे वही कम्प कानों तक पहुँच कर शब्द की अनुभूति कराता है। जब तक कम्प की सत्ता है तभी तक शब्द भी सुनाई पड़ेगा।

यह बात नहीं है कि जो सुनाई पड़े वही शब्द है। हमारे श्रवणेन्द्रियों की शक्ति भी सीमित है और सूक्ष्म विषयों को वह ग्रहण नहीं कर सकती। वृक्ष और लताओं में जो रस का संचार होता है, हमारी धमनियों में जो रक्त का प्रवाह होता है, नाना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



नक्षत्र, ग्रह और उपग्रहों के जो कार्यकलाप होते हैं, उनके शब्द को हम नहीं सुन पाते। यह सृष्टि भी एक कार्य है उसमें अवश्य कम्प होगा और फलतः अवश्य शब्द होगा जो हमारी असमर्थता के कारण भले ही न सुनाई दे। समष्टिरूप प्रकृति की क्रिया से उत्पन्न एक शब्द 'ॐ' है जो हमें नहीं सुनाई पड़ता। इस प्रकार शब्द दो तरह के हुए, श्रुत और अश्रुत। श्रुत शब्दों में भी कुछ व्यक्त होते हैं और कुछ अव्यक्त। पक्षी, कीट, पतङ्ग, वंशी, वीणा, मुरज, मृदङ्ग और प्रपात आदि के शब्द हम सुनकर भी नहीं समझ पाते। ऐसे श्रुत शब्दों को ध्वन्यात्मक कहते हैं। जिन श्रुत शब्दों के द्वारा हृदय के भावों को स्पष्ट व्यक्त किया जा सके उन्हें वर्णनात्मक कहते हैं। वर्णनात्मक शब्दों में अपनी संकल्प-विकल्पात्मक अनुभूतियों को मनोहर रूप में कवि व्यक्त करता है।

कवि की मन्दाकिनी तीन धाराओं में बहती है। एक स्वर्ग में, एक मर्त्य में और एक पाताल में। कवि की वाणी की तीन भाषाएँ होती हैं। एक समाधि भाषा, दूसरी लौकिक भाषा और तीसरी परकीय भाषा। लौकिक प्रत्यक्ष की पहुँच के बाहर किसी अलौकिक प्रदेश में बहती हुई महत्तत्व-अहंतत्व की ग्रन्थियों को खोलने वाली कवि की समाधि भाषा अपने 'हर-हर' से हर एक को उसी कल्याण-भूमि की ओर पुकारती है। जो वहाँ किसी तरह पहुँच जाता है उसे ब्रह्मलोक में ले जाती है और शाश्वत आनन्द का अधिकारी बना देती है। जैसे वेद और गीता आदि। जो वह कठिन भाषा नहीं समझ पाते उनके लिए लौकिक रीति से लौकिक भावनाओं के पुट देकर, रूपक-उपमा-उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों से सज्जित सरस भाषा में उन समाधिगम्य गूढ़ तत्वों का स्पष्टीकरण किया जाता है। ऐसी भाषा को लौकिक भाषा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



कहते हैं। जैसे गोपी-कृष्ण की रास लीला। इतिहासों और गाथाओं द्वारा, सत् और असत् की व्याख्या कर उनमें अनुराग और घृणा के भाव उत्पन्न करने वाली परकीय भाषा कही जाती है। जैसे सावित्री, हरिश्चन्द्र, ध्रुव और प्रह्लाद आदि के जीवन वृत्त।

कवि तीन प्रकार के होते हैं। जो कठोर सत्य के कोमल स्वरूप का दर्शन कराता है वह उत्तम, आधी रात में भी अपने चमत्कार के बल से उषा की मोहिनी का दर्शन कराने वाला ऐन्द्रजालिक मध्यम कहा जाता है। एक की कविता यथार्थ होती है और दूसरे की कला-प्रधान। एक चन्द्रवदन है जिसकी मधुरिमा में हम मधुमय हो जाते हैं, दूसरी उसी कविता सुन्दरी की चरण-कमलिनी है जिसमें जावक भी हैं और किंकिणी के क्वणित भी। हम उसमें भूल जाते हैं।

यथार्थ और चमत्कार दोनों से हीन अधम की रचना कविता के चरणों की धूल है। लेकिन वह भी पवित्र है।

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# शब्द और अर्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पहले कहा जा चुका है कि कवि वर्णनात्मक शब्दों में अपनी संकल्प-विकल्पात्मक अनुभूतियों को मनोहर रूप में व्यक्त करता है। वे शब्द अवतरित होते ही अपनी अभ्यस्त दिशा की ओर संकेत करते हैं जिसके सहारे पाठक अथवा श्रोता निर्दिष्ट भाव तक पहुंच सकें। रेलगाड़ी का चालक सिग्नल के संकेत पर उचित दिशा में कैसे चला जाता है? लाल रोशनी और हरी रोशनी को देखते ही तत्क्षण कार्य-अकार्य का कैसे निर्णय कर लेता है? क्योंकि उन संकेतों का उसे अभ्यास है। इसी प्रकार क्रमागत संस्कारों के आधार पर शब्द अपने सम्बंधी अर्थ का बोध कराते हैं। जिस शब्द संकेत का कोई प्रचलित व्यवहार नहीं अथवा उसका श्रोता को परिज्ञान नहीं उस शब्द से अभिलषित अर्थ का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



बोध नहीं हो सकता। मैं अपनी हारमोनियम को 'प्रियम्बदा' कह सकता हूँ क्योंकि अपनी प्रियध्वनि से मुग्ध कर लेती है। लेकिन उसे प्रियम्बदा कहने से कोई यह न समझ सकेगा कि मैं अपनी हारमोनियम की ओर संकेत कर रहा हूँ। 'मेरी प्रियम्बदा प्राणों के समान है' कहने पर अर्थ का अनर्थ हो सकता है। युगों से लोक जिसकी प्रियता का अनुभव करता चला आ रहा है उसी स्त्री-कण्ठ की ओर उसका ध्यान अनायास चला जायगा।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि कवि का शब्द-प्रयोग नवीन से नवीन होते हुए भी अपनी सर्व प्रियता के कारण क्रमशः कालान्तर में रूढ़ हो जाता है जैसे सरसिज, जलजात आदि। क्या तालाब में कमल ही होता है सेवार नहीं, कमल ही उत्पन्न होता है मछली नहीं ? शब्द-कोष के अनुसार कमल का अर्थ जल और मृग भी होता है। नलिन, अरविन्द, महोत्पल, सहस्रपत्र, शतपत्र, कुशेशय, पंकज, तामरस, सारस, सरसीरुह, विसप्रसून, राजीव, पुष्कर, अम्भोज, पुण्डरीक, कोकनद आदि कमल के पर्याय शब्द हैं। लेकिन इसका ध्यान रखना होगा कि ये शब्द पर्यायवाची होते हुए भी अपनी-अपनी ध्वनियों में असमान हैं। शब्द की सामर्थ्य का सम्यक् ज्ञान कवि का अध्ययन है और उसका सुन्दर से सुन्दर उपयोग ही कवि की कला है।

*"एकः शब्दः सुप्रयुक्तः सम्यग्ज्ञातः स्वर्गे मर्त्ये च कामधुग्भवति।"*

नाना प्रकार के शब्द नाना प्रकार की प्रकृतियों के रूप हैं। जिस प्रकार की प्रकृति को जागृत करने की आवश्यकता हो उसी प्रकृति के शब्दों का व्यवहार पात्र, देश, और काल आदि के अनुरूप होना चाहिये। जिन मन्त्रों में मारण, मोहन, स्तंभन और वशीकरण आदि की शक्ति पहले कभी थी, जिनसे इच्छानुसार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



आग, पानी आँधी और तूफान आदि उत्पन्न कर विपक्ष को क्षण भर में नामशेष कर दिया जा सकता था वे क्या थे ? भिन्न-भिन्न प्रकृति के उद्बोधक शब्दों के शक्ति संपन्न समवाय ही तो ! अभाग्य से वह विद्या, वह योग और वह सामर्थ्य ही आज लुप्त हो गयी है। आह, कोई ऐसे सर जगदीशचन्द्र वसु होते जो हमारी खोयी हुई उस निधि को ढूढ़कर हमें सौंप देते !

आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों में अधिकांश इस दिशा में कहीं अधिक पिछड़े हुए हैं। उनके प्रयोग असमीचीन और संकीर्ण पाये जाते हैं। जैसे—

रेणु जलते ढ़ाँपने को
तुहिन से अवदात शीतल
सखि दुखों के पावड़े तूँ
आज उनके पथ बिछाले
वेदना के गीत गाले

इसकी प्रतीति तो होती है कि उपर्युक्त एक कविता है जिसे किसी कवि ने किसी वेदना में तन्मय होकर बनाया है। लेकिन बात ऐसे कही गयी है जो समझ में नहीं आती। फिर भी यदि हम उस कवि के समर्थक हैं तो "वाह-वाह, धन्यवाद" आदि कहना ही पड़ेगा और अपने पक्ष के समर्थन में नाना वादों की शरण लेनी ही होगी जिससे, उचित अथवा अनुचित ही सही, विवाद तो किया जा सके। मैंने स्वयं एक कविता लिखी थी—

मानसी मराली री !
मानस सरोवर छोड़
कनक-कमल करोड़
मुकुल के कूल तोड़

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



मोहन नन्दन वन की
वनती क्यों व्याली री !
मानसी मराली री !

आदि—आदि। अनुकूल समालोचकों ने इसकी बड़ी प्रशंसा की यह कह कर कि यह विशुद्ध रहस्यवाद है। लेकिन वस्तुतः मैंने उस मुग्धा को लक्ष्य कर यह कविता लिखी थी जो अपनी कुल-मर्यादा के विरुद्ध किसी नगण्य को जीवन-साथी बनाना चाहती थी। मैंने अपने मनोगत भावों को ऐसी संकीर्णता से कविता में व्यक्त किया कि समालोचक रहस्य न समझ सके और इसीलिए उसके रहस्यवाद होने की व्यवस्था भी उन्होंने दे दी। मेरा प्रयास और मेरी कविता व्यर्थ हुई। उससे जो सम्मान प्राप्त हुआ वह भी चोरी के धन की तरह अभिशाप ही हुआ।

सिद्धान्तसिद्ध प्रकृतिप्रत्यय से युक्त और व्याकरण से निर्णीत शब्द तथा शब्दकोषों से अनुमोदित अर्थ से युक्त पद होता है। भाषा ने अनावश्यक उच्छृङ्खलता की रोक-थाम्ह के लिए जिन नियमों को स्वीकार कर लिया है उन्हीं का निर्देशक व्याकरण है। सभी सदसद्विवेकी विनियम की निन्दा और नियमानुकूलता की अपेक्षा करते हैं। शब्दों के कौन-कौन संकेत परम्परागत हैं इसका बोध कोष कराते हैं। इसलिए भाषा के ये दोनों अङ्ग अत्यन्त आवश्यक हैं। कवि का कोई भी नवीन प्रयोग भाषा पर तब तक भार सा होता है जब तक श्रोता उसे समझने न लगें। व्याकरण और कोष के अध्ययन से कवि को विदित हो जाता है कि किस शब्द की क्या परम्परागत सामर्थ्य है और नवीनता का कितना भार शब्द और श्रोता के लिए सह्य हो सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सार्थक पदों का समूह तब तक वाक्य नहीं कहा जा सकता जब तक उनका परस्पर सम्बंध ठीक-ठीक न हो। जैसे हाथी घोड़ा ऊँट बैल। इसे वाक्य नहीं कह सकते क्योंकि केवल इतना कहने से अर्थ-बोध नहीं हो पाता। हाथी आदि पदों का क्रियापद के साथ सम्बंध होने पर ही अर्थ समझा जा सकता है। पदों के ऐसे परस्पर सम्बंध को आकांक्षा कहते हैं। भली भाँति अर्थ बोध न करा सकने के कारण आकांक्षा विहीन सार्थक पद समूह भी वाक्य नहीं हो सकते।

परस्पर साकांक्ष होने पर भी उचित तृप्ति न देने वाला पद-समुदाय अयोग्यता के कारण वाक्य नहीं हो सकता। तृप्तिदान ही पदों की योग्यता है। 'आग से सींचता है' इस वाक्य में 'आग' पद की आकांक्षा की तृप्ति के लिए 'सींचता है' क्रिया तत्पर होती है लेकिन उसमें अपेक्षित सामर्थ्य नहीं। भला आग से भी सींचा जाता है! जलाया भले ही जा सके। जो तृप्ति पानी से होती है वह आग से कैसे हो सकती है।

'पहाड़ खाता है अग्निमान है देवदत्त' यह एक वाक्य है। सभी पद सार्थक हैं। 'पहाड़' पद की आकांक्षा 'अग्निमान है' क्रिया से पूरी हो सकती है और 'देवदत्त' पद की आकांक्षा 'खाता है' क्रिया से पूरी हो सकती है। दोनों क्रियाओं में योग्यता भी है। लेकिन इसमें पदों का तारतम्य ठीक नहीं है। 'पहाड़' के पास 'अग्निमान है' चाहिये और 'देवदत्त' के पास 'खाता' है चाहिये। अर्थ बोध में बाधा पहुँचाने वाले पदों की अनुपस्थिति को सन्निधि कहते हैं। जिस वाक्य में सन्निधि नहीं, उचित तारतम्य नहीं उसे भी वाक्य नहीं कहा जा सकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऊपर कहा जा चुका है कि संकेत ही की सहायता से शब्दों का अर्थ समझा जाता है। उन संकेतों का ज्ञान परम्परागत होता है। परम्परा से हमें यह ज्ञान है कि बैल उसी को कहते हैं जिसके दो सींगें, चार पैर, पूंछ, बड़ी-बड़ी कजरारी आँखें और पीठ पर डील होती है। तत्क्षण बैल का एक अनुभूतिमय चित्र स्मृतिपट पर उभड़ जाता है। ये सारी क्रियाएँ इतनी शीघ्रता से होती हैं कि उनकी ओर हम ध्यान ही नहीं दे सकते और ऐसा मालूम पड़ता है कि ज्योंही वक्ता ने बैल कहा हमने उसे समझ लिया। जो शब्द कानों में पहुँचते ही परम्परागत ज्ञान के आधार पर अपना साक्षात् अर्थ स्पष्ट कर देते हैं उन्हें वाचक और उनके अर्थ को वाच्य कहा जाता है। अर्थबोध कराने वाली संकेत की उस शक्ति को अभिधा कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



शब्द संकेतों की परम्परा के प्रतीक कोषों में भी एक शब्द के अनेकों अर्थ पाये जाते हैं। कारण यह है कि शब्द पर सभी का अधिकार है और सभी उसका व्यवहार करते हैं। जैसे एक ही स्वरूप का भिन्न-भिन्न दर्पण में कुछ न कुछ रूपान्तर अवश्य हो जाता है उसी प्रकार भिन्न-भिन्न अनुभव, धारणा, शक्ति और बुद्धि वाले अगणित मनुष्यों में निरन्तर व्यवहृत होते रहने के कारण शब्द के अर्थों में भी भिन्नता और अनेकता हो जाना स्वाभाविक है। कभी किसी ने देखा कि कुछ छलनापर गायक अपने मधुर गान और तान से मुग्ध कर उन पशुओं का हरण कर लेते हैं जो देखने में बड़े भोले-भाले, सुन्दर, चंचल और बड़ी-बड़ी आँखों वाले होते हैं। इसलिए वह उस पशु विशेष को 'हरिण' कहने लगा। 'ह्रियते गीतेन् इति हरिणः' अर्थात् गीत से जिसका हरण किया जाता हो। अब लोक में 'हरिण' शब्द का उसी अर्थ में व्यवहार होने लगा। कालान्तर में एक सज्जन के मन को उस पदार्थ ने हर लिया जिसका वर्ण पीत-शुक्ल था। अब हरिण शब्द का अर्थ पीत-शुक्ल भी हो गया। लोक ने इस अर्थ को भी अपनाया। कोषकार को अपने शब्द-कोष में हरिण शब्द के इन दोनों अर्थों का उल्लेख करना पड़ा। और यही तो भाषा की सप्राणता है; बिलास है, वैभव है। जिस भाषा में जितने ही अनेकार्थक और पर्य्यायवाची शब्द सुलभ हों वह उतनी ही समृद्धिशालिनी होती है।

वाक्य में जहाँ ऐसे पद आते हैं जिनके अनेकों अर्थ हो सकते हैं वहाँ अभिलषित अर्थ का निर्णय करना पड़ता है। यह निर्णय कई प्रकार से होता है।

*संयोग से*—'शंख-चक्र से युक्त हरि'। हरि शब्द के अनेक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri.



अर्थ होते हैं। मेदिनी कोष के अनुसार 'हरि' के अर्थ चन्द्रमा, सूर्य, हवा, घोड़ा, शुक, भेक, सर्प, बन्दर, सिंह, विष्णु और इन्द्र आदि होते हैं। निर्णय करना है कि 'शंख-चक्र से युक्त हरि' में हरि का कौन सा अर्थ अभिलषित है। सज्ञान वक्ता ने इसीलिए विवादग्रस्त शब्द के साथ एक संकेत भी रख छोड़ा है। 'हरि' में शंख और चक्र का संयोग करने से अर्थ स्पष्ट हो जाता है। विष्णु ही शंख-चक्र धारण करते हैं। इसलिए यही अभिलषित अर्थ है।

*वियोग से*—'पतवार के विना तरणि का कोई बल नहीं।' 'तरणि' के सूर्य, नौका आदि अनेक अर्थ होते हैं। यहाँ नाव और पतवार का ही वियोग युक्तिसङ्गत हो सकता है और इसीलिए तरणि का अर्थ यहाँ नौका हुआ।

*साहचर्य से*—'राम-लक्ष्मण।' दशरथ के पुत्र को भी राम कहते हैं, जमदग्नि के पुत्र परशुराम को भी राम कहते हैं, और यशोदा के पुत्र बलराम को भी राम कहते हैं। लेकिन लक्ष्मण के साथ जो राम थे वे दशरथ के पुत्र ही। राम और लक्ष्मण दोनों के एकत्र होने से दशरथ-पुत्र राम का ही बोध होता है।

*विरोध से*—'राम ने अर्जुन के हाथों को काट डाला।' राम शब्द के उपर्युक्त कई अर्थ होते हैं और अर्जुन के भी सहस्रबाहु, पांडु पुत्र आदि अनेक अर्थ हैं। लेकिन विरोध परशुराम और सहस्रबाहु में ही था। इसलिए विरोध के बल से यहाँ राम का अर्थ परशुराम और अर्जुन का अर्थ सहस्त्रबाहु हुआ।

*अर्थ से*—'स्थाणु का भजन करो।' स्थाणु का अर्थ 'शिव' होता है और पत्र-पुष्पहीन शुष्क वृक्ष भी। लोग भजन शिव का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



ही करते हैं सूखे पेड़ का नहीं। इस प्रकार अर्थबल से यहाँ शिव का ही बोध होता है।

*प्रकरण से*—'महाराज! मुझे पुत्र की शादी करनी है। कृपया कोई शुभमुहूर्त बताइये।' महाराज पराक्रमी राजा को कहते हैं और ज्योतिषी को भी इस सम्बोधन से सम्बोधित किया जाता है। इसलिए प्रकरण को समझते हुए यहाँ महाराज का अर्थ ज्योतिषी ही हुआ क्योंकि ज्योतिषी ही पञ्चाङ्ग देखकर मुहूर्त बताते हैं।

*सामर्थ्य से*—"मधु ने कोकिल को मतवाला कर दिया।" मकरन्द, शहद, शराब और वसन्त आदि 'मधु' के अर्थ होते हैं। लेकिन कोकिल को मतवाला बना देने की सामर्थ्य न तो मकरन्द में, न शहद में, न शराब में है। बल्कि वसन्त ही उसे मतवाला बना सकता है। इसलिए यहाँ मधु का अर्थ वसन्त ही होगा।

*औचित्य से*—'धनुष-यज्ञशाला में उपस्थित सभी क्षण भर के लिए श्रीरामचन्द्र की रूपमाधुरी का पान करने लगे।' रूप कोई शर्बत नहीं होता जिसे और द्रवपदार्थों की तरह पीया जा सके। औचित्य के विचार से रूपमाधुरी के पान का अर्थ हुआ उत्सुक एवं सतृष्ण आँखों से देखना।

*देशविचार से*—'यह चपला की चमक है।' यदि गगन मण्डल में चमक हुई होगी तो चपला का अर्थ 'विजली' होगा। लेकिन यदि किसी ने किसी धनी के वैभव की प्रशंसा में यह कहा होगा तो चपला का अर्थ 'लक्ष्मी' होगा।

*काल विचार से*—'यह चित्रभानु का ऐसा अनुपम प्रकाश है।' चित्रभानु का अर्थ सूर्य और अग्नि दोनों है। काल के विचार से दिन में चित्रभानु का अर्थ सूर्य होगा और रात्रि में अग्नि।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



चेष्टा, संकेत और अभिनय आदि से—किसी के रूप का वर्णन करते हुए कहा जा सकता है—( मुख से कमल का न उच्चारण कर बल्कि हाथ को कमल के आकार का बनाकर ) उसकी आँखें ऐसी-ऐसी हैं ( इसी तरह से ही भिन्न-भिन्न चेष्टाएँ कर ) नाक ऐसी, उसके कपोल ऐसे, उसकी शरीर ऐसी, उसकी ऊँचाई इतनी और उसकी अवस्था ऐसी है।

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किसी शब्द के कहे जाने पर तत्क्षण विना किसी रोक-टोक के सीधे-सीधे जिस अर्थ की प्रतीति होती है उसे मुख्यार्थ कहते हैं। संकेत की अभिधा शक्ति द्वारा मुख्यार्थ का बोध होता है।

ऐसा भी होता है कि अभिधा के मुख्यार्थ का बोध कराकर विरत हो जाने पर भी किसी अर्थ की अपेक्षा बनी रहती है। लेकिन साथ ही साथ अपेक्षित अन्यार्थ का आधार और संबन्ध मुख्यार्थ से ही रहता है। ऐसी दशा में शब्द अपने मुख्य अर्थ को छोड़कर अन्य अर्थ की प्रतीति कराता है। ऐसी अर्थप्रतीति के व्यापार का नाम लक्षणा है। लक्षणा शक्ति मुख्यार्थ के लक्षण से लक्ष्य अर्थ का बोध कराती है। मुख्य अर्थ में वाधा या तो किसी रूढ़ि के कारण पहुँचती है या किसी प्रयोजन के द्वारा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



जहाँ किसी प्रयोजन से नहीं बल्कि परम्परागत प्रयोग के कारण मुख्यार्थ को बाधित कर अमुख्यार्थ उपस्थित होता है उसे रूढ़िलक्षणा कहते हैं। जैसे 'लाल पगड़ी में सहृदयता बहुत कम पायी जाती है।' 'लाल पगड़ी' को सुनकर अभिधा व्यापार द्वारा जिस मुख्य अर्थ की प्रतीति होती है वह असङ्गतसा मालूम पड़ता है क्योंकि लाल पगड़ी कोई जीव नहीं हो सकती जिसके हृदय हो और सहृदयता हो। लेकिन सिपाही को लाल पगड़ी कहने की रूढ़ि हैं इसलिए 'लाल पगड़ी' के मुख्यार्थ के स्थान का ग्रहण अमुख्यार्थ 'सिपाही' कर लेता है।

जहाँ मुख्य अर्थ में बाधा किसी रूढ़ि से नहीं बल्कि प्रयोजन से होती है उसे प्रयोजनवती लक्षणा कहते हैं। मुख्य अर्थ में बाधा उपस्थित होने का प्रयोजन क्या हो सकता है? किसी व्यंग्य अर्थ का निर्देश करना ही। प्रयोजनवती लक्षणा में प्रयोजन का ज्ञान व्यंग्य व्यापार ही के द्वारा जाना जा सकता है। उसके साथ जो व्यंग्य रहता है वह कभी तो अस्पष्ट और कभी स्पष्ट रहताहै। जैसे किसी सुन्दरी के प्रथम विकाश को लक्ष्य कर कोई कहता है—

"आज इसके मुख में मुसकान विकसित हो गयी है। इसकी दृष्टि चपलता पर अधिकार प्राप्त करने में व्यस्त है। इसकी गति से हाव-भाव छलक रहे हैं।" आदि

मुसकान विकसित नहीं होती, यह फूल का धर्म है। अधिकार प्राप्त करना चेतन का धर्म है आँखों का नहीं। द्रव पदार्थ छलका करते हैं, हाव-भाव नहीं। मुख्यार्थ को बाधित कर लक्ष्यार्थ को प्रकाशित करने के प्रयोजन से ही 'विकसित होना, अधिकार प्राप्त करना और छलकना' पदों का सन्निवेश किया गया है। 'विकसित' पद से यह अर्थ लक्षित होता है कि अब उसमें संकोच न रहने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



के कारण नवीन सौन्दर्य आ गया है और यह अर्थ व्यञ्जित होता है कि इसके मुख में वही सुगंधि है जो विकसित पुष्प में होती है। 'अधिकार प्राप्त करना' इस पद से यह अर्थ लक्षित होता है कि अब इसकी आँखों में बालोचित चंचलता का स्थान यौवनोचित गंभीरता धीरे-धीरे ग्रहण कर रही है और यह होता है कि इसकी दृष्टि को मोहिनी का एक अपूर्व बल और सामर्थ्य प्राप्त हो रही है। 'छलकना' पद से पूर्णता का अर्थ लक्षित होता है और मनोहरता की व्यञ्जना होती हैं। लेकिन इन व्यंग्य अर्थों को सभी अनायास नहीं समझ पाते बल्कि काव्यकुशल व्यक्ति ही समझ सकते हैं क्योंकि व्यंग्य गूढ़ है।

और जैसे—"लक्ष्मी जब प्राप्त होती है तो जड़ भी पण्डित हो जाते हैं। अवस्था ही स्त्रियों को सब कुछ सिखा देती है।" शिक्षा देना किसी गुरु का काम है, उभड़ी अवस्था का नहीं। इस तरह मुख्यार्थ के बाधित होने पर 'यौवन' अर्थ लक्षित होता है और बिना किसी परिश्रम के हाव-भाव का व्यंग्यार्थ प्रगट हो जाता है। यहाँ व्यंग्य स्पष्ट है।

'दिहाती बैल होते हैं' यह भी प्रयोजनवती लक्षणा है। मनुष्य बैल नहीं हो सकता, इसलिए मुख्य अर्थ में बाधा उपस्थित होती है। दिहाती मनुष्य में भी बैल की सी जड़ता, मन्दता आदि को लक्षित कराना प्रयोजन है। इस प्रयोजनवती लक्षणा में दोनों के गुणों का सादृश्य दिखाना ही प्रयोजन है। इसलिए इस लक्षणा को गौणी-प्रयोजनवती कहेंगे।

'घी आयु है' यहाँ भी प्रयोजनवती लक्षणा है। घी आयु नहीं हो सकता इसलिए मुख्यार्थ में बाधा उपस्थित होती है। घी में मनुष्य को चिरकाल तक जीवित रखने की शक्ति को लक्षित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



कराना ही प्रयोजन है। लेकिन यहाँ 'दिहाती बैल होते हैं' की तरह दिहाती और बैल का सा गुणों का सादृश्य नहीं है। इसलिए यह गौणी न हो सकेगी। यहाँ घी और आयु में कोई अन्य ही सम्बंध है। घी एक कारण है। जिससे आयु के स्थायित्व का कार्य सम्पन्न होता है। अतः सादृश्य से भिन्न कार्य-कारण भाव आदि अन्यान्य सम्बंधों के कारण जहाँ प्रयोजनवती लक्षणा होती है उसे शुद्धा कहते हैं।

शुद्धा लक्षणा भी दो प्रकार की होती हैं। एक को उपादान लक्षणा कहते हैं और दूसरी को लक्षण-लक्षणा। मुख्य अर्थ को ज्यों का त्यों स्वीकृत करते हुए भी लक्ष्यार्थ की सिद्धि के लिए अन्य अर्थ का जहाँ आक्षेप किया जाता है वहाँ उपादान लक्षणा होती है। जैसे—'दंगे का समाचार पाते ही सरकारी बन्दूकें घटनास्थल की ओर दौड़ पड़ीं।' जड़ बन्दूकें नहीं दौड़ सकतीं। मुख्यार्थ में बाधा पहुँचती है। इसलिए बन्दूक का अर्थ हुआ बन्दूक धारी सिपाही। यहाँ मुख्यार्थ की हानि नहीं हुई बल्कि प्रयोजनीय अर्थ की सिद्धि के लिए अन्यार्थ का उपादान किया गया है। लक्षण-लक्षणा में मुख्य अर्थ को छोड़ देने पर ही प्रयोजनीय अर्थ की सिद्धि हो पाती है। जैसे 'कूवाँ खारा है।' कूवें के ईंट-पत्थर खारे नहीं होते। यहाँ पर कूवाँ का मुख्यार्थ छोड़ कर लक्षण से अर्थ की सिद्धि की जायगी। इसलिए यह लक्षण-लक्षणा है।

ऊपर देखा गया है कि कहीं तो अर्थ-सिद्धि के लिए अमुख्यार्थ का आरोप किया जाता है और कहीं अमुख्यार्थ में मुख्यार्थ का अध्यवसान, अन्तर्भाव हो जाता है। जिस लक्षणा में आरोप किया जाता है उसे सारोपा और जिसमें अध्यवसान किया जाता है उसे साध्यवसाना कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्द के अर्थ का ज्ञान बाण के व्यापार की तरह बढ़ता जाता है। 'पीपल का पत्ता भी नहीं हिलता' सुनते ही अभिधा शक्ति के सहारे मुख्यार्थ का बोध तो हो जाता है। फिर भी तनिक और सोचने पर बुद्धियोग से उसी मुख्यार्थ के द्वारा किसी अन्य अर्थ की भी प्रतीति होती है। यह विदित है कि थोड़ी भी हवा चलने पर पीपल के पत्ते हिलते ही हैं। इसलिए अनायास ही उक्त वाक्य का यह अर्थ प्रगट हो जाता है कि हवा नहीं चल रही है। इस अन्य अर्थ को व्यंग्य कहते हैं। जिस शक्ति से ऐसे अर्थ का बोध होता है उसे व्यंजना कहते हैं। जिस शब्द से व्यंग्य अर्थ का बोध होता है उसे व्यञ्जक कहते हैं।

प्रायः सभी प्रकार के अर्थों के साथ कुछ न कुछ व्यंग्य अर्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



इष्ट रहता ही है। कोई लड़का अपने पिता से कहता है—'पिताजी, आप ही ने तो कहा है कि स्वास्थ्य के लिए शारीरिक परिश्रम आवश्यक है। हाकी खेलने में खूब दौड़ना पड़ता है। लेकिन मेरे पास तो हाकी है ही नहीं।' यहाँ मुख्यार्थ के साथ 'हाकी खरीद दीजिये यह व्यंग्यार्थ इष्ट है। एक संपन्न परिवार था। एक पड़ोसी उस परिवार की विभूति से जलता था। समय देख-कर उसने पिता-पुत्र में झगड़ा लगा दिया। लाख समझाने पर भी पुत्र की बुद्धि ठिकाने नहीं आती क्योंकि पड़ोसी अभी भी बराबर कुमन्त्रणा दिया ही करता है। पिता चतुर है। किसी से झगड़ना नहीं चाहता। एक दिन उसी पड़ोसी से मुलाकात होने पर पिता उससे कहता है "मित्र, मैं जानता हूँ कि तुमने हम पिता-पुत्रों के भेद-भाव को दूर करने के लिए कितना परिश्रम किया है। लेकिन अब रहने दो।" किसी की विभूति से द्वेष रखने वाले ने कभी भी भेद मिटाने का प्रयत्न न किया होगा। मुख्यार्थ में बाधा पहुँची। इससे लक्ष्यार्थ यह निकलता है कि तुम अब तक हमें बिगाड़ने में ही प्रयत्नशील रहे हो। व्यंग्यार्थ यह निकलता है कि मैं तुम्हारी सारी हरकतों को समझता हूँ, लेकिन अब वे सह्य नहीं। 'पीपल के पत्ते भी नहीं हिलते हैं' से व्यंग्यार्थ निकलता है कि हवा नहीं चलती है। इस व्यंग्यार्थ से भी इस व्यंग्यार्थ का बोध होता है कि बड़ी गर्मी है।

किसी वाक्य का मुख्यार्थ तो सभी को एक ही सा प्रतीत होता है। इसलिए वह नियत है, निश्चित है, आज से नहीं युगों से। लेकिन व्यंजना द्वारा जो अर्थ प्राप्त होता है वह भिन्न-भिन्न वक्ता, श्रोता तथा प्रकरणादि में निबद्ध होने के कारण अनेक प्रकार का होता है। जैसे 'सूर्यास्त होगया।' इस वाक्य को कहने वाला यदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



कोई बनियाँ है और सुनने वाले उसके नौकर हैं तो इसका व्यंग्य अर्थ होगा कि दुकान बढ़ा दो अथवा रोशनी जला दो। यदि गृहस्थ किसी अहीर से कहता है तो इसका अर्थ होगा कि पशुओं को बाड़े में ले जाओ। यदि कहने और सुनने वाले ब्राह्मण हैं तो इसका अर्थ होगा कि संध्योपासन कीजिये। यदि कहने और सुनने वाले मज़दूर हैं तो इसका अर्थ होगा कि काम बन्द करो। गर्मी के दिन में सुगम प्रदेश में यदि कहने और सुनने वाले राही हैं तो इसका अर्थ होगा कि अब ठण्ढे में चलना चाहिये। जंगली प्रदेश में यदि कहने और सुनने वाले बटोही हैं तो इसका अर्थ होगा कि अब आगे न बढ़ो। अड्डे में यदि कहने और सुनने वाली वेश्याएं हैं तो इसका अर्थ होगा कि अब शृङ्गार करो। और इसी तरह।

कहीं भी मुख्य अर्थ का बोध पहले होता है और व्यंग्य अर्थ का पीछे। मुख्य अर्थ के आश्रय केवल शब्द होते हैं लेकिन व्यंग्य अर्थ शब्द के आश्रय से, उसके समुदाय के आश्रय से, उसके किसी भाग के आश्रय से, उसके भिन्न-भिन्न अर्थों के आश्रय से, और अक्षरों की योजना के आश्रय से भी प्रगट होते हैं। केवल शब्दों के सांकेतिक अर्थज्ञान से ही मुख्यार्थ का बोध हो जाता है लेकिन व्यंग्यार्थ को समझने के लिए देश, काल, प्रकरण, और स्वस्थ बुद्धि आदि की अपेक्षा होती है। मुख्यार्थ के लिए ज्ञान आवश्यक होता है लेकिन व्यंग्यार्थ के लिए सहृदयता भी।

प्रयोजन विशेष की सिद्धि के लिए जहाँ लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग होता है वहां व्यंजना व्यापार द्वारा हो प्रयोजनीय अर्थ की प्रतीति होती है। सीता के वियोग में राम कहते हैं—'मैं राम हूँ. सब कुछ सहना होगा।' यहाँ राम का अवतार मानवता का आदर्श

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



उपस्थित करने के लिए और फलतः सुख-दुख समान रूप से दृढ़ता पूर्वक झेलने के लिए ही हुआ है इस अर्थ का बोध कराने वाला लाक्षणिक शब्द 'राम' है। लेकिन वस्तुतः इस व्यंग्यार्थ का बोध व्यंजना व्यापार द्वारा ही होता है। इसी तरह 'जिसे जीवन ही प्यारा है ऐसे राम ने सीता के प्रति प्रेम के अनुकूल आचरण नहीं किया' यहाँ पर प्रेमी होते हुए भी कर्तव्याकर्तव्य में सावधान अस्तु निष्करुण राम-हृदय का बोध व्यंजना द्वारा ही होता है यद्यपि 'राम' शब्द यहाँ लाक्षणिक ही है। यदि सच पूछा जाय तो लक्षणा मुख्यार्थ और व्यंग्यार्थ के बीच मध्यस्थता मात्र करती है।

यह सोचना भूल है कि व्यंजना लक्षणा के साथ ही रहती है। व्यंजना अभिधा के सहारे भी रह सकती है। ऐसा भी कोई नियम नहीं है कि व्यंजना अभिधा और लक्षणा इन्हीं दोनों के सहारे रहती हो। व्यंजना ऐसे वर्णों के सहारे भी अपना व्यापार करती है जिनका कुछ भी मुख्यार्थ न होता हो। किसी कथा के अत्यन्त दुखान्त अंश को सुनकर जिह्वाग्र को तालु प्रदेश से संयुक्त और वियुक्त कर 'च-च-च' भी किया जाता है। 'च-च-च' का कोई भी मुख्यार्थ नहीं होता फिर भी उससे मार्मिक करुणा की प्रतीति होती है। यह भी नियम नहीं है कि उच्चारण किये हुए शब्दों में ही व्यंजना का स्थान हो। भौंहें चढ़ाकर, कटाक्ष से, कामुक सी दृष्टि से, मुंह टेढ़ा कर, नाक फुलाकर, गाल फुलाकर, छाती पर हाथ रखकर और ऐसे ही भाँति-भाँति से भिन्न-भिन्न व्यंजनाएँ की जाती हैं।

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यंग्यार्थ की गुरुता और लघुता के आधार पर ही काव्य की उत्तमता परीक्षित होती है। जहाँ मुख्य अर्थ की अपेक्षा व्यंग्य अर्थ में अधिक चमत्कार होता है उस काव्य की गणना उत्तम में होती है और उसी को ध्वनि कहते हैं। अर्थ की वास्तविक सुन्दरता यही है कि न तो वह इतना छिपा हो कि सहृदय लोग भी कठिनाई से समझ सकें और न इतना प्रगट हो कि जो चाहे वही अनायास समझ ले। इस सम्बंध में संस्कृत का एक श्लोक है, जो आधुनिक दृष्टि से कुछ अश्लील तो है किन्तु उसमें अर्थ के वास्तविक सौन्दर्य की मनोहर व्याख्या की गयी है।

नांध्रीपयोधर इवातितरां प्रकाशः
नो गुर्जरीस्तन इवातितरां निगूढ़ः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अर्थो गिरामपिहितः पिहितश्च कश्चित्
सौभाग्यमेति मरहट्टवधूकुचाभः ॥

उपर्युक्त श्लोक का सारांश यह है कि वाणी के अर्थ सुन्दरी के उरोजों के समान कुछ खुले और कुछ ढँके ही सुन्दर और मनोहर हो सकते हैं। जैसे - महाभारत का युद्ध पर्व था। अभिमन्यु का वध पहले ही हो चुका था। आज पाण्डवी सेना में कर्ण का पुत्र कुमार वृषसेन घिर गया। कर्ण ने भी देखा और कहा "अरे आततायियों, तुम्हें कुछ नीति और धर्म का भी विचार है ? अपने समूह में घेर कर एक अल्पवयस कुमार की निर्मम हत्या करना उचित है ?" फिर अर्जुन ने उत्तर दिया" तुम्हारी धर्मपरायणता और नीतिविचार मैं खूब जानता हूँ। मेरे पुत्र अभिमन्यु का बध तो धर्मपूर्वक ही किया गया था ! क्यों ?" यहाँ मुख्यार्थ तो जो है वही है। लेकिन व्यंग्यार्थ यह है कि तुम्हारी धर्म परायणता और नीति विचार को भली-भाँति समझने का अवसर मुझे पहले ही प्राप्त हो चुका है। उस दिन तुम सात महारथियों ने एक साथ मिलकर जो मेरे पुत्र का बध किया था वह सरेसर अधर्म और अन्याय था। इस दृष्टि से तुम्हारे पुत्र की भी यदि वही दशा हो तो कोई अनुचित नहीं।

ध्वनि में जहाँ मुख्यार्थ प्रकरण के अनुसार ठीक न मालुम पड़ता हो वहाँ वह मुख्यार्थ किसी विलक्षण अर्थ में परिणत हो जाता है जिसे अर्थान्तर संक्रमण कहते हैं। और ऐसा भी होता है कि लक्षणा द्वारा उसका अर्थ बिलकुल उलटा हो जाय जिसे मुख्यार्थ का अत्यन्त तिरस्कार कहते हैं। लेकिन ये बातें वहीं होती हैं जहाँ व्यंग्यार्थ के लिए मुख्यार्थ की विवक्षा नहीं होती। जैसे किसी धूर्त द्वारा किसी पण्डित जी के ठगे जाने पर कहा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



जा सकता है 'पण्डित जी, आप पण्डित जी ही रह गये।' यहाँ दूसरे पण्डित जी का अर्थ भोले-भाले और सांसारिक प्रवंचनाओं से अनभिज्ञ से है। 'पण्डित जी' के मुख्यार्थ का व्यंग्यार्थ में संक्रमण हो गया। इसलिए यह अर्थान्तर संक्रमित अविवक्षित वाच्यध्वनि है। और जैसे किसी लड़के ने कोई अपराध किया है। वह अपने पिता के सामने अपनी सफाई दे रहा है। उसकी बातों पर अविश्वास करते हुए उसके पिता कहते हैं—हाँ-हाँ, तुम बड़े सीधे और सच्चे हो। यहाँ व्यंग्यार्थ यह है कि तुम खोटे और झूठे हो। व्यंग्यार्थ ने मुख्यार्थ का अत्यन्त तिरस्कार किया है इसलिए यह अत्यन्त तिरस्कृत अविवक्षित वाच्य ध्वनि है।

जहाँ मुख्यार्थ की विवक्षा होती हैं अर्थात् जहाँ उसका उपयोग आवश्यक होता है उसे विवक्षितवाच्यध्वनि कहते हैं। इसमें व्यंग्यार्थ तक पहुँचने का क्रम कहीं तो लक्षित होता है और कहीं अलक्षित। जैसे—द्रोण-बध का समाचार सुनकर अश्वत्थामा कहते हैं 'अरे मूर्खों, प्रलय काल में संसार को दग्ध करने के लिए एक साथ उदित होने वाले बारहो सूर्य तो अभीं उदित ही नहीं हुए, प्रलयकाल में एक साथ मिलकर चलने वाले उन्चासों पवन तो अभी चले ही नहीं, प्रलय करने वाले आवर्तक और पुष्कर मेघों से आकाश मण्डल तो अभी व्याप्त ही नहीं हुआ, फिर भी तुम कैसे कहते हो कि द्रोणाचार्य का बध कर डाला गया ?' यहाँ द्रोणाचार्य का अतुल पराक्रम व्यंग्य हैं लेकिन उसका क्रम संलक्षित नहीं होता। इसलिए यह असंलक्ष्यक्रम विवक्षित वाच्यध्वनि है। और जैसे—"उस राज्य में भाजी और खाजा दोनों टके सेर विकता है।" यहाँ व्यग्यार्थ यह है कि वहाँ का राजा चौपट है। लेकिन व्यंग्यार्थ तक पहुँचने का क्रम लक्षित है। इसलिए यह संलक्ष्यक्रम विवक्षित वाच्यध्वनि है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



जहाँ एकाधिक व्यंग्य की प्रतीति होती है वहाँ कहीं तो एक अर्थ प्रधान और दूसरा अप्रधान होता है, कहीं दोनों व्यंग्यों में से कौन प्रधान है और कौन अप्रधान इसका निर्णय जल्दी नहीं हो पाता, कहीं पर एक व्यंग्य के समर्थन के लिए ही दूसरा होता है और कहीं सभी व्यंग्यों की समान प्रधानता होती है। ध्वनि शब्द-शक्ति-मूलक, अर्थ शक्ति-मूलक, उभयशक्तिमूलक, पदगत, पदांशगत, वाक्यगत और प्रबंधगत आदि हर प्रकार की होती है। इन्हीं के आधार पर संस्कृत के आचार्यों ने ध्वनि के १०४५५ भेदों की व्याख्या की है। सब भेदों का यहाँ निरूपण करना अभीष्ट नहीं है।

जब कि व्यंग्य अर्थ मुख्य अर्थ की अपेक्षा अधिक चमत्कारक न होकर गौण रहता है और अप्रधान रूप में परिलक्षित होता है उसे गुणीभूत व्यंग्य कहते हैं। जिस काव्य में व्यंग्यार्थ गुणीभूत होता है उसकी कक्षा मध्यम है। हिन्दी भाषा की वर्तमान काव्य धारा अधिकांश इस मध्यम क्षेत्र में ही बह रही है। इसलिए यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि व्यंग्यार्थ में किन-किन शिथिलताओं के कारण काव्य की उत्तमता का अपकर्ष होता है।

व्यंग्यार्थ ऐसा न हो जिसे अल्पज्ञान और असहृदय भी अनायास समझ सकें। जैसे—

पगली आँखों में प्रियतम !
आँसू न सदा रहते हैं
पर मुझ से कोई पूछे
वेदना किसे कहते हैं !

आँखें पगली हैं। इसलिए इसका उन्हें ज्ञान नहीं कि आँसू से हीं पीड़ा प्रगट होती है। अपने पागलपन के कारण ही वे आँसू नहीं बहातीं। नहीं बहातीं, जाने दो। कोई पूछे तो मैं बता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



दूँ कि वेदना किसको कहते हैं। इष्ट व्यंग्य यह है कि आँसू से ही वेदना नहीं प्रगट होती। मैं वेदना का स्वयं प्रतीक हूँ। लेकिन यह अर्थ, अगूढ़ है, स्पष्ट है, सुनते ही आसानी से समझ में आ जाता है।

अथवा—अज्ञात वास के समय पाण्डव अर्जुन विराटराज के अन्तःपुर में सेवक के रूप में समय बिता रहे हैं। अपनी तत्कालीन तुच्छता को स्पष्ट करते हुए द्रौपदी से कहते हैं "पहले मैं ऐसा था कि मेरे शत्रु मेरी शरण में आकर जलती हुई लोहे की शलाका से स्वयं अपने कानों को छेदते थे। लेकिन आज वही मैं अपने हाथों से कमर की करधनी गूँथता हूँ। इसलिए सच पूछो तो मैं इस समय जीता नहीं हूँ।" पहले यह प्रथा थी कि शरणागत शत्रु के कान लोहे की जलती हुई सलाई से छेदे जाते थे। यहाँ व्यंग्यार्थ यह है कि मेरे ऐसे जीवन से तो मर जाना ही अच्छा है जो स्पष्ट है।

व्यंग्यार्थ ऐसा न हो कि किसी अन्य रस आदि अथवा अर्थ का अङ्ग कोई अन्य रसादिक बन जाय। जैसे—

नीवी के बन्धन ढीले
देखो वेदना नटी का!
रजनी में बिछुड़ी चकई
मैं महाभाष्य वह टीका

मैं वेदना का महाभाष्य हूं जिसे समझ लेना कोई हँसी-खेल नहीं। फिर क्या किया जाय? हाँ, मुझ महाभाष्य की एक टीका भी है। उसे समझो तो मुझे भी समझ सकोगे। वह टीका कौन है? वही, जो दिन भर अपने प्रियतम के साथ रह कर रजनी में विलग हो गयी हो। चकवा उस पार, चकई इस पार! लेकिन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



ऐसी मार्मिक करुणा को एक नटी का रूप दिया गया है जिसके नीवी की गाँठ संभोग शृङ्गार के अतिरेक के कारण ढीली हो रही है और वियोगी का आलिङ्गन किये है। यहाँ करुणा संभोग शृङ्गार के कारण प्रधान न होकर गौण हो गयी है।

व्यंग्यार्थ ऐसा न हो कि उसकी प्रतीति मुख्यार्थ की सिद्धि के ही लिए हो और इसलिए मुख्यार्थ का एक अङ्ग मात्र बना रहे। वस्तुतः व्यंग्यार्थ सेव्य होता है सेवक नहीं। जहाँ इसके विपरीत होगा वहाँ उसकी प्रधानता जाती रहेगी और वह गौण हो जायगा। जैसे—

"मेघ रूपी सर्प का विष ऐसा उग्र होता है कि विरहिणी स्त्रियों को चक्कर आने लगता है, वे निश्चेष्ट हो जाती हैं, उनको मूर्छा होने लगती है, दुर्बलता बढ़ते-बढ़ते अन्त में मरणासन्न दशा को प्राप्त हो जाती हैं।"

विष का अर्थ जल भी होता है और जहर भी। प्रकरणवश यहाँ विष शब्द का अर्थ जहर ही निश्चित किया जायगा। लेकिन उसकी प्रतीति सर्प के अर्थ की सिद्धि के लिए होती है।

व्यंग्यार्थ ऐसा न हो जो अत्यन्त स्पष्ट हो और विशेष कठिनता से समझ में आ सके। जैसे—"हे प्रिय, जब मैं तुम्हें नहीं देख पाती तब तुम्हारे दर्शन की उत्कण्ठा पीड़ित करती है, और जब तुम्हारा दर्शन मिलता है तब भी बिछुड़ने की आशंका सताती है। इसलिए न तब सुख न अब सुख।"

यहाँ व्यंग्यार्थ यह है कि 'चल चकवा वा देश में रैन कबौं नहिं होय' हे प्रियतम, ऐसा करो कि सर्वदा मेरे पास रहो और विलग होने का कोई अवसर ही न आये। लेकिन व्यंग्य की प्रतीति विशेष कठिनता से होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



व्यंग्यार्थ ऐसा न हो जहाँ इसमें संदेह हो कि व्यंग्यार्थ प्रधान है अथवा मुख्यार्थ। जैसे—

द्रोणाचार्य के बध के पश्चात् एक दिन दुर्योधन के सामने अश्वत्थामा और कर्ण में भयङ्कर विवाद हो गया। बात यह थी कि कर्ण ने स्वर्गीय आचार्य की वीरता की कटु और असह्य आलोचनाएँ की थी। विवाद यहाँ तक बढ़ा कि दोनों की तलवारें निकल गयीं। अन्त में अश्वत्थामा ने कहा—"कर्ण, सावधान! आज मैं अर्जुन की इस प्रतिज्ञा को मिथ्या किये देता हूँ कि कर्ण को मैं अपने हाथों से मारूँगा। अश्वत्थामा के हाथ फड़कने लगे।"

हाथ फड़कने लगे का मुख्य अर्थ यह है कि अश्वत्थामा के हाथों में स्पन्दन हुआ। व्यंग्यार्थ यह हो सकता है कि उसने तलवार का वार कर दिया और फलतः उसके हाथ सचेष्ट हुए। लेकिन पता नहीं किस अर्थ की प्रधानता है, लेखक को कौन सा अर्थ इष्ट है। क्योंकि ऐसा भी तो हो सकता है कि क्रोधावेग के ही कारण उसके हाथ फड़कने लगे हों नकि तलवार चलाने के कारण। यहाँ व्यंग्यार्थ संदिग्ध है।

व्यंग्यार्थ ऐसा भी न हो कि उसमें मुख्यार्थ की अपेक्षा अधिक चमत्कार न हो। मुख्यार्थ की समकक्षा में भी व्यंग्यार्थ गौण हो जाता है। जैसे—

"हे राक्षसराज, पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन करने वाले परशुराम तुम्हारे मित्र तभी होंगे जब ब्राह्मणों को सताना छोड़ दोगे।"

व्यंग्यार्थ यह है कि परशुराम भी ब्राह्मण हैं। ब्राह्मणों के सताये जाने से वे रुष्ट होंगे और पृथ्वी को उसी प्रकार राक्षस-विहीन बना देंगे जैसे उन्होंने उसे क्षत्रिय-विहीन बना दिया था। लेकिन इस व्यंग्यार्थ की और मुख्यार्थ की तुल्य-प्रधानता है।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



व्यंग्यार्थ ऐसा न हो कि वह मुख्यार्थ की अपेक्षा करें। ऐसा तभी होता है जब मुख्य अर्थ में व्यंग्य अर्थ की अपेक्षा अधिक चमत्कार होता है। जैसे—

"कुञ्ज में वंशी की टेर सुनकर माँ के पास बैठी हुई राधा के अङ्ग-अङ्ग व्याकुल होने लगे।"

व्यंग्य यह है कि कुञ्ज में कृष्ण को उपस्थित जानकर राधा की मिलन की अभिलाषा उत्कट होने लगी। लेकिन यह व्यंग्यार्थ मुख्यार्थ की अपेक्षा करता है क्योंकि 'अङ्ग-अङ्ग व्याकुल होने लगे' में अधिक चमत्कार है।

व्यंग्यार्थ ऐसा भी न हो कि काकुध्वनि से तुरन्त प्रकाशित हो जाय। यह ध्यान रखना चाहिये कि अनायास प्रकाशन से काव्य की रोचकता चली जाती है। जैसे—

"अश्वत्थामा ने कहा—अरे नीच कर्ण, क्या गुरु ( परशुराम जी ) के शाप के कारण मेरे भी शस्त्र तेरे ही तरह निर्वीर्य हैं? क्या तेरे ही तरह मैं भी युद्ध-भूमि से भागा हुआ हूँ? क्या तेरे तरह मेरा भी जन्म उस सूत के यहाँ हुआ है जो लोगों का झूठा-मीठा यश गाकर पेट भरता हैं। अब अपने को सँभाल।"

यहाँ व्यंग्यार्थ 'नहीं' है लेकिन वह वाक्य स्फोट के साथ ही अनायास प्रकाशित हो जाता है।

हर्ष, शोक, भय, और क्रोधादि के कारण जब कण्ठस्वर में विकार उत्पन्न हो जाता है तब वाक्योच्चारण कुछ और ही हो जाता है। उस अन्यथोच्चारण को ही काकु कहते हैं। वाक्योच्चारण का अन्यथा भाव वक्ता के आशय के अनुसार होता है और वक्ता के अभिप्रायभेद से अर्थभेद हो जाता है। इस कण्ठ विकार के गर्भ में कहीं 'हाँ' रहता है, कहीं 'नहीं' कहीं प्रश्न, कहीं उत्तर, कहीं तर्क और कहीं निर्णय भी रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अभिप्रायानुकूल कविता पाठ की भी एक कला है जिसे सभी कवि नहीं कर पाते। बहुत से कवि ऐसे होते हैं जो कविता तो सुन्दर से सुन्दर बना लेते हैं लेकिन वे विचारे कण्ठस्वर साधन के अभाव से उसे अच्छी तरह कह नहीं पाते। इसीलिए ऐसे भी अनेकों दृष्टान्त सुने गये हैं कि बहुत से कवि अपनी कविता के पाठ के लिए किसी सुकण्ठ को अपना साथी बना लेते हैं। सिद्ध कण्ठ से कही हुई कविता विचित्र सौन्दर्य और प्रभावशालिनी हो जाती है।

बहुतेरे कवि इस प्रकार कविता कहते हैं जैसे वे आतङ्कित हों, भयभीत हों। कुछ अव्यक्त कहते हैं, कुछ सानुनासिक (नकिया कर) कहते हैं, कुछ विस्वर कहते हैं, कोई व्याकुल होकर कहते हैं, कोई अनियंत्रित तालस्वर कहते हैं, कोई हर एक रस की कविता को गाकर ही कहते हैं, कोई तबलची की तरह झूम-झूमकर कहते हैं, कोई सिर हिलाकर कहते हैं और कोई पानी पी-पी कर कहते हैं। कोई बहुत जल्दी-जल्दी कह डालते हैं और कोई अरुचिकर विलम्ब से, कोई अधिक धीरे से कहते हैं और कोई बहुत जोर से, किसी की वाणी अत्यन्त कोमल होती है और किसी की अत्यन्त रूखी। इनकी गणना पाठ के दोषों में है।

विद्वानों का मत है कि जैसे सिंहनी अपने बच्चे को दाँतों में इस प्रकार दबाकर चलती है जिससे न तो शिथिलता के कारण छूटकर गिर जाय और न तो क्लिष्टता के कारण कट जाय, कविता-पाठ में भी वर्णों का उच्चारण उसी प्रकार होना चाहिये। विभक्तियाँ स्पष्ट हों, समास विकृत न हों, पदों की सन्धि प्रकाशित हो, विलग-विलग पदों की एकता न हो, एक पद में अकारण विच्छेद न हो, किंचिंद्विराम, अर्धविराम, पूर्णविराम और पूर्ण समविराम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



का सर्वदा ध्यान रहे। माधुर्य गुण की कविता में मधुरता टपकती हो, वर्णोच्चारण में लावण्य हो और भाषण कोमल हो। प्रसाद गुण की कविता में भाषण में गंभीरता होनी चाहिये और स्वर मध्यम होना चाहिये। ओजगुण की कविता में भाषण में तीव्रता और स्वर की उच्चता आवश्यक है।

माधुर्य गुणवती रचना का संगठन मधुर पदों के योग से होना चाहिये। मधुर पद वे होते हैं जिनमें ट, ठ, ड, ढ, को छोड़ कर 'क' से 'म' तक के अक्षर अपने वर्ग के अन्तिम अक्षरों से संयुक्त हों। जैसे—अनङ्ग, रङ्ग, भङ्ग, मञ्जु, मञ्जरी, मन्द, नन्दन, जगदम्ब, कदम्ब आदि। रेफ, णकार, और लम्बे-लम्बे समास न होने चाहिये। माधुर्य उस गुण का नाम है जो अपनी व्यञ्जना से हृदय को प्रसन्न कर देता है। 'आह्लादकत्वं माधुर्यं।'

रोष को उत्पन्न करना और हृदय को उत्तेजित करना ओजगुण का कार्य है। जिनमें वर्ग के प्रथम अक्षर के साथ उसी वर्ग का द्वितीय अक्षर और तृतीय अक्षर के साथ चतुर्थ अक्षर संयुक्त हों (जैसे अच्छ, उज्झ आदि) जिनमें रेफ और अर्ध रकार की अधिकता हो (जैसे कर्क, अद्रि, कृच्छ्र आदि) जिनमें 'ण' कार विहीन ट, ठ, ड, ढ, की घटा हो, लम्बे-लम्बे समासों और 'श' तथा 'ष' से युक्त रचना विकट हो, ऐसे पदों का वाहुल्य ओज गुण का पोषक माना गया है।

जिनके सुनते ही अभिलषित अर्थ की प्रतीति हो ऐसे भोले-भाले शब्द प्रसाद गुण के साधक होते हैं। जो संयोग होते ही हृदय पर सहसा उसी प्रकार अधिकार जमा लेता है जैसे सूखे हुए ईंधन पर आग, वही प्रसाद गुण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



माधुर्य आदि गुण रसके उपकारक और उत्कर्ष बढ़ाने वाले होते हैं।

माधुर्य गुण से युक्त शृङ्गार, करुण और शान्त रसों में विशेष चमत्कार आ जाता है। हास्य और अद्भुत रस भी इसकी अपेक्षा करते हैं।

ओज गुण वीर रस को शोभित करता है। यह वीर की अपेक्षा बीभत्स और बीभत्स की अपेक्षा रौद्र रस का विशेष उत्कर्ष बढ़ाता है।

प्रसाद गुण सभी रसों और भावों का अनिर्वचनीय उपकार करता है। इसका प्रभावक्षेत्र माधुर्य और ओज गुण के समान सीमित नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रस एक बड़ा व्यापक शब्द है और इस अर्थ का प्रयोग भिन्न-भिन्न प्रकरणों में भिन्न-भिन्न होता है। काव्य में इसका अर्थ बुद्धिगम्य आत्यन्तिक आनन्द से है।

सभी में रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, आश्चर्य और निर्वेद आदि भाव सतत वर्तमान रहते हैं। लेकिन ये तब तक जड़ और अकर्मण्य बने रहते हैं जब तक कि वेदना नहीं होती। ये भाव और वेदनाएँ संक्रामक होती हैं। कवि अपने भावों और वेदनाओं का एक योग प्रस्तुत करता है जिसे काव्य कहते हैं। इसी योग के प्रयोग से हमारे जड़ भावों में चैतन्य का संचार होता है। उनके जड़ अवस्था से चैतन्य अवस्था में आने ही से तो एक अनुपम आनन्द मिलता है। उसी आनन्द को रस कहते हैं। रस काव्य की आत्मा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सर्वसाधारण में वेदना का प्रचलित अर्थ 'पीड़ा' भ्रामक है। आश्चर्य है कि कुछ सज्ञान भी ऐसी गलती करते हैं। किसी ने अपने 'कवि और काव्य' में लिखा है:—

"अनादि विश्व वीणा से जो प्रथम स्वर निकला वह वेदना का ही विकल स्वर था। इसीलिए हम जन्म के प्रथम क्षण से ही क्रन्दन करते हुए माँ की गोद में आधार लेते हैं.........यह दुख, यह वेदना ही हमें उस करुणामय से मिला देती है जिसकी लीला का विस्तार यह संसार है।

वस्तुतः वेदना का अर्थ है अनुभूति। अनुकूल वेदना को सुख कहते हैं और प्रतिकूल वेदना को दुख। यदि वेदना विश्व-एकता की जननी है, यदि वेदना के ही माहात्म्य से अपने क्षुद्र अहं को भूलकर एक हृदय दूसरे हृदय को गले लगा लेता है, तो वह वेदना 'पीड़ा' नहीं हो सकती; उसका सुख भी हमारा होगा और दुख भी। किसी परवाने से पूछा जाय कि दीप-शिखा में भस्म हो जाने में जो वेदना होती है वह सुख है या दुख! किसी चकोर से पूछा जाय कि उसे चन्द्रिका पान करने में और चिनगारी चुंगने में जो वेदनाएँ होती हैं, वे क्या हैं? किसी दर्शक से पूछा जाय कि कोई अभिनय देखते समय करुण-मार्मिक प्रकरण से जो आँसू बहते हैं उनका स्वाद खारा होता है या मीठा!

ऊपर रति आदि स्थायी भावों का रस से क्या संबंध है यह स्पष्ट किया जा चुका है। ये ही भाव रस के मूलाधार होते हैं और रस की प्रतीति में आदि से अन्त तक स्थायी रहते हैं। ये भाव ही विभाव, अनुभाव, और संचारी भावों के सहयोग से रस के स्वरूप हो जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



जो रस को प्रगट करते हैं उन्हें विभाव कहते हैं। इनके दो कार्य हैं। एक तो मनोविकारों को आलम्बन देना और दूसरे उद्दीप्त करना। जैसे 'रति' भाव नायक और नायिकाओं का आलम्बन लेकर उठते और वाटिका, चन्द्रिका, फूल आदि से उद्दीप्त होते हैं।

आलम्बन की जो चेष्टाएँ रस का अनुभव कराती हैं उन्हें अनुभाव कहते हैं। इन चेष्टाओं के तीन प्रकार होते हैं। एक तो सात्विक जिसे स्वाभाविक कहना चाहिए। भय, लज्जा, आनन्द आदि के कारण निश्चेष्टता जिसे स्तंभ कहते हैं; पसीना बहने लगना जिसे स्वेद कहते हैं; पुलकित हो जाना जिसे रोमांच कहते हैं; वाणी का सीधे और स्पष्ट न निकलना जिसे स्वरभंग कहते हैं, अंग-प्रत्यंग का सिहर उठना जिसे कम्प कहते हैं, पीला-पड़ जाना जिसे वैवर्ण्य कहते हैं, आंसू बहाना और सुध-बुध खो देना जिसे प्रलय कहते हैं आदि सात्विक अनुभाव के अन्तर्गत आ जाते हैं। दूसरे कायिक। कायिक अनुभाव उसे कहते हैं जिसमें शारीरिक अंग भंगियों द्वारा अस्वाभाविक चेष्टाएँ की जाती हैं। तीसरे मानसिक। मानसिक अनुभाव उसे कहते हैं जहाँ उल्लिखित चेष्टाओं का आधार मन होता है।

इनके अतिरिक्त संचारी भाव होते हैं जो उदीयमान रस के उपकार के लिए समय-समय पर प्रगट होते हैं और अपना कार्य कर विलीन हो जाते हैं। ये रस का संचार करते हैं।

शारीरिक, हार्दिक और बुद्धि की अपरिमित वृत्तियों के अनुसार संचारी भाव अपरिमित हो सकते हैं। फिर भी आचार्यों ने इनके मुख्य तैतिस स्वरूपों का दिग्दर्शन किया है। निर्वेद, ग्लानि, शंका, अनसूया, श्रम, मद, धृति, आलस्य विषाद, मति, चिन्ता,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



मोह, स्वप्न, विबोध, स्मृति, अमर्ष, गर्व, उत्सुकता, अवहित्थ, दीनता, हर्ष, व्रीड़ा, उग्रता, निद्रा, व्याधि, मरण, अपस्मार, आवेग, त्रास, उन्माद, जड़ता, चपलता और वितर्क, नाम से विख्यात हैं।

स्वयं अपने में कुत्सितता का आक्षेप करना निर्वेद कहलाता है। जैसे "पुत्र वत्सल मेरे पिताजी ने तो मेरी मिथ्या मृत्यु सुनकर अकारण शस्त्र और प्राणों को छोड़ दिया। लेकिन मैं अश्वत्थामा ऐसा अधम हूँ कि उनके सत्य-वध को सुनकर भी अभीं जीवित हूँ।' यहाँ 'अधम' पद में निर्वेद संचारी भाव है। निर्वेद अमंगल सूचक शब्द है फिर भी, संचारियों में सर्वप्रथम उसीका उच्चारण करना अनुचित सा जान पड़ता है। लेकिन शान्त रस का स्थायी भाव भी निर्वेद ही है इसलिए ऐसा किया गया है।

शारीरिक और मानसिक पीड़ा के कारण जो अनुत्साह और शिथिलता होती है उसे ग्लानि कहते हैं। शङ्का में अपने इष्ट की हानि की संभावना से चिन्ता होती है। दूसरे की विभूति न देख सकने के कारण जो निन्दा की जाती है उसे असूया कहते हैं। शक्ति से अधिक परिश्रम करने से जो थकावट होती है उसे श्रम कहते हैं। मद स्पष्ट है। विपत्ति काल में बुद्धि की स्थिरता कोधृति कहते हैं। जागरण, श्रम, गर्भ, व्याधि इत्यादि के कारणकार्य करने में जो अनिच्छा और अनुत्साह होता है उसे आलस्य कहते हैं। उपाय और सामर्थ्य के अभाव में जो हताशा होती है उसे विषाद कहते हैं। भ्रम की भूमिका के वर्तमान रहने पर भी ज्ञान की अविकलता को मति कहते हैं। चिन्ता स्पष्ट है। भय और वियोग आदि से जो अज्ञानमूलक भ्रम और हृदय में व्याकुलता होती है उसे मोह कहते हैं। सोते में असत्य ज्ञान में भी सत्य की प्रतीतिहोना स्वप्न कहलाता है। भ्रम, निद्रा, और अज्ञान के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



हट जाने पर जो चैतन्य लाभ होता है उसे विवोध कहते हैं। अतीत में प्रत्यक्षीकृत पदार्थों की मानसिक पुनरावृत्ति को स्मृति कहते हैं। दूसरों के द्वारा की गयी निन्दा आक्षेप, अथवा अनादर से रुष्ट होकर साभिमान प्रतिकार वोधक बातें कहना अमर्ष कहलाता है। अपने को सर्वाधिक समझने को गर्व कहते हैं। अधिक विलम्ब को न सहकर कार्यसिद्धि के लिए तत्पर हो जाने को उत्सुकता कहते हैं। हृदय की वास्तविकता को कौशल से छिपाना अवहित्थ कहा जाता है। दीनता और हर्ष स्पष्ट हैं। व्रीड़ा का शाब्दिक अर्थ है 'लज्जा'। अनुचित कार्य करने के कारण अथवा स्वजातिगत धर्म होने के कारण संकुचित सा आचरण करने को व्रीड़ा कहते हैं। निन्दा अथवा अपमान आदि से निर्दयता की इच्छा करनेको उग्रता कहते हैं। निन्द्रा स्पष्ट है। वियोग आदि के कारण ज्वर आदि जो शारीरिक उत्पात होते हैं उन्हें व्याधि कहते हैं। मरण स्पष्ट है। अपस्मार को 'मृगी' रोग कहते हैं। इसलिए चक्करखाकर गिरने, मुह से बुद-बुद निकलने और श्वास-प्रश्वास की तीव्रता आदि में अपस्मार संचारी भाव समझना चाहिये। सहसा प्राप्त इष्ट अथवा अनिष्ट से हृदय में एक विचित्र अनुभूति होती है। उसे आवेग कहते हैं। आकस्मिक अमंगल से हृदय में जो व्याकुलता होती है। उसे त्रास कहते हैं। विरह, शोक, भय आदि की तीव्रता से मस्तिष्क विकृत हो जाता है। ऐसी अवस्था के अनर्गल आचरण को उन्माद कहते हैं। इष्ट अथवा अनिष्ट के साक्षात्कार से जो क्षणभर के लिए किंकर्तव्यविमूढ़ता होती है उसे जड़ता कहते हैं। चपलता स्पष्ट है। शंकास्पद विषय के उपस्थित होने पर हृदय में जो नाना विचार उठते और विलीन हो जाते हैं उन्हें वितर्क कहते हैं। ग्रन्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



विस्तार के भय से इन संचारी भावों के उदाहरण नहीं दिये गये हैं। पाठक उन्हें स्वयं ढूँढ़ लेंगे।

इस प्रकार रस परिपाक के चार अङ्ग हुए, स्थायी भाव, आलम्बन तथा उद्दीपन विभाव, अनुभाव और संचारी भाव।

*शृङ्गार रस में*—१. रति स्थायी भाव है। नायक और नायिका के परस्पर प्रेम को रति कहते हैं।
२. नायक और नायिका आलम्बन विभाव होंगे।
३. पूर्ण-चन्द्र, धवल चन्द्रिका, मधुमास, शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन आदि उद्दीपन विभाव होंगे।
४. मुसकाना, तिरछे देखना आदि अनुभाव होंगे।
५. निर्वेद आदि संचारी भाव होंगे।

शृङ्गार रस के दो पक्ष होते हैं। एक संभोग शृङ्गार और दूसरा विप्रलंभ शृङ्गार। जब प्रेमी नायक और नायिका विरह के अभाव में परस्पर मिलन के आनन्द का उपभोग करते हैं तब संभोग शृङ्गार होता है जैसे—

*सब से ऊँचे वातायन पर आनन्द-कन्द दशरथ-नन्दन।*
*पौरजनों के जनक, जानकी के जीवन सब तन-मन-धन—*
*बैठे थे, बैठीं मैथिलि भी थीं अपना धन साथ लिए।*
*ले न जाय कोई इससे कन्धे पर सीधा हाथ दिये॥*

विप्रलंभ का अर्थ होता है वियोग जब लौकिक व्यवधान अथवा स्वकीय मान आदि से दो प्रेमी परस्पर न मिलने के लिए विवश होते हैं। जैसे—

*ये सब स्फुलिंग हैं मेरी उस ज्वालामयी जलन के।*
*कुछ शेष चिह्न हैं केवल मेरे उस महामिलन के॥*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



वियोग के तीन प्रकार कहे गये हैं। एक पूर्वानुराग जब कार्यकारणवश आकस्मिक साक्षात्कार से दो प्रेमियों में प्रेम अंकुरित हो जाता है लेकिन फिर सामाजिक बन्धन के कारण वे मिलने के लिए स्वतन्त्र नहीं होते। दूसरा मान, जब दो मिले हुए प्रेमी प्रेम से रूठ जाते हैं। तीसरा प्रवास, जब मिलन का पूर्ण सुख लेने के उपरान्त किसी कारण से एक को विदेश जाना पड़ता है।

*हास्य रस में*—१. हास स्थायी भाव होता है।

२ हास्यास्पद व्यक्ति अथवा प्रसङ्ग आलम्बन विभाव होगा।

३. उलटी सीधी बातें और वेश-भूषा आदि उद्दीपन विभाव होंगे।

४. आँखें मुच-मुचाना और मुखको विकृत करना आदि अनुभाव होंगे।

५. उत्सुकता, निद्रा, आलस्य, चपलता, अवहित्था आदि संचारी भाव होंगे। जैसे:—

"आप प्रायः हर अंग्रेज के घर में जान वुल की तसबीर पायेंगे; मोटी, बीहड़ और बुड्ढी काया, सिर पर तिकोन्ना टोप, लाल वेस्टकोट कौर चमड़े का पतलून पहने तथा हाथ में एक मोटा, नाटा सोटा लिए हुए। जान वुल अंग्रेज जाति के आदर्श महापुरुष हैं। यदि किसी अंग्रेज के मुख से कड़ुई बातें संयोग से निकल गयीं, वह तुरन्त कहेगा मैं तो भाई जानवुल का चेला हूँ। कहूँगा सची और खरी-खरी, चाहे किसी को बुरा लगे या भला। अगर कोई अंग्रेज मामूली बात पर अकारण पतलूम से बाहर हो जाय,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



वह फौरन जान बुल की दुहाई देकर कहेगा—जान बुल जल्दी गरम हो जाते थे लेकिन मन में मैल नहीं रखते थे………।"

*करुणरस में*—१. शोक स्थायी भाव होता है।
२. मृत स्वजन अथवा शोचनीय अवस्था को प्राप्त प्राणी आलम्बन विभाव होगा।
३. मृतक की अन्त्येष्टि क्रियाएँ अथवा उससे सम्बन्ध रखनेवाली वस्तुएँ, अथवा उसका गुणकीर्तन सुनना आदि उद्दीपन विभाव होंगे।
४. अपने भाग्य को कोसना, मूर्छित होना, रोना आदि अनुभाव होंगे।
५. निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद, जड़ता, उन्माद, चिन्ता आदि संचारी भाव होंगे। जैसे—

श्मशान भूमि में कुमार रोहिताश्व का शव लेकर महारानी शैव्या विलाप करती हैं—मुझ सतायी हुई को और भी सताने में तुझे कौन-सा रस मिला दुर्दैव! जिस बालचन्द्र की शीतल चन्द्रिका में मेरे ताप खो जाते थे, निर्दय स्वामी के दुर्वचनों के घाव पर जिसकी तोतली बोली का मरहम लगाती थी वह भी आज मुझसे छीन लिया गया।……कोमल कमल के प्रलय के लिए हिमपात का ही नियम है। आज उलटा क्यों किया गया? मेरे नन्हें से सुकुमार 'प्राण' को विषम विष की ज्वाला में…… (मूर्छित हो जाती है)

*रौद्र रस में*—१. क्रोध स्थायी भाव होता है।
२. विपक्षी और क्रोध के पात्र आदि आलम्बन विभाव होंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



३. विपक्षी के अपराध आदि उद्दीपन विभाव होंगे।
४. लाल-लाल आँखें, भृकुटी, दाँतों का पीसना आदि अनुभाव होंगे।
५. मद, उग्रता, अमर्ष, स्मृति आदि संचारी भाव होंगे। जैसे—

द्रोणाचार्य के वध का समाचार सुनकर अश्वत्थामा ने कहा—जिन शस्त्रधारी मनुष्य-पशुओं ने इस गुरुवध रूपी पातक को किया है, अथवा उसमें अनुमति दी है, अथवा चुपचाप खड़े होकर देखते रहे हैं, उन सभी के और कृष्ण के, अर्जुन के, भीम के रक्त, मांस, मेदा और हड्डियों से दिशाओं को बलि प्रदान करूँगा।

*वीर रस में*—१. उत्साह स्थायीभाव होता है।
२. शत्रु का उत्कर्ष आदि आलम्बन विभाव होगा।
३. शंखध्वनी, रणभेरी, रणकोलाहल आदि उद्दीपन विभाव होंगे।
४. रणप्रयाण 'शस्त्र प्रयोग, रोमांच, अङ्ग स्फुरण आदि अनुभाव होंगे।
५. हर्ष, धृति, गर्व, असूया, स्मृति आदि संचारी भाव होंगे।

जैसे—दुःशासन की छाती पर सवार भीमसेन कहते हैं—जिस नरपशु ने द्रौपदी के बाल पकड़ कर खींचे थे, जिसने भरी सभा में गुरुजनों के सामने उसकी साड़ी पकड़ कर खींची थी और जिसकी छाती की रक्त-मदिरा पीने की मैंने प्रतिज्ञा की थी वही दुष्ट अब मेरे भुजपिञ्जर में अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा है। हे कौरवों! सामर्थ्य हो तो इसे बचाओ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



*भयानक रस में*—१. भय स्थायी भाव होता है।
२. शून्यस्थान, वन, सिंह आदि आदि भयास्पद आलम्बन विभाव होंगे।
३. इनके भयंकर व्यापार उद्दीपन विभाव होंगे।
४. कंप, रोमांच, स्वेद, कण्ठरोध, पलायन आदि अनुभाव होंगे।
५. जुगुप्सा संचारी भाव होगा।

जैसे—आखेट के समय राजा दुष्यन्त भागते हुए हरिण को देखकर अपने सारथी से कहते हैं—यह मृग थोड़ा-थोड़ा पृथ्वी पर पैर रखकर अधिकांश आकाश में ही भागा जारहा है। उसका बार-बार भय के मारे गला फेर कर रथ को देखना कितना सुन्दर मालूम पड़ता है। जब मैं बाण चलाता हूं तब बड़े कौशल से अपने शरीर का पिछला भाग अगले भाग से मिला देता है। अधिक दौड़ने के कारण अब यह थक गया है और इसके कुछ खुले मुख से आधे चवाये हुए कुश गिर रहे हैं।

*वीभत्सरस में*—१. जुगुप्सा स्थायी भाव होता है।
२. मांस, रक्त, हड्डियाँ आदि आदि आलम्बन विभाव भी होंगे।
३. गृद्ध, शृंगालादिकों का मांस नोचना-खसोटना उद्दीपन विभाव होंगे।
४. थूकना, नाक मूदना आदि अनुभाव होंगे।
५. मोह, असूया, अपस्मार, आवेग, व्याधि-मरण आदि संचारी भाव होंगे।

जैसे—शूद्र वेश में महाराज हरिश्चन्द्र देखते हैं—कौवे सिर पर बैठकर शव की आँखें निकाल रहे हैं, शृंगाल चड़े प्रसन्न होकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



उसकी जीभ खींच रहे हैं, गृद्ध जंघे पर बैठकर मांस खोद-खोद कर खा रहे हैं, कुत्ते अँगुलियों को ही काट-काट कर खाने का विचार कर रहे हैं..........।

*अद्भुत रस में*—१. विस्मय स्थायी भाव होता है।

२. अद्भुत के असाधारण व्यापार आलम्बन विभाव होंगे।

३. उसके अद्भुत गुण उद्दीपन विभाव होंगे।

४. स्तंभ, स्वेद, रोमांच, चकित भाव और कम्पादि अनुभाव होंगे।

५. वितर्क, भ्रांति, हर्ष और मोह आदि संचारी भाव होंगे।

जैसे—वामनावतार को देखकर राजा वलि चकित होकर कहते हैं—अरे ऐसी शोभा तो अब तक कहीं देखने में नहीं आई है। इनकी सभी अङ्ग-भङ्गियाँ और चेष्टाऐं नयी सी हैं, इनका धैर्य भी विचित्र है, इनके प्रभाव आश्चर्य जनक हैं। निश्चय ही ये किसी आश्चर्यजनक महान सत्ता के अवतार हैं।

*शान्तरस में*—१. निर्वेद स्थायी भाव होता है।

२. परम ज्ञान आलम्बन विभाव होगा।

३. एकान्त, निर्जन, सत्सङ्ग तीर्थाटन आदि उद्दीपन विभाव होंगे।

४. रोमांच आदि अनुभाव होंगे।

५. धृति, मति, निर्वेद, हर्ष, स्मृति आदि संचारी भाव होंगे।

जैसे—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



मुकुलित हो विकसित होना वृन्तों पर ही मुरझाना।
सुमनों का फिर सोच तनिक तो मिट्टी में मिल जाना॥
ऐसे ही सब थे, ऐसा ही सबको होगा होना।
इससे इस जीवन में प्यारे क्या हँसना क्या रोना?

विचार करने से विदित होगा कि इन रसों में शृंगार वीर और शान्त ही प्रधान रस हैं। शान्त और अद्भुत शृंगार रस के, रौद्र और भयानक वीर रस के, वीभत्स और करुण शान्त रस के सहायक से हैं।

शृंगार, हास्य, अद्भुत और शान्त रस का वर्ण ब्राह्मण, रौद्र और वीर का क्षत्रिय, करुण कावैश्य और भयानक तथा वीभत्स का शूद्र माना गया है।

शृङ्गार रस के देवता श्री कृष्ण, हास्य के प्रमथ ( महादेव जी के एक गण का नाम है ) अद्भुत के ब्रह्मा, शान्त के विष्णु, रौद्र के रुद्र, वीर के इन्द्र, करुण के वरुण, भयानक के यम, और वीभत्स के महाकाल कहे गये हैं।

शृंगाररस की हास्य और अद्भुत से, हास्य की शृङ्गार और अद्भुत से, अद्भुत की भयानक से, शान्त की करुण से, रौद्र की भयानक से, वीर की रौद्र से, करुण की शान्त से, भयानक की अद्भुत, रौद्र और वीभत्स से मित्रता स्वीकार की गयी है।

शृङ्गाररस के विरोधी वीभत्स, रौद्र, वीर और भयानक हैं। इसी प्रकार हास्य के शत्रु भयानक, करुण वीभत्स; अद्भुत का रौद्र; शान्त के वीर, शृङ्गार, रौद्र, हास्य और भयानक; रौद्र के हास्य शृङ्गार और अद्भुत; वीर के शान्त और शृङ्गार; करुण का हास्य; भयानक के शृङ्गार, हास्य और शान्त तथा वीभत्स का शृङ्गार माना गया है।

---



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसे माधुर्य आदि गुण रस के उत्कर्ष में योग देकर उपकार करते हैं वैसे ही काव्य में रस का अपकर्ष कर अपकार करने वाले दोष भी होते हैं। यद्यपि गुण-दोष मयी सृष्टि में पदार्थ का नितांत निर्दोष होना असंभव है फिर भी जहाँ तक हो सके दोषों से दूर रहने का नियम है। ऐसा तभी हो सकता है जब कि दोषों का ज्ञान हो।

वीर, वीभत्स और रौद्र आदि रसों में तो कठोर वर्णों की रचना शोभा देती है। लेकिन शृङ्गार, शान्त और करुण आदि कोमल रसों में उनका प्रयोग कटु होता है। अनावश्यक कठोर वर्णों के प्रयोग को श्रुति-कटु दोष कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



व्याकरण के नियमों के विरुद्ध शब्दों का प्रयोग दोष है। इसे च्युत-संस्कृति दोष कहते हैं।

व्याकरण और कोष आदि से समर्थित होते हुए भी यदि किसी शब्द का प्रयोग काव्य में न होता हो तो उसे छोड़ देना चाहिये। ऊपर कहा जा चुका है कि कवि का कोई भी नवीन शब्द-प्रयोग भाषा पर तब तक भार सा होता है जब तक श्रोता उसे समझने न लगें। ऐसे शब्दों के प्रयोग को अप्रयुक्त दोष कहते हैं।

जिस शब्द में ऐसी सामर्थ्य न हो कि वह अभिप्रेत अर्थ को प्रगट कर सके उसका प्रयोग न करें। इसे असमर्थ दोष कहते हैं।

यह विदित है कि एक शब्द के अनेक अर्थ भी होते हैं। उनमें से कुछ प्रचलित होते हैं और कुछ अप्रचलित। अप्रचलित अर्थ में शब्द का प्रयोग दोष है। इसे निहितार्थ दोष कहते हैं।

ऐसे शब्द का प्रयोग न करना चाहिये जो पात्र आदि के प्रतिकूल हो और अनुचित अर्थ का बोध कराता हो। जैसे 'जो परम गति कठिन से कठिन तपस्या से प्राप्त होती है उसी को रणाश्वमेध में पशुता को प्राप्त वीर क्षण भर में हस्तगत कर लेते हैं।' इसमें सन्देह नहीं कि रण में वीरों का बलिदान पशुओं की भाँति ही होता है फिर भी वीरों को 'पशुता को प्राप्त' कहना सर्वथा अनुचित है। इसे अनुचितार्थ दोष कहते हैं।

छन्द में पाद-पूर्तिमात्र के लिए कुछ व्यर्थ शब्दों का भी लोग प्रयोग कर देते हैं। कुछ न मिला तो 'अहो, अहा' ही रख देते हैं। यह दोष है। इसे निरर्थक दोष कहते हैं।

शान्त रस में घृणोत्पादक, शृङ्गार रस में अश्लील, और भविष्यवाणी में अशुभ सूचक शब्दों का प्रयोग होता है। लेकिन अन्यत्र ऐसे शब्दों से यथासंभव बचना चाहिये। इसे अश्लील दोष कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



ऐसे शब्द का प्रयोग न करना चाहिये जिसका दो प्रकार से अर्थ लगाया जा सकता हो और पाठक संदेह में पड़ जायँ कि कौन सा अर्थ लगाया जाय। इसे संदिग्ध दोष कहते हैं।

शास्त्र-विशेष में ही प्रयुक्त होने वाले शब्द का भी प्रयोग न करना चाहिये। इसे अप्रतीत दोष कहते हैं। जैसे—योगशास्त्र में 'आशय' शब्द का अर्थ होता है 'वासना'। इस अर्थ में यदि 'आशय' शब्द का प्रयोग अन्यत्र किया जायगा तो सर्वसाधारण नहीं समझ सकते।

नगण्य समाज में प्रचलित तुच्छ शब्दों का प्रयोग भी निन्दनीय है। जैसे 'भउजिया' आदि। इसे ग्राम्यदोष कहते हैं।

कुछ लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग सैकड़ों वर्षों से होता चला आता है और वे अपने अर्थ का बोध कराने में रूढ़ हो जाते हैं। कुछ लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग प्रयोजनवश किया जाता है। इन्हें पहले समझाया जा चुका है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे शब्दों का भी लोग प्रयोग कर देते हैं जो काम तो करने चलते हैं लक्षणा का लेकिन वह सामर्थ्य उनमें नहीं रहती। जैसे :—

आँखें जैसे सरसिज सतन्द्र
जिन पर भौंहें दो कुटिल मन्द्र
देता ललाट जिसका सुन्दर
उस पूर्ण चन्द्र को 'अर्धचन्द्र'

आकाश में पूर्ण चन्द्र है और इधर किसी सुन्दरी का चन्द्रमुख। दोनों में होड़ सी लगी है। सुन्दरी के ललाट का आकार अर्ध चन्द्र के समान है। ऐसा ललाट उस पूर्ण चन्द्र को अर्धचन्द्र अर्थात् गर्दनियाँ दे रहा है। यहाँ अर्ध चन्द्र में वह शक्ति नहीं है जिस प्रयोजन की सिद्धि के लिए इसका प्रयोग हुआ है। इसे नेयार्थ दोष कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



ऐसे शब्दों का प्रयोग न करना चाहिये जो अर्थ-प्रतीति में अनावश्यक बाधा उपस्थित करें। इस प्रकार शब्दव्यूह क्लिष्ट हो जाता है और उसका अर्थ बड़ी कठिनता से समझ में आता है। जैसे—'हे. हर-हार-अहार-सुत !' हर अर्थात् शङ्कर के हार अर्थात् सर्प के आहार अर्थात् पवन के सुत अर्थात् हनुमान। इसे क्लिष्ट दोष कहते हैं।

समासों का ऐसा आडम्बर न हो कि विधेय अंश अप्रधान हो जाय। जैसे—

'सुरदारादर्पणीभूतभूसितमणिमयीविभूषितभूप।'

कैलाश वर्णन में कोई कवि कहता है कि कैलाश पर्वत की भूमि ऐसी स्वच्छ और चिकनी है कि देवताओं की स्त्रियाँ जब शृंगार कर लेती हैं तो उसी के फर्श में अपना मुख देख लेती हैं। इस तरह कैलाश उनके दर्पण का काम करता है। ऐसी भूमि से वह पर्वत शोभित है। यहाँ समासों की घटा में विधेय अंश का जल्दी पता ही नहीं चलता। आचार्यों ने इसे अविमृष्टविधेयांश दोष कहा है।

ये सभी शब्द-दोष हैं। च्युतसंस्कार, असमर्थ और निरर्थक दोषों को छोड़कर ये सभी दोष वाक्यों में भी होते हैं। वाक्य रचना में ध्यान रखना चाहिये कि वर्णरचना रस के प्रतिकूल न हो, उनकी संधियाँ भद्दी और नियम के परे न हों, छन्द सुनने में कष्टकर न मालूम पड़ें, अभिमत अर्थ को प्रगट करने में एक भी पद की कमी न हो, अनावश्यक अधिक पद न रखे जायँ, निष्प्रयोजन शब्दों की पुनरावृत्ति न हो, वर्णन का उत्कर्ष क्रमशः ऊपर से नीचे न आता हो बल्कि नीचे से ऊपर चढ़ता हो ( इसे पतत्प्रकर्ष दोष कहते हैं ), कोई विषय एक बार समाप्त करके फिर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



से न प्रारंभ किया जाय (इसे समाप्तपुनरात्त दोष कहते हैं), पद्य के पूर्वार्ध का पूरक कोई एक पद पद्य के उत्तरार्ध में न बैठा हो, इष्ट से सम्बंधत्रुटि न हो, ऐसा न हो कि किसी आवेश में कहने योग्य बात भी न कही जाय, सभी पद अपने अपने स्थान पर हों जहाँ उनकी शोभा हो, ऐसा न हो कि एक वाक्यांश के शब्द दूसरे वाक्यांश में मिल कर गड़बड़ हो जायँ, ऐसा न हो कि एक वाक्य के भीतर दूसरा वाक्य घुस कर अव्यवस्था उत्पन्न करे, परम्परा और परिपाटी के विरुद्ध यथासंभव न हो वर्णन का क्रम न टूटे, उसकी धारा में शिथिलता न आये और अभीष्ट रस के विपरीत अन्य रस की प्रतीति न कराता हो।

विशेषणों का प्रयोग विशेष्य के अर्थ को पुष्ट करने के लिए होता है। अर्थों की सर्वाङ्गपुष्टता बहुत कुछ विशेषणों पर निर्भर रहती है। लेकिन ऐसे विशेषण का प्रयोग न करना चाहिये जो विशेष्य का कुछ भी उपकार न कर सकते हों और अर्थ की दृष्टि से उनका रहना न रहना बराबर हो। जैसे 'बड़ा विशाल।' इसे अपुष्ट दोष कहते हैं।

जैसे अत्यन्त दुरूह शब्दों के प्रयोग से काव्य के प्रति अरुचि हो जाती है उसी प्रकार अधिक दुरूह अर्थों से भी। जैसे—

बीती बातों में विह्वल
मुझको कहते हैं पागल
छल छिपते सरल क्षितिज को
छू-छू-छू छूछे बादल

"जिस प्रकार छूछे नीरस बादल बिना पानी बरसाये क्षितिज पर उमड़-घुमड़ कर चले जाते हैं उसी प्रकार अतीत की स्मृतियाँ भी मस्तिष्क में आती हैं और चली जाती हैं। कहने को तो वे सरस हैं लेकिन स्वप्नों में वे रस कहाँ जिनकी चाह है? इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



तरह मैं तो बीती बातों की उधेड़-बुन में व्याकुल हूँ परन्तु नासमझ संसार मुझे पागल कहता है।" पद्य के शब्द तो इतने सरल और सुबोध हैं। किन्तु अर्थ की प्रतीति बड़ी कठिनता से होती है। इसे अर्थ-कष्ट दोष कहा जाता है।

किसी पदार्थ की निन्दा कर फिर वहीं उसकी प्रशंसा करना, एक ही अर्थ को कई बार दुहराना, पदार्थों का जो उचित क्रम है उसके विपरीत क्रम रखना ( जैसे हाथी-घोड़ा न कहकर घोड़ा-हाथी कहना), असभ्य, संशयात्मक, व्यवहार विरुद्ध, शास्त्र विरुद्ध और रस विरुद्ध आदि अर्थों का प्रयोग न करना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसे शब्द और अर्थों के यथावत् सहभाव से साहित्य बनता है। सार्थक शब्दों के द्वारा जो कुछ भी कहा या लिखा जाय सभी साहित्य है। वाणी का जहाँ तक बुद्धि से सम्बंध है वहाँ तक साहित्य है। जहाँ बुद्धि अपनी प्रखरता में भी गौण रहती है और हृदय अपनी सरलता में भी प्रधान रहता है वहाँ वही साहित्य काव्य की पदवी को प्राप्त होता है। काव्य और साहित्य में यही अन्तर है।

लय और छन्द की विभूति से युक्त होने के कारण काव्य का स्तर साहित्य से ऊँचा है। काव्य के इतिहास से स्पष्ट है कि पहले समाज की बुद्धि और हृदय दोनों की भाषा गद्यमयी ही थी। सृष्टि की वह पुण्यतिथि धन्य कही गयी जब काव्य और साहित्य का परस्पर सहयोग हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



तमसा के तट पर वल्कल लपेटे एक जटा-जूट धारी अपनी राह पर था। उसके उन्नत ललाट पर पड़ी हुई रेखाओं से पूछो, वह क्या सोच रहा था! कोमल पवन कितना कठोर है जिसकी उद्दण्डता से शेफालिका के कितने हँसते हुए फूल वृक्षों से टूट - टूट कर पृथ्वी पर बिखरे हैं। और कुछ-कुछ लाल किसी श्यामा के गुलाबी कपोलों की तरह लोध के फूल मुस्कुरा रहे हैं। कमल-कुल ने अपना कोष आज खोल दिया है और मधुकर मनमानी कर रहे हैं। इनमें कौन सा परिचय है, क्या सम्बंध है? अपने को लुटाने में भी किसी को सुख मिलता है? सामने क्रौंच पक्षी का एक जोड़ा दिखायी पड़ा; दो हृदय जिनकी कहानी एक। मूकभाषा में दोनों के परस्पर प्रेमालाप कोई भावुक सहृदय ही समझ सकता था। शिशिर कणों से सिक्त सुरभित समीरण गुद-गुदा रहा था। वृक्षों पर लताएँ झूम रहीं थीं, सुमनों पर भँवरे घूम रहे थे। कोयल ने पञ्चम स्वर में न जाने क्या कह दिया। पुरुष ने स्त्री की पाखों को चोंच से सहलाया। क्रौंची सिहर उठी और फिर..........। क्रौंच मुग्ध था, क्रौंची मोहित। ऐसा मधुर मिलन जीवन के प्रत्येक क्षण में नहीं हुआ करता; केवल कभी-कभी। तपस्वी तन्मय हो गया।

सन्- सन् - सन्। शून्य को चीरती हुई एक कठिन तीर क्रौंच के कोमल कलेवर में घुस गयी। वह पृथ्वी पर लोटने लगा। पट-परिवर्तन। रक्त की धारा बहने लगी। प्राण छटपटाने लगे। प्रेम हाहाकार करने लगा। क्रौंची का सर्वस्व लूटा जा रहा था।

ऊपर किसी महान् के वरद करतल की व्यर्थ विडम्बना किये हुए नीला आकाश देख रहा था, नीचे सभी जड़ और चेतन देख रहे थे। क्रौंची की करुण चीत्कार किसी तीर से अधिक तेज थी। किसने नहीं सुना? किन्तु सब व्यर्थ। वह देखना और सुनना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



कैसा जिसकी वाणी द्वारा प्रतिक्रिया न की जा सके। सभी के करुणा की हिमस्थली पिघल पड़ी अवश्य लेकिन त्रिपथगा गंगा की तरह बाहर न बह सकी। जटाधारी ने भी देखा और सुना। उसकी भृकुटी चढ़ गई, आँखें अङ्गार हो गईं। आह, उसके ललाट पर भी कोई तीसरा शिव-नेत्र मिला होता तो निश्चय ही आज सार्थक हुआ होता। सहसा उस के ओठों में स्पन्दन हुआ और मुख से निकल पड़ा:—

*मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः !*
*यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥*

आदि कवि की आदि कविता ! संसार गुञ्जरित हो गया। "काम से मोहित क्रौंच के जोड़े में से एक की निर्मम हत्या करने वाले निषाद! अब तू संसार में अधिक न रह सकेगा॥" अब पल्लवों ने भी 'मर्मर' कर छिः-छिः किया। शून्य को लोग जड़ कहते हैं किन्तु उसने भी प्रतिध्वनि की। तमसा भी 'मां निषाद' का संदेश लेकर आगे बढ़ी।

× × × ×

माँ सरस्वती आज विकल थी। हिमालय पर्वत पर घोर तपस्या करने के पश्चात् विधाता प्रसन्न हुए थे और उन्होंने उसके लिए काव्यपुत्र की सृष्टि की थी। धन्य रे उसका स्वरूप ! शब्द और अर्थमयी जिसकी शरीर, रस जिसकी आत्मा, छन्द जिसके रोम माधुर्य, ओज, प्रसाद जिसके गुण, अनुप्रास, उपमा इत्यादि जिसके अलङ्कार ! ऐसे पुत्र को पाकर वह कृतार्थ हुई थी। थोड़ी देर पहले काव्यपुत्र को एक शिला पर लिटाकर गगन-गंगा में स्नान करने चली गई थी। लौटने पर पुत्र को वहाँ न पाकर उसका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



हृदय मानो खोगया, वात्सल्य छलक कर मर्माहत हुआ। उसने संसार से पूछा कि उसका पुत्र कहाँ छिपाया गया है।

पूछते-पूछते तमसा का तीर पकड़े न जाने किस गति से वह आगे बढ़ी जा रही थी कि उसे सुनाई पड़ा वही 'मा निषाद......' उसने समझा कि उसका खोया हुआ पुत्र मिल गया। काव्यपुत्र के अतिरिक्त और कौन छन्दोवद्ध वाणी में भाव प्रगट कर सकता था जो सरस्वती के भी मर्मों का स्पर्श करे। जिधर से वह ध्वनि आई थी उसी ओर वह आँधी हो गयी।

"मा, प्राचेतस वाल्मीकि प्रणाम करता है।"

"काव्यपुत्र! मेरे हृदय, तुम यहाँ!"

वात्सल्य के अतिरेक ने धोखा दिया।

'मैं तो दासानुदास वाल्मीकि हूँ मा। हाँ काव्यपुत्र को भी देखा है। समिध और कुश आदि एकत्र करते समय महामुनि शुक्राचार्य ने उन्हें एक शिला पर रोते हुए पाया। अनाथ बालक समझ कर अपने आश्रम में ले गये।

वहाँ पहुँचते ही बालक ने कहा—

जो कवियों द्वारा निरन्तर दूही जाने पर भी न दूही गयी की तरह बनी रहती है ऐसी सूक्ति-धेनु सरस्वती मेरे हृदय में वास करे।

दोनों शुक्राचार्य के आश्रम की ओर बढ़े। प्रिय पुत्र को प्राप्त कर देवी सरस्वती ने शुक्राचार्य को आशीर्वाद दिया—तुम "संत-कवि" होगे। बाल्मीकि को आदि कवि की उपाधि मिली।

× × × ×

एक दिन ब्रह्मलोक में ब्रह्मर्षियों में शास्त्रार्थ होने को था। ब्रह्मा ने देवी सरस्वती को मध्यस्थता करने का आदेश दिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



था। मा उक्त कार्य के लिए जब ब्रह्मलोक जाने लगी काव्यपुत्र मचल पड़ा।

"मैं भी चलूँगा।"

"बेटा, बिना ब्रह्मा की आज्ञा के तूँ वहाँ नहीं जा सकता।"

पुत्र को विवश होकर रुकना पड़ा। उसे बड़ा क्रोध आया मा और उस निर्मम ब्रह्मलोक पर। वह घर से न जाने कहाँ जाने के लिए निकल पड़ा!

कुमार कार्तिकेय ने प्रिय मित्र को बहुत कुछ समझाया लेकिन वह न रुका। फिर कुमार माता गौरी के चरणों में जाकर सिसकने लगे। गौरी ने गम्भीर मुद्रा से क्षण भर कुछ सोचा और फिर साहित्य वधू का सृजन किया। बड़ी-बड़ी आँखें जिनके एक कटाक्ष से जड़ भाव में चैतन्य हो, ऐसी मोहिनी कि जिससे तीनों लोक मचल जायँ, ऐसा विज्ञान और ऐसे हाव-भाव जो नित्य नवीन रहें।

उमा की आज्ञा से साहित्य-वधू ने अपने धर्मपति काव्यपुरुष को रिझाने और वापस लाने के लिए प्रस्थान किया। कवि, मुनि और काव्य-विद्या के स्नातकों का समुदाय भी अपने काव्य सर्वस्व की स्तुति करते हुए पीछे-पीछे चला।

साहित्य-वधू ने काव्य पुरुष को आकृष्ट करने के लिए, मुग्ध करने के लिए प्रसन्न करने के लिए भिन्न-भिन्न दिशाओं में भिन्न-भिन्न वेश-भूषा में अपने को सजाया, भिन्न-भिन्न प्रकार के नृत्य और वाद्य का आचरण किया और भिन्न-भिन्न प्रकार के वाग्विभ्रम का प्रयोग किया। उसी वेष परिवर्तन को "प्रवृत्ति", नृत्य-वाद्य-विलासादिकों के अनुवर्तन को "वृत्ति" और विभिन्न वाग्-भङ्गी के अनुशीलन को 'रीति' कहते हैं। जिस-जिस दिशा में काव्यपुरुष और साहित्य-वधू ने जैसी-जैसी वेषभूषा, विभ्रम तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



वाग्विलास को स्वीकृत किया उस-उस दिशा के स्त्री-पुरुषों ने प्रायः वही अपनाया।

साहित्यवधू सर्व प्रथम पूर्व दिशा की ओर बढ़ी जहाँ अङ्ग, वङ्ग. कलिङ्ग, वत्स, सुह्म, पुण्ड्र आदि जनपद थे. वहाँ उसने अपने को चन्दन से चर्चित कर, गले में मनोहर हार पहने, ललाट तक साड़ी डाले और अगरुचूर्ण का अनुलेपन कर काव्यपुरुष को प्रसन्न करने का उद्योग किया। वहाँ वह अभिधा-प्रधान रही। काव्यपुरुष के साथ-साथ फिर वह उत्तर दिशा की ओर बढ़ी जहाँ पांचाल, शूरसेन, हस्तिनापुर. काश्मीर, वाहीक, वाह्लीक आदि प्रदेश थे। कानों में झूमते कर्णफूल थे, नाभि तक लहराता मनोहर कण्ठहार था, और कटि प्रदेश में अन्तरीय की शोभा अद्वितीय थी। वहाँ वह लक्षणा प्रधान रही। अब काव्यपुरुष पश्चिम की ओर मुड़ा जहाँ अवन्ती, विदिशा सुराष्ट्र, मालवा, अर्बुद और भृगुकच्छ आदि स्थान थे। तदनन्तर वे सभी दक्षिण दिशा की ओर चले जहाँ कुन्तल, केरल, महाराष्ट्र, कोंकण. पाण्ड्य, आन्ध्र, दण्डक, द्राविण और गाङ्ग आदि प्रदेश तथा मलय, मेकल, पाल, मञ्जर आदि पर्वत थे। वहाँ साहित्य वधू के व्यंग्य प्रयोग से मुग्ध काव्य पुरुष आसक्त हो गया। घुघुराले बालों का जूड़ा सावधानी से बाँधा गया था। शोभन ललाट पर कहीं-कहीं चूर्ण कुन्तल मनोहर थे। शरीर की सुगन्धि में विशेष मादकता थी। फिर विदर्भ देश के वत्सगुल्म नामक नगर में (आजकल का "अकोला") दोनों का गान्धर्व विवाह हुआ।

ऊपर कहा जा चुका है कि वेश-विन्यास क्रम को प्रवृत्ति, विलास-विन्यास क्रम को वृत्ति और वचन-विन्यास क्रम को रीति कहते हैं। पूर्व दिशा में प्रयुक्त प्रवृत्ति को 'औड्रमागधी', वृत्ति को 'भारती' और रीति को 'गौड़ी' कहा गया है। गौड़ी रीति में समास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



तथा अनुप्रासों का अधिक प्रयोग होता है। उत्तर दिशा की प्रवृत्ति 'पांचाल मध्यमा' वृत्ति 'सात्वती' और रीति "पांचाली" कही गई है। पांचाली रीति में समासों का प्रयोग कम होता है। दक्षिण दिशा की प्रवृत्ति को 'दाक्षिणात्या', वृत्ति को कौशिकी और रीति को 'वैदर्भी'। कहते हैं 'वैदर्भी' रीति में अनुप्रास का प्रयोग होता है लेकिन समास का नहीं। पश्चिम दिशा में उत्तर और दक्षिण की मिश्र प्रवृत्ति, मिश्र वृत्ति और मिश्र रीति का ही प्रयोग हुआ है। इस प्रवृत्ति को 'आवन्ती', वृत्ति को 'सात्वती-कौशिकी' और रीति को 'लाटी' का नाम दिया गया है।

दक्षिण सागर से लेकर उत्तर दिशा की ओर हजार योजन तक, जिसकी सीमा विन्दुसर है, भारतवर्ष में उक्त प्रवृत्ति आदि कों का प्रयोग हुआ है। इस विस्तार को ही 'चक्रवर्ति क्षेत्र' कहा गया है। इस क्षेत्र के अतिरिक्त द्वीपान्तरों में वहाँ के निवासियों के अनुकूल वृत्तिप्रवृत्तियाँ होंगी।

विद्यार्थियों को आश्चर्य होगा कि क्या काव्य भी किसी मा से उत्पन्न हुआ, वह भी हमारी ही तरह मचलता था वह भी कभी किसी सुन्दरी के प्रेमपाश में बाँधा गया, आदि-आदि। अथवा किसी ऐसे बालक की भी कल्पना की जा सकती है जिसकी शब्द और अर्थ की बनी शरीर हो, छन्द रोम हों, रस आत्मा हो, माधुर्य, ओज और प्रसाद गुण हों और अनुप्रास, उपमा आदि अलङ्कार हों! लेकिन प्राचीनाचार्यों का उपर्युक्त उपन्यास इसलिये नहीं है कि उसे अनास्था पूर्वक कपोल-कल्पना मात्र समझा जाय। शिक्षा ग्रहण करने वाले की बुद्धि की कोमलता और सामर्थ्य को समझता हुआ शिक्षक भिन्न-भिन्न प्रणाली से शिक्षा देता है। यह शिक्षा देने की सर्वोत्तम प्रणाली है जिसमें मनोरञ्जन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



पूर्वक तथ्य निरूपण हो। इसी कहानी को एक बार, दो बार और दस बार पढ़ने से काव्य के रहस्य की कठिन गाँठ धीरे धीरे खुलती हुई दीख पड़ेगी। सचमुच बाल्मीकि और 'माँ निषाद.........को जितना ही अधिक समझा जा सके कवि और काव्य का स्वरूप उतना ही स्पष्ट होता जायगा। काव्यपुरुष और साहित्य-वधू का रूपक हमारे प्राचीन काव्य-साहित्य की रूप रेखा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हार्दिक अनुभूतियों की चरमावस्था में जब हृदय की विमुग्धता में मस्तिष्क के तर्कों का अन्तर्भाव हो जाता है तब अन्तर के गद्य अन्तर में ही पद्य के रूप में परिणत होकर गीत में प्रगट होते हैं। यह न समझना चाहिये कि गीत कोई बनाता है। वे आपसे आप बनते हैं, आपसे आप निकलते हैं। अपने गीत के एक चरण को पाकर फिर दूसरे चरण के लिए लालायित कवि समाधि से याचनामात्र करता है। वह मुँदी हुई आँखों के आलोकचक्र में अथवा शून्य में हँसते हुए किसी अस्पष्ट प्रकाश में वह किसी कल्पद्रुम के अमृत फलों को बटोर लिया करता है।

साधारण दीपक से वह प्रकाश नहीं हो पाता जो एक लालटेन से। क्यों? क्योंकि उस प्रकाश को लालटेन की चिमनी की मर्यादा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



में विशेष प्रभावशाली होने का जो अवसर मिलता है वह साधारण दीपक को नहीं मिल पाता। लय और छन्दों का बन्धन भी ऐसा ही होता है। इन्हें काव्य का वाह्याडम्बर अथवा उसकी सरल गति में वाधक समझना भूल है।

वर्णों और मात्राओं में समुचित सामञ्जस्य की स्थापना और उनकी लयपूर्ण व्यवस्था ही 'छन्द' है। यों तो छन्द अनन्त हो सकते हैं फिर भी साधारणतया लौकिक काव्य के छन्दविधान की दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं—मात्रिक और वार्णिक। इन्हीं को क्रमशः 'जाति' और 'वृत्त' भी कहते हैं। मात्रिक छन्दों में अक्षर तो न्यूनाधिक हो सकते हैं लेकिन मात्राओं की संख्या नियमित रहती है।

वर्ण के उच्चारण में जो विलम्ब होता है उसी को मात्रा कहते हैं। ह्रस्व वर्ण के उच्चारण में जो समय लगता है उसको एक मात्रा मानी जाती है। दीर्घ वर्ण की दो मात्राएँ होती हैं क्योंकि उसके उच्चारण में दूना समय लगता है। ह्रस्व और दीर्घ को छन्दशास्त्र में क्रमशः लघु और गुरु कहा जाता है। गणना की सुविधा के लिए इनके संकेत भी निर्धारित कर लिए गये हैं। एक सरल खड़ी रेखा (।) लघु का और (S) ऐसी वक्र रेखा गुरु का बोध कराती है।

अ, इ, उ, ऋ स्वरों से युक्त वर्ण ह्रस्व कहे जाते हैं और अन्य दीर्घ। संयुक्ताक्षर के पूर्व का अक्षर दीर्घ होता है भले ही वह लघु ही क्यों न हो। जैसे 'धम्मिल'। 'म्मि' संयुक्ताक्षर है। इसके पूर्व का अक्षर 'ध' है जो कि ह्रस्व है, लेकिन इसे दीर्घ ही कहा जायगा। जहाँ संयुक्ताक्षर के पूर्व वर्ण पर जोर देना उचित न हो वहाँ इस नियम में व्यभिचार भी होता है। जो वर्ण अनु-

६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



स्वार अथवा विसर्ग से युक्त हो उसे भी दीर्घ माना जाता है जैसे—एवं, फलतः। यहाँ 'वं' और 'तः' दीर्घ होंगे। हलन्त वर्ण की कोई मात्रा नहीं होती लेकिन उसके पहले वाले वर्ण को दीर्घ ही माना जाता है। जैसे—भगवन्! यहाँ हलन्त 'न्' की कोई मात्रा न होगी और उसके पूर्व वाले 'व' को दीर्घ माना जायगा।

प्रत्येक छन्द में कई दल होते हैं और प्रत्येक दल को 'चरण' कहते हैं। प्रथम और तृतीय चरणों को 'विषम चरण' तथा द्वितीय और चतुर्थ चरणों को 'सम चरण' कहा जाता है। छन्द तीन प्रकार के होते हैं; सम, अर्ध सम, और विषम। जिस छन्द के सभी चरणों की मात्राएँ समान होती हैं उसे सम कहते हैं। अर्ध सम छन्द में 'विषम चरणों की मात्राएँ एक श्रेणी की और सम चरणों की मात्राएँ दूसरी श्रेणी की होती हैं। जिस छन्द में प्रत्येक चरण की मात्राएँ अथवा वर्ण असमान हों उसे विषम कहते हैं।

मात्रिक 'सम' छन्दों की रचना दो प्रकार से होती है। एक को साधारण और दूसरे को दण्डक कहते हैं। दण्डक का अर्थ है श्वास-क्रिया को दण्ड देना। मात्रिक साधारण उस छन्द को कहते हैं जिसके प्रत्येक चरण में बत्तीस से अधिक मात्राएँ न हों। इससे अधिक मात्राएँ जब होती हैं तब श्वास-क्रिया दण्डित होती हैं; इसलिए बत्तीस से अधिक मात्राओं वाले छन्द को मात्रिक दण्डक कहा जाता है।

मात्रिक छन्दों में चरणान्तों की स्वराक्षर-मैत्री का नियम सा है। चरणान्तों के अक्षरों का समस्वरित होना ही 'तुक' कहलाता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि मात्रिक अतुकान्त छन्दों में कविताएँ हुई ही नहीं है। लेकिन जो नाद-सौन्दर्य मात्रिक तुकान्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



रचना में पाया जाता है वह अतुकान्त में नहीं। इसलिए प्रायः मात्रिक भिन्नान्त की अपेक्षा तुकान्त सर्वसाधारण को अधिक प्रिय रहा है। कुछ लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि अतुकान्त कविताएँ वार्णिक वृत्तों में ही होनी चाहिये, मात्रिक में नहीं।

जिस छन्द के चारों चरणों के अन्त्याक्षर समान होते हैं उसमें 'सर्वान्त्य' तुक होता है। जैसे—

मानसिक छोटा सा तो नीड़
बसी स्मृतियों की भारी भीड़
प्राण तो केवल पीड़ापीड़
करुण वीणा के कोमल मीड़

'समान्त्य-विषमान्त्य' तुक वहाँ होता है जहाँ तीसरे चरण के अन्त्याक्षर पहले चरण के अन्त्याक्षरों के समान और चौथे चरण के अन्त्याक्षर दूसरे चरण के अन्त्याक्षरों के समान होते हैं। जैसे-

गुंथने को दो फूल
प्रेम की मधुर डोर में
सपने वे अनुकूल
देख हम जगे भोर में॥

जहाँ केवल समचरणों के (दूसरे और चौथे) अन्त्याक्षर समान हों वहाँ 'समान्त्य' तुक होता है। जैसे—

चाँदी की एक मराली
सोने का पंख पसारे—
उड़ चली, अभागे आँसू—
तब मीठे थे, अब खारे!

जहाँ केवल विषम चरणों के (पहले और तीसरे) अन्त्याक्षर समान हों वहाँ 'विषमान्त्य' तुक होता है। जैसे—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



जाचै बारह मांस,
पियै पपीहा स्वाति-जल।
जान्यो तुलसीदास
जोगवत नेही मेह—मन॥

जहाँ दूसरे चरण के अन्त्याक्षर पहले चरण के अन्त्याक्षरों के समान और चौथे चरण के अन्त्याक्षर तीसरे चरण के अन्त्याक्षरों के समान हों वहाँ 'सम-विषमान्त्य' तुक होता है। जैसे—

भृङ्ग वह काला कहाँ कुरूप, मनोहर सरसिज कहाँ अनूप।
खोलकर कहे कोष अरविन्द, लूट लो मुझको मधुर मलिन्द।

तुकान्त में सबसे अधिक ध्यान देने की बात यह है कि जिन चरणान्तों का तुक मिलाना हो उनकी अन्तिम अधिक से अधिक मात्राओं में स्वरैक्य हो। इसी आधार पर तुक उत्तम, मध्यम और अधम, तीन प्रकार के कहे गये हैं। चरणान्त में दो गुरु होने पर कमसे कम अन्तिम पाँच मात्राओं का सम-स्वरित होना उत्तम, चारमात्राओं का समस्वरित होना मध्यम और दो मात्राओं का समस्वरित होना अधम कहा जायगा। 'विनाशिका—नाशिका' में पाँच मात्राओं का स्वरैक्य है। 'वह कोई—न कोई' में चार मात्राओं का स्वरैक्य है। 'घनेरी—हमारी' में केवल दो मात्राओं का स्वरैक्य है। चरणान्त में गुरु-लघु या लघु-गुरु होने पर अन्तिम कम से कम पाँच और चार मात्राओं का सम-स्वरित होना उत्तम, तीन मात्राओं का समस्वरित होना मध्यम, और दो अथवा एक मात्रा का समस्वरित होना अधम कहा जायगा। 'लाख हजार—विदारन हार' और 'वीरता—गंभीरता' में पाँच मात्राओं का स्वरैक्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



है। 'अनुकूल—समूल' और 'महिमामयी--नहीं गयी' में तीन मात्राओं का स्वरैक्य है। 'शृंग—पतङ्ग' और 'सुने—सामने' में केवल एक मात्रा का स्वरैक्य है। चरणान्त में दो लघु होने पर कम से कम अन्तिम चारमात्राओं का समस्वरित होना उत्तम, दो मात्राओं का समस्वरित होना मध्यम और एक मात्रा का समस्वरित होना अधम कहा जायगा। 'भारत-संभारत' में चार मात्राओं का 'छहर-सिहर' में दो मात्राओं का और 'पग-रंग' से एक मात्रा का स्वरैक्य है।

छन्द के किसी भी चरण में विरूप तुकान्त से नादसौन्दर्य का अपकर्ष होता है। तीन चरणों में 'हलकै-दलकै पलकै' द्वारा संचित सौन्दर्य को अन्तिम चरण का विरूप तुकान्त 'लफलचै' भ्रष्ट कर देगा। अभाष्ट तुकान्त के आदिम स्वरों की भिन्नता से भी नाद-सौन्दर्य में कमी पड़ती है। जैसे 'नवती है—वनावता है।' तुकों की अन्तिम मात्राओं की भिन्नता सब से अधिक खटकती है। जैसे 'अङ्ग—प्रियङ्गु।'

कहीं-कहीं तुकान्तों में द्वित्व बड़ा ही आकर्षक होता है। इसे वीप्सा तुक कहते हैं। जैसे—

वदन विलोकिवे को निरत निरेखत हौं,
चकित चकोरी सी चहूं दिशि चितै-चितै।
वारी ते निकारी सफरी सी धरती पै परी,
खाट-पाट लोटि-लोटि रोवहुँ नितै-नितै॥
रूप-रस राशि चखिबे को चख-अलि मोर
दूर तक दौरि ढींठ ढूढ़त उतै-इतै।
छोरिलो विछोह, छोह भरि दो हिये मे पुनि,
पिय, ना सताओ मोहिं मन ते वितै-वितै॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



समान स्वरूप वाले किन्तु असमान अर्थ वाले तुक नाद-सौन्दर्य के साथ-साथ काव्य-सौंदर्य की पुष्टि करते हैं। इसे यामिकी कहते हैं। जैसे—

उधर पपीहे रटते हैं—बरसो रसधर! रसधार।
इधर विकल प्राणोंकी रट-वरसो रसधर! रसधार॥

जहाँ तुकान्त के अन्तिम कुछ समान शब्दसंघ सभी चरणों के अन्तमें आते हैं वहाँ लाटिया तुक होता है। जैसे—

'शंकर' नदी-नद-नदीसन के तीरन की,
भाप वन अम्बर ते ऊँची चढ़ जायगी।
दोनों ध्रुव छोरन लौं पल में पिघलकर
घूम घूम धरनी धुरी सी वढ़ जायगी॥
झारैंगे अँगारे ये तरनि तारे तारापति,
जारैंगे खमण्डल में आग मढ़ जायगी।
काहू विधि विधि की बनावट बचैगी नाहिं
जो पै वा वियोगिनि की आह कढ़ जायगी॥

एक मात्रा से लेकर छः मात्राओं तक के छन्दों का व्यवहार हिन्दी भाषा में प्रायः नहीं हुआ है।

*सममात्रिक*—जिस छन्द के सभी चरणों में *सात* मात्राएँ हों और अन्त में गुरु हो उसे *सुगती* या *शुभगति* कहते हैं।

आठ मात्राएँ हों और अन्त में लघु-गुरु-लघु हों उसे *छवि* या *मधुभार* कहते है।

नव मात्राएँ हों और अन्त में गुरु-गुरु हों उसे *गङ्ग* कहते हैं।

नव मात्राएँ हों और अन्त में लघु हो उसे *निधि* कहते हैं।

दस मात्राएँ हों और अन्तमें तीन लघु-गुरु हों उसे *दीप* कहते हैं।

*ग्यारह* मात्राएँ हो और अन्त में लघु-गुरु-लघु हो उसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



आभीर, तीसरी, छठीं और नवीं मात्राएँ यदि लघु हों उसे *शिव* कहते हैं।

बारह मात्राएँ हों और अन्त में गुरु-लघु हों उसे *तोमर*, आदि और अन्त लघु हों उसे *ताण्डव*, अन्त में लघु-गुरु-लघु हो उसे *लीला* कहते हैं।

तेरह मात्राएँ हों और अन्त में त्रिकल हों उसे *उल्लाला* कहते हैं।

चौदह मात्राएँ हों और अन्त में गुरु-लघु हो उसे *कज्जल*, अन्त में गुरु-गुरु-गुरु अथवा लघु-गुरु-गुरु हों उसे *सखी*, आदिमें लघु हो उसे *विजात*, अन्त में गुरु हो उसे *हाकलि* कहते हैं।

चौदह मात्राएँ हो जिनमें सात-सात मात्राओं के खण्ड हों और अन्त में गुरु-लघु- गुरु हो उसे *मधुमालती*, अन्त में गुरु-लघु हो उसे *सुलक्षण*, आठ—छः के खण्ड हों और अन्त में लघु-लघु-लघु हो उसे *मनमोहन* कहते हैं।

पन्द्रह मात्राएँ हों और अन्त में लघु-गुरु हो उसे *चौबोला*, आदि त्रिकल तथा अन्त गुरु हो उसे *गोपी*, अन्तमें गुरु-लघु हो उसे *चौपई* अथवा *जयकरी*, अन्त में लघु-गुरु-लघु हो उसे *गुपाल* अथवा *भुजङ्गिनी*, अन्त में गुरु-गुरु-लघु हो तथा आदि में समकलके पीछे विषमकल हो उसे *पुनीत* कहते हैं।

सोरह मात्राएँ हों, आठ-आठ मात्राओं पर विश्राम हों, चरणान्त में लघु-गुरु-लघु हों उसे *पद्धरि*, अन्त में गुरु-लघु-लघु अथवा लघु-गुरु-गुरु हो उसे *अरिल्ल*, अन्त में गुरु-गुरु हों ( गुरु-लघु का सर्वथा निषेध हो ) उसे *चौपाई* कहते हैं।

सत्रह मात्राएँ हों, नव और आठ मात्राओं पर विराम हो और अन्त में लघु-गुरु-गुरु हो उसे *राम*, कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अट्ठारह मात्राएँ हों और नव-नव मात्राओं पर विश्राम हों उसे *माली* या *राजीवगण* कहते हैं।

*उन्नीस* मात्राएँ हों, दस और नव मात्राओं पर विश्राम हो और अन्त में लघु-गुरु हो उसे *पीयूषवर्ष*. बारह और नव मात्राओं पर विश्राम हो उसे *सुमेरु*, अन्त में गुरु-लघु हो उसे *तमाल*, अन्त में लघु-गुरु-लघु हो उसे *सगुण*, चौदह और पाँच मात्राओं पर विश्राम हो और अन्त में लघु-लघु-लघु-गुरु हो उसे *नरहरी*, नव और दस मात्राओं पर विश्राम हो और अन्त में गुरु-गुरु हो उसे दिण्डी कहते हैं।

*बीस* मात्राएँ हों, बारह और आठ मात्राओं पर विश्राम हो और अन्त में लघु-गुरु-गुरु हो उसे *योग*, अन्त में गुरु लघु हो उसे *शास्त्र*, ग्यारह और नव मात्राओं पर विश्राम हो उसे *हंसगति*, पाँच-पाँच-दस मात्राओं पर विश्राम हो और अन्त में गुरु-लघु-गुरु हो उसे *अरुण* कहते हैं।

एक्कीस मात्राएँ हों, आठ और तेरह मात्राओं पर विश्राम हो और अन्त में लघु-गुरु-लघु-गुरु हो उसे *प्लवङ्गम*, ग्यारह और दस मात्राओं पर विश्राम हो, अन्त में गुरु-लघु-गुरु हो उसे *चान्द्रायण*, तीन-छः-छः-छः मात्राओं पर विश्राम हो उसे *संत*, छः और पन्द्रह मात्राओं पर विश्राम हो और अन्त में गुरु-लघु हो उसे *भानु* कहते हैं।

बाइस मात्राएँ हों, आठ-आठ-छः मात्राओं पर विश्राम हो और अन्त में लघु-लघु-गुरु हो उसे *रास*, तेरह और नव मात्राओं पर विश्राम हो उसे *राधिका*, चौदह और आठ मात्राओं पर विश्राम हो उसे *विहारी*, बारह और दस मात्राओं पर विश्राम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



हो और अन्त में गुरु-गुरु हो उसे *कुण्डल*, अन्त में लघु-गुरु हो उसे *सुखदा* कहते हैं।

तेइस मात्राएँ हों, तेरह और दस मात्राओं पर विश्राम हों और अन्त में गुरु-गुरु हो उसे *उपमान* या *दृढ़पद*, छः-छः-ग्यारह मात्राओं पर विश्राम हों, आदि में गुरु हो और अन्त में गुरु-लघु-गुरु हो उसे *हीर*, दस-आठ-पाँच मात्राओं पर विश्राम हों और अन्त में गुरु-लघु हो उसे *जग*, ग्यारह-बारह मात्राओं पर विश्राम हो और अन्त में लघु-गुरु-लघु हो उसे *संपदा*, तेरह और दस मात्राओं पर विश्राम हो उसे *अवतार*, चौदह और नव मात्राओं पर विश्राम हो उसे *सुजान*, सोरह और सात मात्राओं पर विश्राम हो उसे *निश्चल*, पाँच-छः-छः-छः पर विश्राम हो उसे *मोहन* कहते हैं।

चौबीस मात्राएँ हों तथा ग्यारह और तेरह मात्राओं पर विश्राम हो उसे *रोला*, बारह और बारह मात्राओं पर विश्राम हो उसे *दिग्पाल* या *मृदुगति*, चौदह और दस मात्राओं पर विश्राम हो और अन्त में गुरु-लघु हो उसे *रूपमाला* या *मदन*, चौदह और दस मात्राओं पर विश्राम हो और अन्त में लघु-गुरु-लघु हो उसे *शोभन* या *सिंहिका*, सात-सात दस मात्राओं पर विश्राम हो उसे *लीला*, दस और चौदह मात्राओं पर विश्राम हो और आदि में लघु-गुरु तथा अन्त में गुरु-लघु हो उसे *सुमित्र* या *रसाल*, बारह और बारह मात्राओं पर विश्राम हो तथा आदि में गुरु हो उसे *सारस* कहते हैं।

*पचीस* मात्राएँ हों, सोरह और नव मात्राओं पर विश्राम हो और अन्त में लघु-गुरु हो उसे *गगनाङ्गना*, तेरह और बारह मात्राओं पर विश्राम हो और अन्त में गुरु-गुरु हो उसे *मुक्तामणि*, पन्द्रह और दस मात्राओं पर विश्राम हो और अन्त में गुरु-लघु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



हो उसे *सुगीतिका*, सत्रह और आठ मात्राओं पर विश्राम हों उसे *मदनाग*, दस-आठ-सात मात्राओं पर विश्राम हों और अन्त में गुरु-लघु हो उसे *नाग* कहते हैं।

*छब्बीस* मात्राएँ हों, सोरह और दस मात्राओं पर विश्राम हो और अन्त में गुरु-लघु हो उसे *शंकर*, अन्त में गुरु हो उसे *विष्णुपद*, नव-सात-दस मात्राओं पर विश्राम हो उसे *कामरूप*, सात-सात-सात-पाँच मात्राओं पर विश्राम हो उसे *झूलना*, चौदह और बारह मात्राओं पर विश्राम हो तथा अन्त में लघु-गुरु हो उसे *गीतिका*, अन्त में गुरु-लघु हो उसे *गीता* कहते हैं।

*सत्ताइस* मात्राएं हों, सोरह और ग्यारह मात्राओं पर विश्राम हो और अन्त में गुरु-लघु हो उसे *सरसी*, पन्द्रह और बारह मात्राओं पर विश्राम हो तथा अन्त में गुरु-लघु-गुरु हो उसे *शुभगीता*, चौदह और तेरह मात्राओं पर विश्राम हो और अन्त में गुरु-लघु हो उस *शुद्धगीता* कहते हैं

*अट्ठाइस* मात्राएँ हों, सोरह और बारह मात्राओं पर विश्राम हो और अन्त में गुरु गुरु हो उसे *सार* या *ललितपद*, सोरह और बारह मात्राओं पर विश्राम हो तथा अन्त में लघु-गुरु हो उसे *हरिगीतिका*. चौदह और चौदह मात्राओं पर विश्राम हो उसे *विधाता*. अन्त में लघु-गुरु-गुरु हो उसे *विद्या* कहते हैं।

*उन्तीस* मात्राएँ हों, तेरह और सोरह मात्राओं पर विश्राम हो और अन्त में लघु-लघु हो उसे *चुलियाला*, दस-आठ-ग्यारह मात्राओं पर विश्राम हो उसे *मरहटा*, ग्यारह-आठ-दस मात्राओं पर विश्राम हो उसे *मरहटामाधवी*, पन्द्रह और चौदह मात्राओं पर विश्राम हो उसे *धारा* कहते हैं।

*तीस* मात्राएँ हों, दस-आठ-बारह मात्राओं पर विश्राम हों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



और अन्त में गुरु हो उसे *चवपैया*, सोरह और चौदह मात्राओं पर विश्राम हो तथा अन्त में गुरु-गुरु-गुरु हो उसे *ताटंक*, अन्त में केवल दो गुरु हों उसे *ककुभ*, अन्त में एक ही गुरु हो उसे *रुचिरा*, आठ-आठ-आठ-छः मात्राओं पर विश्राम हो उसे *शोकहर* अथवा *शुभङ्गी*. तेरह और सत्रह मात्राओं पर विश्राम हो उसे *करण* कहते हैं।

*एकतीस* मात्राएँ हों, पन्द्रह और सोरह मात्राओं पर विश्राम हो और अन्त में गुरु-लघु हो उसे *वीर* कहते हैं।

*बत्तीस* मात्राएँ हों, दस-आठ-आठ-छः मात्राओं पर विश्राम हो तथा अन्त में गुरु हों उसे *त्रिभङ्गी*, दस-आठ-चौदह मात्राओं पर विश्राम हो तथा अन्त में गुरु-गुरु हो उसे *पद्मावती*, अन्त में लघु-लघु-गुरु हो उसे *दण्डकला*, अन्त में दो लघु-तीन गुरु हों उसे *दुर्मिल*, सोरह-सोरह मात्राओं पर विश्राम हो उसे *समान सवैया*, पन्द्रह-सत्रह मात्राओं पर विश्राम हो उसे *कमन्द*, आठ-छः-आठ-दस मात्राओं पर विश्राम हो उसे *खरारी* कहते हैं।

*सैंतिस* मात्राएँ हों और आठ-बारह-आठ-नव मात्राओं पर विश्राम हो उसे *करखा*, बीस-सत्रह पर विश्राम हो उसे *हंसाल*, दस-दस-दस-सात पर विश्राम हो उसे *द्वितीय झूलना*; *चालीस* मात्राएँ हों और दस-आठ-चौदह-आठ पर विश्राम हो उसे *मदनहर*, दस-दस-दस-दस पर विश्राम हो उसे *उद्धत* कहते हैं; *छियालीस* मात्राएँ हों और बारह-बारह-बारह-दस पर विश्राम हों उसे *हरिप्रिया* कहते हैं। स्मरण रहे, जिसमें बत्तीस से अधिक मात्राएँ हों उसकी गणना दण्डक में होती है।

*अर्धसम मात्रिक*—विषम पदों में बारह मात्राएँ और सम पदों में सात मात्राएँ हों उसे *बरवै* कहते हैं। अन्त में लघु-गुरु-लघु का क्रम हो तो अच्छा है। यदि अन्त में लघु-लघु-गुरु का क्रम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



हो तो उसे *मोहिनी* कहते हैं। विषम पद में बारह और सम पद में नव मात्राएँ हों उसे *अतिवरवै* कहते हैं। विषम पदों में तेरह और सम पदों में ग्यारह मात्राएँ हों तथा समपदों के अन्त में गुरु-लघु का क्रम हो उसे *दोहा* कहते हैं। विषम चरणों के आदि में लघु-गुरु-लघु का क्रम सर्वथा निषिद्ध है। विषम पदों में ग्यारह और समचरणों में तेरह मात्राएँ हों उसे *सोरठा* कहते हैं। दोहे को उलट देने से सोरठा हो जाता है। विषम पदों में पन्द्रह और सम पदों में ग्यारह मात्राएँ हों उसे *दोहा* कहते हैं विषम पदों में सोरह और सम पदों में ग्यारह मात्राएँ हो तथा अन्त में गुरु-लघु का क्रम हो उसे *हरिपद* कहते हैं। विषम पदों में सोरह और सम चरणों में चौदह मात्राएँ हों तथा अन्त में दो गुरु हों उसे *रुचिरा* कहते हैं। विषम पदों में अट्ठारह और समपदों में तेरह मात्राएँ हों तथा अन्त में तीन लघु हों उसे *धत्ता* कहते हैं। धत्ता के विषम पदों में यदि ग्यारह और सात मात्राओं पर विश्राम हो उसे धत्तानन्द कहते हैं।

*विषम मात्रिक*—प्रथम दल में तीस मात्राएँ हों और बारह-अट्ठारह पर विश्राम हो तथा द्वितीय दल में बत्तीस मात्राएँ हो और बारह-बीस पर विश्राम हो उसे *गाहिनी* कहते हैं। अन्त में गुरु होना चाहिये।

प्रथम दल में बत्तीस मात्राएँ हों और बारह-बीस पर विश्राम हो तथा द्वितीय दल में तीस मात्राएँ हों और बारह-अट्ठारह पर विश्राम हो उसे *सिंहिनी* कहते हैं। अन्त में गुरु होना चाहिये।

चौबीस-चौबीस मात्राओं के छः चरण हों, आदि के दो चरण दोहा और पश्चात् के चार चरण रोला हों, उसे *कुण्डलिया* कहते हैं। इसमें प्रयुक्त रोला का चतुर्थ चरण दोहा के आदिम कुछ शब्दों के प्रति और प्रथम चरण दोहे के अन्तिम शब्दों के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



प्रति सिंहावलोकन करता रहे। सिंहावलोकन का अर्थ है शब्दावृत्ति।

कुण्डलिया के दोहे के चतुर्थ चरण में अन्तिम तीन मात्राओं के अतिरिक्त आठ मात्राओं में विकट ध्वनि हो और वहाँ स्थित रोला के आदि में उसका विकट आवृत्ति भी हो उसे *अमृत ध्वनि* कहते हैं। पौनःपुन्य की शब्दावृत्ति ही इस छन्द की विशेषता है। इसमें कलापूर्वक आठ-आठ मात्राओं के तीन-तीन यमक रोला के प्रत्येक चरण में रखे जाते हैं जिसका आरम्भ दोहा के अंतिम चरण से ही हो जाता है। यह छन्द वीररस के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होता है। जैसे—

*प्रति उद्भट विकट जहँ, लरत लच्छ पर लच्छ।*
*श्री जगतेश नरेश तहँ अच्छच्छवि परतच्छ॥*
*अच्छच्छवि परतच्छच्छटनि विपच्छच्छय करि।*
*स्वच्छच्छित अति कित्तिस्थिर सुअमित्तिम्भय हरि।*
*उज्झिज्झहरि समुज्झिज्झहरि विरुज्झिज्झटपट।*
*कुप्पप्रगट सुरुप्पप्पगनि विलुप्पप्रति भट॥*

गुरु और लघु की भित्ति पर ही छन्द अवलम्बित रहते हैं। गुरु और लघु के नियमित समूह को गण कहते है। जो गण मात्रिक छन्दों के आश्रय होते हैं उन्हें मात्रिक और जिनका सम्बन्ध वार्णिक छन्दों से होता है उसे वार्णिक गण कहते हैं।

टगण, ठगण, डगण, ढ़गण और णगण आदि पाँच मात्रिक गण होते हैं। छः मात्राओं के समूह को टगण. पांच मात्राओं के समूह को ठगण, चार मात्राओं के समूह को डगण, तीन मात्राओं के समूह को ढगण और दो मात्राओं के समूह को णगण कहते हैं। एक मात्रा का गण नहीं होता। इन गणों का प्रयोग प्राचीनों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



ने प्रायः छन्दों के लक्षण विधान में किया हैं, किन्तु अब वह काम मात्राओं की संख्या के निर्देश से ही कर लिया जाता है।

मगण, नगण, भगण, यगण, जगण, रगण, सगण, और तगण ये आठ वार्णिक गण कहे जाते हैं। ये सभी गण त्रिवर्णात्मक होते हैं। तीन वर्ण, जिनकी मात्राएँ क्रम से गुरु-गुरु-गुरु ( SSS ) हों उसे मगण, लघु-लघु-लघु ( ।।। ) हों उसे नगण, गुरु-लघु-लघु ( S।। ) हों उसे भगण, लघु-गुरु-गुरु ( ।SS ) हों उसे यगण, लघु-गुरु-लघु ( ।S। ) हों उसे जगण, गुरु-लघु-गुरु ( S।S ) हों उसे रगण, लघु-लघु-गुरु ( ।।S ) हों उसे सगण तथा गुरु-गुरु-लघु ( SS। ) हों उसे तगण कहते हैं। म, न, भ, य, ज, र, स और त इनके सांकेतिक नाम हैं। इनके नाम सहित स्वरूप को कण्ठाग्र करने में निम्नलिखित सूत्र विशेष सहायक होगा:—

**यमाताराजभानसलगा**

इस सूत्र में 'य' से लेकर 'स' तक के आठ अक्षर आठो गणों के सांकेतिक नामों के समान है। 'ल' और 'ग' क्रम से लघु और गुरु के बोधक हैं। जिस गण का स्वरूप जानना हो उस अक्षर के साथ आगे के दो अक्षरों को मिला दें। अभिप्रेत गण का स्वरूप स्पष्ट हो जायगा। जैसे—तगण का स्वरूप जानना है। 'ता रा ज' इन तीनों अक्षरों का एक समूह बनालें। 'ता रा ज' में मात्राओं का जो क्रम है वही 'तगण' में भी होगा।

मगण की देवता पृथ्वी, नगण के देवता स्वर्ग, भगण के देवता चन्द्रमा, यगण के देवता जल, जगण के देवता सूर्य, रगण के देवता अग्नि, सगण के देवता वायु और तगण के देवता आकाश माने गये हैं। संभवतः इसी आधार पर मगण-नगण को *मित्र*, भगण-यगण को *दास* जगण-तगण को *उदासीन* और रगण-सगण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



को शत्रु गण कहा गया है। भारतीय कवियों का विश्वास रहा है कि कविता में मित्र-मित्र का योग सिद्धिदायक, मित्र-दास का योग जय देने वाला, मित्र-उदासीन का योग हानिप्रद, मित्र-शत्रु के योग का फल मित्र-नाश, दास-मित्र के योग का फल सिद्धि, दास-दास के योग का फल हानि, दास-उदास के योग का फल पीड़ा, दास-शत्रु के योग का फल पराजय, उदास-मित्र के योग का अल्पफल, उदास-दास के योग का फल दुःख, उदास-उदास के योग का फल व्यर्थ, शत्रु-मित्र के योग का फल शून्य, शत्रु-दास के योग का फल प्रियानाश, शत्रु-उदास के योग का फल शंका और शत्रु-शत्रु के योग का फल नाश होता है। गणागणों का दोष विशेषकर मात्रिक छन्दों में ही माना जाता है।

मित्र और दास गण (मगण, नगण, भगण और यगण) शुभ तथा उदासीन और शत्रुगण (जगण, तगण, रगण और सगण) अशुभ माने गये हैं। अशुभ गणों से यथासंभव बचना श्रेयस्कर कहा गया है। कुछ लोगों का मत है कि ग्रन्थ के आदि में ही शुभाशुभ गणों का विचार करना चाहिये। कुछ लोगों ने कहा है कि प्रत्येक प्रकरण के प्रारंभ में उसका विचार करना उचित है। कुछ लोगों की सम्मति है कि प्रत्येक पद्य में इसका विचार करना आवश्यक है। लेकिन इस अन्तिम मत का व्यवहार करना तो अत्यन्त कठिन है। विशेष कर वार्णिक वृत्तों में तो इसका अधिक विचार किया ही नहीं जा सकता।

नायिकाभेदादि नर काव्य में गणागण का विचार करना आवश्यक कहा गया है। देवकथा के प्रकरण में और देवता तथा मङ्गलवाची शब्दों में इसका विचार आवश्यक नहीं है। अशुभगण के पश्चात् शुभगण का नियोग कर देने से गण दोष दूर हो जाता है, ऐसा भी नियम है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



गणों के अतिरिक्त अक्षरों के शुभाशुभ का विचार होता है। सभी स्वर शुभ माने गये हैं। व्यञ्जनों के कवर्ग में 'ङ' अशुभ और शेष शुभ, चवर्ग में 'झ-ञ' अशुभ और शेष शुभ, टवर्ग में केवल 'ड' शुभ और शेष अशुभ, तवर्ग में 'त-थ' अशुभ और शेष शुभ, पवर्ग अशुभ, 'र-ल-व-ष-ह' अशुभ तथा 'य-श-स-क्ष' शुभ कहे गये हैं। इस प्रकार क ख, ग, घ, च, छ, ज, ड, द, ध, न, य, स, श, क्ष ये पन्द्रह अक्षर शुभ और ङ, झ, ञ, ट, ठ, ढ, ण, त, थ, प, फ, ब, भ, म, र, ल, व, ष, ह ये उन्नीस अक्षर अशुभ हैं। इन अशुभाक्षरों में से भी 'झ-ह-र-भ-ष' ये पाँच अक्षर अत्यन्त अशुभ माने गये हैं। इन्हें दग्धाक्षर कहते हैं। देवता और मङ्गलवाची शब्दों में दग्धाक्षरों का दोष नहीं होता। शेष स्थानों में पद्य के आदि में दग्धाक्षरों का प्रयोग निषिद्ध है। किसी भी दीर्घ अक्षर को दग्धाक्षर नहीं कहा जाता।

अपनी गति और यति की विशेषता से ही पद्य गद्य की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावशाली और रसमय होता है। पद्य में साहित्य, सङ्गीत और कला ये तीनों एक रस होकर अलौकिक आनन्द का सृजन करते हैं। गति का अर्थ है पाठ-प्रवाह। इसका स्पष्टीकरण नियम निर्देश से नहीं हो सकता। यह तो स्वाध्याय की वस्तु है। एक पद्य है—

*तामसी अमा, प्रियतम को*
*खोजूं या खुद खो जाऊँ*
*अम्बर के तारे गिन लूं*
*या सपनों में सो जाऊँ*

'तामसी अमा, प्रियतम को' के स्थान पर 'अमा तामसी, प्रियतम को' कहने पर पद्य का पाठ प्रवाह भ्रष्ट हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



कोई भी पद्य गतिभङ्ग नहीं सहन कर सकता। पद्य के लय को दृष्टि में रखते हुए प्रत्येक छन्द में निश्चित स्थान पर यति अत्यन्त आवश्यक होती है। यति का अर्थ है विश्राम।

*चल दिये चुभकर चुभोकर*
*इस गली के द्वार पर आ*
*प्यार से फिर मुड़ गये क्यो?*
*ताप अपने आप हर*
*घनसार से फिर उड़गये क्यों?*
*चरण चिन्हों को चुराये*
*जी रहा क्यों आज नीरस—*
*पुलिन! कल की लहरियों में—*
*डूब कर मुझको डुबो कर*
*चल दिये चुभ कर चुभोकर*

इस पद्य में कई स्थानों पर यतिभङ्ग है, एक चरण के अपेक्षित शब्द दूसरे चरण में चले गये हैं। पद्य में इन सब बातों का विशेष ध्यान रखना पड़ता है।

मात्रिक छन्दों में केवल मात्राओं की संख्या निश्चित रहती है। लेकिन वार्णिक छन्दों में वर्णों का लघु-गुरुमय क्रम और उनकी संख्या भी नियमित रहती है। वार्णिक के प्रत्येक चरण को समरूप होकर लय में चलना पड़ता है। मात्रिक की अपेक्षा इनमें अधिक बन्धन हैं। हिन्दी में जिन वार्णिक वृत्तों का प्रायः प्रयोग हुआ है उन्हीं का उल्लेख यहाँ किया जा सकता है।

वार्णिक वृत्तों में चरण के अन्त में, यदि आवश्यकता हुई तो अकारण ह्रस्व को भी दीर्घ मान लिया जाता है। कहीं-कहीं दीर्घ को भी अकारण ह्रस्व मान लिया जाता है।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



जिस छन्द के प्रत्येक चरण में चार अक्षर हों जिनके क्रम में—

| | | |
|---|---|---|
| १ | मगण—गुरु ( गोधूली में ) हों | उसे *कन्या* कहते हैं। |
| २ | मगण—लघु ( सीताराम ) हों | उसे *धार* कहते हैं। |
| ३ | यगण—गुरु ( हरोपीड़ा ) हों | उसे *क्रीड़ा* कहते हैं। |
| ४ | यगण—लघु ( महावीर ) हों | उसे *उषा* कहते हैं। |
| ५ | रगण—गुरु ( जीत हारा ) हों | उसे *रङ्गी* कहते हैं। |
| ६ | रगण—लघु ( श्यामगात ) हों | उसे *धारि* कहते हैं। |
| ७ | सगण—गुरु ( नर-नारी ) हों | उसे *देवी* कहते हैं। |
| ८ | सगण—लघु ( गुण-गान ) हों | उसे *पुञ्ज* कहते हैं। |
| ९ | तगण—गुरु ( मेरी सुनो ) हों | उसे *धारा* कहते हैं। |
| १० | तगण—लघु ( ये बादल ) हों | उसे *कृष्णा* कहते हैं। |
| ११ | जगण—गुरु ( कभीं नहीं ) हों | उसे *सुधी* कहते हैं। |
| १२ | जगण—लघु ( धराधर ) हों | उसे *धर* कहते हैं। |
| १३ | भगण—गुरु ( पान करे ) हों | उसे *कला* कहते हैं। |
| १४ | भगण—लघु ( रात-दिन ) हों | उसे *निशि* कहते हैं। |
| १५ | नगण—गुरु ( हरि भजो ) हों | उसे *सती* कहते हैं। |
| १६ | नगण—लघु ( जनमत ) हों | उसे *हरि* कहते हैं। |

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में पाँच अक्षर हों जिनके क्रम में—

१ मगण—गुरु-गुरु ( मेरी बाधाएँ ) हों उसे *प्रतिष्ठा* कहते हैं।

२ सगण—लघु-गुरु ( मधुयामिनी ) हों उसे *रति* कहते हैं।

३ सगण—लघु-लघु ( कदलीदल ) हों उसे *नायक* कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



४ तगण—गुरु-गुरु ( पूजा हमारी ) हों उसे *हारी* कहते हैं।
५ जगण—गुरु-गुरु ( बनी-बनायी ) हों उसे *यशोदा* कहते हैं।
६ भगण—गुरु-गुरु ( साँझ-सकारे ) हों उसे *पंक्ति* कहते हैं।
७ नगण—लघु-गुरु ( जगत सभी ) हों उसे *करता* कहते हैं।
८ नगण—लघु-लघु ( सरल,गति ) हों उसे *यमक* कहते हैं।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में छः अक्षर हों जिनके क्रममें—

१ मगण—यगण ( धीरे-धीरे रोना ) हों उसे *विद्युल्लेखा* कहते हैं।

२ यगण—यगण (महाराज आये) हों उसे *सोमराजी* कहते हैं।

३ रगण—रगण (प्राण! पीड़ा सहो) हों उसे *विमोहा* कहते हैं।

४ सगण—सगण ( अधराधर हैं ) हों उसे *तिलका* कहते हैं।

५ तगण—तगण ( कैसे कहाजाय ? ) हों उसे *मन्थान* कहते हैं।

६ तगण—यगण ( तारे जितने थे ) हों उसे *तनुमध्या* कहते हैं।

७ तगण—सगण ( आना जब कभी ) हों उसे *वसुमती* कहते हैं।

८ जगण—जगण ( अरे अनजान ! ) हों उसे *मालती* कहते हैं।

९ जगण—सगण ( विचार उनके ) हों उसे *अपरभा* कहते हैं।

१० भगण—मगण (तूं डरता क्यों है ?) हों उसे *अम्बा* कहते हैं।

११ नगण—यगण ( कदम बढ़ाते ) हों उसे *शशिवदना* कहते हैं।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में *सात* अक्षर हों जिनके क्रम में—

१ मगण—मगण—गुरु ( पीड़ाओं की ज्वाला में ) हों उसे *शिष्या* कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



२ मगण—सगण-गुरु (मोती-माल गले में ) हों उसे मदलेखा कहते हैं।

३ रगण—जगण-गुरु ( हास में, विलास में ) हों उसे समानिका कहते हैं।

४ सगण—रगण-गुरु ( सरिता के किनारे ) हों उसे हंसमाला कहते हैं।

५ सगण—सगण-गुरु ( तुमसे हम हारे ) हों उसे सुमाला कहते हैं।

६ तगण—यगण—गुरु ( साधारण भी भूलें ) हों उसे भक्ति कहते हैं।

७ तगण—मगण-लघु ( संसार सारा क्रूर ) हों उसे सूर कहते हैं।

८ जगण—सगण-गुरु ( कुमार ललिता री ) हों उसे कुमार ललिता कहते हैं।

९ भगण—तगण-गुरु ( सागर की सुन्दरी ) हों उसे लीला कहते हैं।

१० भगण—भगण-गुरु ( जो महिमा उनकी ) हों उसे तपी कहते हैं।

११ नगण—जगण-लघु ( सब कुछ नीरस ) हों उसे सवासन कहते हैं।

१२ नगण—सगण-लघु ( बरस रसधार ) हों उसे कलहंस कहते हैं।

१३ नगण—नगण-गुरु ( नव रसधर रे ! ) हों उसे मधुमती कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



जिस छन्द के प्रत्येक चरण में आठ अक्षर हों जिनके क्रममें—

१ मगण—मगण-दो गुरु (धीरे-धीरे तारे सारे) हों उसे *विद्युन्माला* कहते हैं।

२ मगण—यगण-गुरु–लघु (दौड़े लोग, ऐसा देख) हों उसे *वापी* कहते हैं।

३ रगण—रगण–गुरु-लघु (मानले रे, कहा मान) हों उसे *लक्ष्मी* कहते हैं।

४ रगण—जगण-गुरु-लघु (आसमान सा वितान) हों उसे *मल्लिका* कहते हैं।

५ सगण—मगण—दो गुरु (महिमा कौन बखाने ?) हों उसे *वितान* कहते हैं।

६ सगण—जगण-गुरु-गुरु (घनसार ये उड़ेंगे) हों उसे *ईश* कहते हैं।

७—तगण—रगण-लघु-गुरु (माना कि हो महाबली) हों उसे *नाराचिका* कहते हैं।

८ तगण—यगण—लघु–लघु (मानी, मनमानी तज) हों उसे *रामा* कहते हैं।

९ जगण—रगण-लघु-गुरु (चले गये जहाँ सभी) हों उसे *प्रमाणिका* कहते हैं।

१० भगण—रगण-दो लघु (कौन वहाँ रहा चुप) हों उसे *विपुला* कहते हैं।

११ भगण—भगण-दो लघु (भोर भये सब जागे) हों उसे *चित्रपदा* कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



१२ भगण—तगण—लघु-गुरु ( जीवन 'हाँ' और 'नहीं' ) हों उसे *माणवक* कहते हैं।

१३ नगण—नगण-गुरु-गुरु (यह तन बस माँटी ) हों उसे *तुङ्ग* कहते हैं।

१४ नगण—भगण—लघु—गुरु ( वदन-चन्द्र हंसता ) हों उसे *गजमती* कहते हैं।

१५ नगण—सगण लघु-लघु ( चुँग चुँग न आग री ) हों उसे *पद्म* कहते हैं।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में नव अक्षर हों जिनके क्रममें—

१ मगण—तगण—जगण ( चांदी के वे पंख पसार ) हों उसे *वर्ष* कहते हैं।

२ मगण—सगण—सगण ( आशाएँ इस जीवन की ) हों उसे *रलका* कहते हैं।

३ मगण—भगण—सगण ( तेरा मेरा सब सपना ) हों उसे *पवित्रा* कहते हैं।

४ रगण—नगण—सगण ( माँगते हम मधुकरी ) हों उसे *कुरूपा* कहते हैं।

५ रगण—रगण—रगण ( बीतती जा रही यामिनी ) हों उसे *महालक्ष्मी* कहते हैं।

६ रगण—नगण—रगण ( हेमकूट गिरिराज को ) हों उसे *भद्रिका* कहते हैं।

७ सगण—जगण—रगण ( चुप, पी कहाँ पपिहरा ! ) हों उसे *भुजङ्गसङ्गता* कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



८ जगण—यगण—यगण ( हमें मत यों हीं भुलाना ) हों उसे *भुवाल* कहते हैं।

९ जगण—जगण—यगण ( नदी नद हाय, सुखाने ) हों उसे *महर्षि* कहते हैं।

१० भगण—मगण—सगण ( सागर में नौका तिरती ) हों उसे *मणिमध्या* कहते हैं।

११ भगण—भगण—भगण ( देव सदा उपकारक ) हों उसे *शुभोदर* कहते हैं।

१२ भगण—यगण—यगण ( बात हम सच्ची कहेंगे ) हों उसे *निवास* कहते हैं।

१३ नगण—यगण—सगण ( तुम तरसाओ-तरसो ) हों उसे *सारङ्गिक* कहते हैं।

१४ नगण—सगण—यगण ( शरण भगवान मेरे ) हों उसे *बिम्ब* कहते हैं।

१५ नगण—नगण—सगण ( वियति चपल चपला ) हों उसे *रतिपद* कहते हैं।

१६ नगण—तगण—रगण ( तड़पते प्राण पीर से ) हों उसे *कामना* कहते हैं।

१७ नगण—नगण—मगण ( जनमत जब जगेगा ) हों उसे *भुजगशिशुसुता* कहते हैं।

१८ नगण—जगण—यगण ( जब तक नींद न आती ) हों उसे *श्रमी* कहते हैं।

१९ नगण—यगण—यगण ( परवश आखें विचारी ) हों उसे *श्याम* कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



जिस छन्द के प्रत्येक चरण में दस अक्षर हों जिनके क्रम में—

१ म—न—य—ग ( भौंरे अम्बुज़रस में भूले ) हों उसे *पणव* कहते हैं।

२ म—भ—न—ग ( लूटे लेती मधुर मुरली ) हों उसे *हंसी* कहते हैं।

३ म—स—ज—ग ( हे ऐसे त्रिपुरारि, हो कहाँ ) हों उसे *शुद्ध विराट* कहते हैं।

४ म—भ—स—ग ( आगे—आगे सुघर सलोने ) हों उसे *मत्ता* कहते हैं।

५ र—ज—र—ग ( एक वार देखने हमें दो ) हों उसे *मयूरी* कहते हैं।

६ र—य—ज—ग ( दीनता जहाँ शान्ति क्यों वहाँ ? ) हों उसे *कामदा* कहते हैं।

७ र—र—र—ग ( राम हूँ तो सभी मैं सहूँगा ) हों उसे *बाला* कहते हैं।

८ स—ज—ज—ग ( नवनीलनीरदसाँवले ) हों उसे *संयुक्त* कहते हैं।

९ स—स—स—ग ( सखि, सावन सुन्दर आया ) हों उसे *कीर्ति* कहते हैं।

१० त—र—स—ग ( रीती भरे, भरी ढ़रकावे ) हों उसे *धरणी* कहते हैं।

११ त—र—स—ल ( तूंही पती बचावनहार ) हों उसे *सेवा* कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



१२ त—ज—ज—ग ( मेरे मन-मन्दिर में रहो ) हों उसे *उपस्थिता* कहते हैं।

१३ त—य—भ—ग ( मोरे हिय मीठी आग लगी ) हों उसे *वामा* कहते हैं।

१४ भ—म—स—ग ( राम-रमा में प्रीति करो तो ) हों उसे *चम्पकमाला* कहते हैं।

१५ भ—भ—भ—ग ( ताकत हैं हरि नेह भरे ) हों उसे *सारवती* कहते हैं।

१६ भ—म—ज—ग ( दीपक-माला सी लसे लली ) हों उसे *दीपकमाला* कहते हैं।

१७ भ—म—भ—ग ( प्रेम करे क्यों तूं पावक से ) हों उसे *पावक* कहते हैं।

१८ भ—भ—म—ग ( विन्दु ललाट लसे सिन्दूरी ) हो उसे *विन्दु* कहते हैं।

१९ न—र—ज—ग ( अहह, आ रही मनोरमा ) हों उसे *मनोरमा* कहते हैं।

२० न—ज—न—ग ( भजन करो रघुबर का ) हों उसे *त्वरितगति* कहते हैं।

अब तक जितने वार्णिक वृत्तों का उल्लेख किया गया है, हिन्दी में प्राय: उनका प्रयोग गान के प्रथम चरण ( टेक ) के लिए किया जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



जिस छन्द के प्रत्येक चरणमें *ग्यारह अक्षर* हों जिनके क्रम में—

१ म—म—म—ग—ग (गा-गा-गा गूँथी लाना माला माली) उसे *माली* कहते हैं।

२ म—म—य—ल—ग (वीणा को मीड़ो सी जगे भारती) हों उसे *भारती* कहते हैं।

३ म—त—त—ग—ग (उषा शोभा शालिनी आज कैसी) हों उसे शालिनी कहते हैं।

४ म—भ—न—ल—ग (देखो फूली भ्रमरविलसिता) हों उसे *भ्रमरविलसिता* कहते हैं।

५ म—भ—त—ग—ग (वातोर्मी में सबका नाश होगा) हों उसे *वातोर्मि* कहते हैं।

६ म—न—न—ग—ग (माता मोर विनय सुन लीजै) हों उसे *माता* कहते हैं।

७ म—स—न—ल—ग (काहे तूं डरती मयतनया) हों उसे *मयतनया* कहते हैं।

८ य—य—य—ल—ग (भुजङ्गी हमारे तुम्हीं नाथ हो) हों उसे *भुजङ्गी* कहते हैं।

९ र—त—त—ग—ग (भक्त हैं जो वे बड़े भाग्यशाली) हों उसे *शाली* कहते हैं।

१० त—त—ज-ग—ग (हे, ना, नहीं, नाथ नहीं कहूंगी) हो उसे *इन्द्रवज्रा* कहते हैं।

११ ज—त—ज—ग—ग (अनाथिनी होकर ही रहूंगी) हो उसे *उपेन्द्रवज्रा* कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



१२ जहाँ इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनों मिली हों उसे उपजाति कहते हैं।[1]

१३ र—न—र—ल—ग ( रूपकी नियत रे विरूपता ) हो उसे *रथोद्धता* कहते हैं।

१४ भ—भ—भ—ग—ग ( रूप नहीं यह रूपक सारा ) हो उसे *दोधक* कहते हैं।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में *बारह* अक्षर हों जिनके क्रम में—

१ ज—त—ज—र ( कभीं मिटाये मिटती न कालिमा ) हो उसे *वंशस्थविल* कहते हैं।

२ स—स—स—स ( हरि के पद-पंकज में रति हो ) हो उसे *तोटक* कहते हैं।

३ र—र—र—र ( रार री राधिका श्याम सों क्यों करै ? ) हो उसे *स्रग्विणी* कहते हैं।

४ य—य—य—य ( किनारे-किनारे चला जा रहा हूं ) हो उसे *भुजङ्गप्रयात* कहते हैं।

५ न—भ—भ—र ( बरसता नभ से रसधार हो ) हो उसे *द्रुतविलम्बित* कहते हैं।

६ ज—ज—ज—ज ( सरोवर में लहरें चुपचाप ) हो उसे *मौक्तिकदाम* कहते हैं।

जिस छन्दके प्रत्येक चरण में *तेरह* अक्षर हों जिनके क्रममें—

१ म—त—य—स—ग (आँखों में हैं सावन की सी बरसाते) हो उसे *माया* कहते हैं।

---

१ इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के योग से सोरह प्रकार के वृत्त बनते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



२ र—त—म—ग ( राम सीता राम सीता, राम सीता गा ) हो उसे *राधा* कहते हैं।

३ र—ज—र—ज—ग ( देख ले न खूब-खूब है खिली कली ) हो उसे *राग* कहते हैं।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में चौदह अक्षर हों जिनके क्रममें—

१ स—स—ज—र—ल—ग ( दिल से, हम आज जो, गले-गले मिलें ) हो उसे *मञ्जली* कहते हैं।

२ त—भ—ज—ज—ग—ग ( ऐसा न हो कि हमको तुम भूल जाओ ) हो उसे *वसन्ततिलका* कहते हैं।

३ ज—र—ज—र—ल—ग ( कहीं-कहीं प्रभात है कहीं निशा-अभीं ) हो उसे *आनन्द* कहते हैं।

जिस छंदके प्रत्येक चरण में पन्द्रह अक्षर हों जिनके क्रममें—

१ म—म—म—म—म ( वाधाएँ हैं तो होने दो मैं तो आगे जाऊँगा ) हो उसे *कामक्रीड़ा* कहते हैं।

२ र—ज—र—ज—र ( मन्द-मन्द नंदके दुलार छंद से चले ) हो उसे चामर कहते हैं।

३ न—न—म—य—य ( सखि, सकल दिशा में आगसी क्यों लगी है ? ) हों उसे *मालिनी* कहते हैं।

४ न—न—न—न—स ( चरण-कमल तव बल निरवल के ) हो उसे *शशिकला* कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



जिस छन्द के प्रत्येक चरण में *सोरह* अक्षर हों जिनके क्रम में—

१ र—ज—र—ज—र—ल ( राम के विना कहो कहूं किसे सदा सहाय ? ) हो उसे *चंचला* कहते हैं।

२ ज—र—ज—र—ज—ग ( हरी-हरी पुकारती हरी-हरी लतान में ) हो उसे *पंचचामर* कहते हैं।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में *सत्रह* अक्षर हों जिनके क्रममें—

१ म—भ—न—त—त—ग—ग ( धीरे-धीरे दिनकर कढ़े तामसी रात बीती ) हो उसे *मन्दाक्रान्ता* कहते हैं।

२ म—भ—न—म—य—ल—ग ( पाऊँ तेरे, चरण-रज है, मेरी मनोकामना ) हो उसे *हारिणी* कहते हैं।

३ य—म—न—स—भ—ल—ग ( कहो होते हो क्यो, कुपित तुम हे प्यार ! मुझसे ? ) हो उसे *शिखरिणी* कहते हैं।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में *अट्ठारह* अक्षर हों जिनके क्रम में—

१ म—स—ज—ज—भ—र ( हाँ-हाँ हाँ तुम ठान लो, निज देश के हित में मिटूँ ) उसे *हरिणप्लुता* कहते हैं।

२ म—त—न—य—य—य ( फूली कैसी है, कुसुमितलता, देखते ही बनेगा ) हो उसे *कुसुमितलतावेल्लिता* कहते हैं।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में *उन्नीस* अक्षर हों जिनके क्रम में—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



१ य—म—न—स—त—त—ग ( हमारी बाधाएँ सकल हरि-राधा ही हरेंगे ) हो उसे *छाया* कहते हैं।

२ म—स—ज—स—त—त—ग ( श्री वृन्दावन की मनोज्ञ मधुरा, श्यामायमाना मही ) हो उसे शार्दूलविक्रीड़ित कहते हैं।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में *बीस* अक्षर हों जिनके क्रममें—

१ म—र—भ—न—य—भ—ल—ग ( सेवाओं में हमारी, सतत त्रुटि रही हैं, नाथ! इससे ) हो उसे *सुवदना* कहते हैं।

२ स—भ—र—न—म—य—ल—ग ( तुझ में ही भगवान हैं बस रहे, तूं ढूढ़ता है कहाँ ) हो उसे *मत्तेभविक्रीड़ित* कहते हैं।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में *एक्कीस* अक्षर हों जिनके क्रममें—

१ म—र—भ—न—य—य—य ( पीछे मैं तो हटूंगा न, रवि-सुत भले काल भी सामने हो ) हो उसे *स्रग्धरा* कहते हैं।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में *बाइस* अक्षर हों जिनके क्रममें—

१—सात भगण—एक गुरु ( मालिनि को जयमाल गुथ्यो हरिके हिय जानकि मेल दियो ) हो उसे *मदिरा* ( सवैया ) कहते हैं।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में *तेइस* अक्षर हों जिनके क्रममें—

१ सात भगण—ग—ल ( खेलत, खोलत गाँठ गँभीर परी अलि-पुञ्जन सी अलकान ) हो उसे चकोर ( सवैया ) कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



२ सात जगण--ल—ग ( सुजोग मिलाइ वियोग दई जु दई निदईहिं सरापत हौं ) हो उसे *सुमुखी* ( सवैया ) कहते हैं।

३ सात भगण–ग–ग (राग मनों लहकारत सी फहरै सखि, केश ज्यो कामपताका ) हो उसे *मत्तगयन्द* ( सवैया ) कहते हैं।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में *चौबीस* अक्षर हों जिनके क्रम में—

१ आठ सगण ( अवधेश के बालक चारि सदा, तुलसी मन-मन्दिर में विहरैं ) हों उसे *दुर्मिल* ( सवैया ) कहते हैं।

२—आठ तगण ( क्यों वेदना में बजें आज बेकार, टूटी हुई वीन के दीन दो तार ) हों उसे *आभार* ( सवैया कहते हैं।)

३—आठ जगण ( सदा रघुनाथ धरे धनुहाथ विराजहु सानुज मों मन माहि ) हों उसे *मुक्तहरा* ( सवैया ) कहते हैं।

४ सात जगण—यगण ( सहायक हों रघुनायक जो तव सायक मोद वढ़ावन हारे ) हो उसे *वाम* ( सवैया ) कहते हैं।

५ सात भगण—रगण ( लीजै कलंक न दिल्ली के वालम आलम आलमगीर कहायकै ) हों उसे *अरसात* ( सवैया ) कहते हैं।

६ आठ भगण ( हूक उठा उरमें मत री रुक जा उसको कर टूक न कोयल ) हों उसे *किरीट* ( सवैया ) कहते हैं।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में *पचीस* अक्षर हों जिनके क्रममें—

१ आठ सगण—गुरु ( दुखिया अँखिया नित वारि गिरावत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



हैं अँसुवान न नापत हौं री ) हों उसे *सुन्दरी* ( सवैया ) कहते हैं।

२ भ—म—स—भ—न—न—न—न—ग ( कोकिल कूजै, गुञ्जत भँवरे, विकच कमल युत सब सर—सरिता ) हो उसे *क्रौंच* कहते हैं।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में छब्बीस अक्षर हों जिनके क्रम में—

१ आठ सगण—लघु—लघु ( ममता तजिकै समता गहिकै मनमोहन क्यों न भजै मनमूरख ? ) हों उसे *सुख* कहते हैं। जिन छन्दों के प्रत्येक चरण में *छब्बीस* से अधिक अक्षर होते हैं उनकी गणना वार्णिक दण्डक में होती है। ये दण्डक दो प्रकार के होते हैं—साधारण और मुक्तक। अन्यवार्णिक छन्दों की तरह जो गण-नियमों से नियमित होते हैं उन्हें साधारण दण्डक कहा जाता है। जैसे—'*सच्चिदानन्द आनन्द के कन्द को छाड़िकै रे मतीमन्द ! भूलोफिरै ना कहूँ*' इसमें नव रगण हैं। लेकिन हिन्दी भाषा में वार्णिक साधारण दण्डक का प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है।

मात्रा और गण—बंधन से मुक्त दण्डक मुक्तक कहलाते हैं। मुक्तक में केवल अक्षरों की संख्या निर्धारित रहती है और कहीं-कहीं पर लघु-गुरु का साधारण नियम होता है। मनहरण, जलहरण, रूपघनाक्षरी और देवघनाक्षरी आदि हिन्दी में विशेष प्रचलित मुक्तक हैं। इनको कवित्त भी कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



मनहरण——इसे घनाक्षरी भी कहते हैं। इसके प्रत्येक चरण में एकतीस अक्षर होते हैं। आठ-आठ और आठ-सात अक्षरों पर यति होती है। अन्त में दो अथवा एक गुरु होता है। जैसे—

चंचल चमाकैं चहूँ औरन तैं चाय भरी,
चरजि गई ती फेरि चरजन लागी री।
कहैं पद्माकर लवङ्गन की लोनी लता,
लरजि गई ती फेरि लरजन लागी री॥
कैसे धरों धीर वीर! त्रिविध समरै तन,
तरजि गई ती फेरि तरजन लागी री।
घुमड़ि घमण्ड घटा घन की घनेरी आवै,
गरजि गई ती फेरि गरजन लागी री॥

जलहरण——इसके प्रत्येक चरण में बत्तीस अक्षर होते हैं। आठ-आठ और फिर नव-सात अक्षरों पर यति होती है। चरणान्त में दो लघु होते हैं। जैसे—

चातक चिहुक मत, मुरवा कुहुक मत,
झींगुर झिहुक मत, भेकी मननाय मत।
चकवा चिकार मत, पपिहा पुकार मत,
बुन्द झर धार मत, धार धहराय मत॥
कृष्णलाल गाय मत, पीर उपजाय मत,
बीर मन धीर धरु धीर ललचाय मत।
पौन फहराय मत, चपला चबाय मत,
धाय मत धुरवा औ घन घहराय मत॥

रूपघनाक्षरी——इसके प्रत्येक चरण में बत्तीस अक्षर होते हैं। सोरह-सोरह अक्षरों पर यति होती है। चरणान्त में गुरु-लघु रखने का नियम है। जैसे—



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



मल्ली द्रुम वलित ललित पारिजात पुञ्ज,
मञ्जु बन बेलिन चमेलिन महमहात।
रांची भूमि हरित हरित तृण जालन सों,
बिच-बिच खात त्यों फुहारन सों छहरात॥
जित-तित माधवी निकुञ्ज छई बीथिन में,
फटिक शिलानि साजि अवनि लहलहात।
आली वनमाली उपवन चतुराई देखि,
त्यागि गिरि कानन वसन्त नित लहरात॥

देव छनाक्षरी——इसके प्रत्येक चरण में तैंतीस अक्षर होते हैं। आठ-आठ फिर आठ-नव अक्षरों पर यति होती है। चरणान्त के तीन वर्णों को लघु रखने का नियम है। जैसे—

झिल्लो झनकारैं पिक चातक पुकारैं बन,
मोरनि गुहारैं उठे जुगुनू चमकि-चमकि।
घोर-घन-कारे भारे धुरवा धुरारे धाय,
धूमनि मचावैं नाचै दामिनि दमकि दमकि॥
झूकनि बयारि बहै लूकनि लगावै अंग,
हूकनि भभूकनि की उर मैं खमकि-खमकि।
कस करि राखौं प्रान प्यारे जसवंत बिन,
नान्हीं-नान्हीं बूंद झरैं मेघवा झमकि-झमकि॥

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य मुक्त छन्दों में भी आधुनिक कवि रचना करने लगे हैं जिनमें छन्द के चरण किसी भी दृष्टि में समान नहीं होते। आज के पहले भारतीय साहित्य में ऐसी सर्वतन्त्र स्वतन्त्र रचनाएँ नहीं होती थीं। पद्य पर छन्दों के एकाधिकार का विरोध सर्व प्रथम योरप में ही किया गया। किसी ने कहा—काव्य के लिए छन्द अथवा संगीत अनिवार्य नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



किसी ने कहा—यह आवश्यक नहीं है कि कवि छन्दों में ही पद्य रचना की प्राचीन रूढ़िका ही अनुसरण करें। किसी ने कहा—छन्दों से भाषा में कृत्रिमता आती है और भावनाओं को विकसित होने के लिए उन्मुक्त अपेक्षित क्षेत्र नहीं मिल पाता। किसी ने कहा—छन्द काव्य प्रवाह में अवरोध उपस्थित करते हैं। किसी ने कहा—छन्द काव्य के आभूषण मात्र है; उनसे और काव्य की आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं है। किसी ने कहा—छन्द भाषा की स्वाभाविकता को विनष्ट कर उसमें कृत्रिमता का आरोप करते हैं। वाल्ट ह्विटमैन ने तो छन्दों के विरोध में 'लीव्ज आफ ग्रास' नामक पुस्तक ही लिख डाली। इस पश्चिमी पवन के प्रभाव से भारत भी वंचित न रह सका। बङ्गाल ने इन विचारों का भी स्वागत किया। हिन्दी में भी 'प्रसाद' जी ने लोक के समक्ष ऐसे मुक्त छन्दों के आदर्श उपस्थित किये जिसका प्रायः सभी ने सत्कार भी किया। अधिक से अधिक किसी ने यदि कहा तो यही कि 'घी के लड्डू टेढ़े भी अच्छे ही होते हैं।' इसे कुछ लोग 'रबड़-केचुवा' छन्द भी कहने लगे हैं क्योंकि इसमें चरण-विस्तार और संकोच की मर्यादा और क्रम निश्चित नहीं रहता। जैसे—

व्यस्त तत्व-तत्व जब
अपनी क्रियाओं से
घट में स्पन्दन की सृष्टि कर
सृष्टि किया करते हैं नित्य प्रणव की
सुनते हो।
तो फिर तुम निष्क्रिय हो
अपनी मानवता को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



करते कलंकित क्यो ?
वचपन के सहचर !
गुरुकुल के सहपाठी !
मेरे मनोनीत जीवन-पथ के प्रधान साथी !
कठिन कंकाल के कोमल मधुर प्राण !
देखते हो—
कौन करता है इन आहों की परवाह ?
निर्बल निरीहों की कौन सुनता कराह ?
धर्म वह कैसा जो रक्त से कृष्णमुख ?
धर्म वह कैसा जो शान्ति से कोसों दूर ?
धर्म वह कैसा जो विधर्म का विद्वेषी ?
धर्म वह कैसा जो अकरुण अकल्याण ?
सिमिट-सिमिट मिट जाने का साहस ले
जल-लव सागर हों;
विस्फुटित वाड़व कूलों की उपेक्षा कर,
कूलाचलों का आज क्यों न कल्पान्त करें ?
त्यागो तुम तन्द्रा, यह आग्रह स्वीकार करो ।

छन्द चाहे मात्रिक हों या वार्णिक हों अथवा मुक्तक, लय ही उनकी विशेषता है। मात्रा और गणों के नियम भी इसीलिए बनाये गये हैं कि छन्द के किसी भी चरण में लय के प्रतिकूल वर्णों की व्यवस्था न हो। छन्दों के नाम कण्ठस्थ करने की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी उनके स्वरूप को हृदयस्थ करने की। इसके लिए अभ्यास और स्वाध्याय ही सर्वोत्तम साधन हैं।

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# कविता की चोरी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कविता की चोरी का अर्थ है दूसरों की रचना में प्रयुक्त शब्द और अर्थों को आत्मसात कर लेना।

आचार्यों का मत है कि जिस शब्द परम्परा का प्रयोग चाहे जो भी कर सकता हो, उसका अन्यत्र निवन्धन अपहरण नहीं कहा जा सकता।

जैसे—राघव बोले देख जानकी के आनन को।
'स्वर्गङ्गा का कमल मिला कैसे कानन कों ?'
'नील मधुप को देख वहीं उस कञ्ज कली ने—
स्वयं आगमन किया' कहा यह जनकलली ने

राका का पूर्णचन्द्र अभी उदित हुआ था। चन्द्रिका पंचवटी में हँसने लगी। बनवासी राम सीता के साथ प्रसन्न थे। शीतल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



प्रकाश में जानकी का मुखमण्डल उन्हें आज अलौकिक जान पड़ा। उन्होंने कहा—प्रिये, एक बात पूछूँ ? स्वर्ग का वासी कमल इस कानन में कैसे ? इस पर जानकी ने उत्तर दिया—नील मधुप जो यहाँ आया, इसीलिए कमल कली भी आप से आप चली आयी।

और जैसे—

राघव बोले—प्रिये, लोल लहरें तुझको पूर्णेन्दु समान—
जान ललक कर उठती हैं छूने को पगली सी अनजान ॥

बनवास के पश्चात् श्रीराम जानकी के साथ अपने प्रासाद की सर्वोच्च अट्टालिका पर बैठ कर देख रहे हैं कि राजभवन को चूमती हुई सरयू की चंचल लहरें आज समुद्र की तरह उमड़ रही हैं ? क्यों ? राम को जिज्ञासा हुई और स्वयं उसका निवारण करते हुए उन्होंने कहा—मेरी प्रिया के आनन को पूर्णेन्दु समझ कर भोली लहरें पूर्णिमा के समुद्र की सी हो गयी हैं।

ऊपर के दोनों पद्यों में 'राघव बोले' का प्रयोग हुआ है। लेकिन इस शब्द समुदाय का प्रयोग तो सभी प्रसङ्गानुसार कर सकते हैं। इस पर किसी एक का विशेषाधिकार नहीं हो सकता क्योंकि इसका संघटन जहाँ कहीं भी किया गया है, सामान्य बुद्धि से ही। हाँ कविविशेष की प्रतिभा से संघटित शब्दों का आत्मसात करना अवश्य पाप है, चोरी है।

फीका पड़ता चन्द्र, संकुचित हो जाते जलजात।
तुम्हें देखकर, सजनि, कहो तुम दिन हो अथवा रात।

हे सजनि, तुम्हें देख कर चन्द्रमा की कान्ति फीकी पड़ जाती है और कमल संकुचित हो जाते हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि तुम दिन हो अथवा रात हो। क्योंकि चन्द्रमा की कान्ति फीकी पड़ जाती है, इससे मैं सोचता हूँ कि तुम दिन हो। लेकिन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



साथ ही साथ कमल भी संकुचित हो जाते हैं। यह रात्रि का धर्म है। तुम सचमुच एक पहेली हो।

व्यंग्य अर्थ है कि तुम्हारे अद्‌भुत लावण्य प्रकाशमय मुख-मण्डल के सामने चन्द्रमा फीका मालूम पड़ता है और तुम्हारी अलस आँखों की बराबरी न कर सकने के कारण कमल संकुचित हो जाते हैं। और जैसे—

विन्दु इन्दु-अरविन्द तुम्हारे बदन-नयन से मात।
सुन्दरि, अद्‌भुत उदय तुम्हारा, दिन हो अथवा रात॥

हे सुन्दरी तुम्हारे मुखमण्डल और नयनों से मात होकर चन्द्रमा और कमल विन्दु हो गये। चन्द्रमा शून्याक्षर विन्दु के समान नगण्य हो गया और कमलों के विकसित दल संकुचित होकर विन्दु का रूप धारण करने लगे। अस्तु तुम्हारी अवस्था का यह उभाड़ दिन है अथवा रात! यदि दिन कहूं तो कमल क्यों संकुचित होते हैं और यदि रात कहूँ तो फिर चन्द्रमा क्यों निष्प्रभ होता है? यह रहस्य मेरी समझ में नहीं आता।

'दिन हो अथवा रात' का प्रयोग दोनों पद्यों में किया गया है। लेकिन यह शब्द संघटन सामान्य नहीं है। यह किसी की प्रतिभा की उपज है और एक वार जिसने इसे कह दिया उसीका सदा रहेगा। दूसरा जो कोई भी इसे कहेगा, उसे वही कहना पड़ेगा जो आदि रचयिता ने कहा है। ऊपर की दोनों कविताओं में भेद क्या है? दूसरी कविता में 'फीका' और 'संकुचित' के स्थान पर 'विन्दु' कहा गया है और 'वदन-नयन' तथा 'अद्भुत उदय' से गूढ़ अर्थ को प्रकाशित कर दिया गया है। 'दिन हो अथवा रात' तो ज्यों का त्यों ही है।

दूसरे की कविता का कोई भी अंश ग्रहण कर उसका अन्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



थाकरण भी हो सकता है। अन्यथाकरण का अर्थ है और का और ही बना देना।

जैसे—

भोले-भाले होते हैं काँटों पर हँसने वाले।
इसलिए हृदय रे, चुप-चुप, पड़जाँय भले ही छाले॥

भोले-भाले फूलों का काँटों पर मुसकाना प्रसिद्ध है। उनका नियम है कि वे प्रतिकूल वेदनाओं में भी हँसते हैं। इसलिए मेरे हृदय, वियोग के असह्यताप से छाले भले ही पड़ जायँ फिर भी 'सी' न करना। यह नियम और मर्यादा के विरुद्ध होगा। क्यों कि तूँ भी तो भोले-भालों की ही जात का है!

और जैसे—

भोले 'भाले' होते हैं, कोई विश्वास न करना।
पाषाण हृदय में उनके जिनको कहते हो 'झरना'।

इस ससार में जितने भी भोले होते हैं, वे निश्चय भाले होते हैं। कोई स्वयं अनुभव कर देख ले। इसलिए मेरी सम्मति है कि कोई भी उनपर विश्वास न करे। उदाहरणार्थ झरने को देखिये। केवल जल समूह का एक मनोहर प्रपात! देखने में सुन्दर, कलरव कारी, सुनने में भी अत्यन्त मनोहर। लेकिन उसके हृदय में पर्वतों के पाषाण खण्ड लुढ़कते चलते हैं जो दिखायी नहीं पड़ते। इसलिए उन्हें दूर से देख सकते हैं चाहे जितना, लेकिन ज्योहीं संपर्क स्थापित करना चाहेंगे, उन पाषाण खण्डों से आहत होना पड़ेगा।

पहले पद्य में प्रयुक्त 'भोले-भाले' का ग्रहण कर दूसरे पद्य में प्रयोग किया गया है अवश्य लेकिन इस दूसरे 'भोले-भाले' का रूप ही कुछ दूसरा हो गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



इसी अन्यथा करण के आधार पर लगभग सारी की सारी कविता को भी आत्मसात् किया जा सकता है।

जैसे—

चन्द्र ! तभीतक हो सकता तूही तू सचराचर में।
वालारुणमण्डल है जब तक छिपा हुआ अम्बर में॥
एक श्वेत घन की टुकड़ी सी महिमा होगी तेरी।
फिर तो, तनिक ठहर जा मानी! अधिक नहीं है देरी॥

चन्द्र ! इसमें सन्देह नहीं कि संप्रति समस्त संसार में तूही तू है। लेकिन याद रख, तेरा यह प्रभाव तभी तक रह सकेगा जब तक प्रभात का सूर्यमण्डल पूर्वीय आकाश के क्षितिज में छिपा हुआ है। उसका उदय होने पर तो तेरी सत्ता केवल एक सफेद बादल की टुकड़ी सी रह जायगी। अभीं तो तूँ अपने वैभव में फूला नहीं समाता लेकिन अरे अभिमानी, याद रख, सूर्योदय में अधिक देर नहीं है।

ऊपर के पद्य के स्थान पर—

चन्द्र ! तभी तक हो सकता तू ही तू सचराचर में।
वालामुखमण्डल है जब तक छिपा हुआ अम्बर में॥
एक श्वेत घन की टुकड़ी सी महिमा होगी तेरी।
फिर तो तनिक ठहर जा मानी ! अधिक नहीं है देरी॥

नायिका घूँघट में है। उसकी अभ्यर्थना में नायक कहता है-नीच चन्द्र ! तूँ अपने सामने किसी को कुछ समझता ही नहीं। इतना मद ! लेकिन याद रख, तू अद्वितीय तभी तक रह सकेगा जब तक मेरी प्रियतमा इस वाला का मुखमण्डल घूघट में छिपा है। जब घूँघट अनावृत होगा तेरी सारी महिमा धूल हो जायगी। तब तूँ श्वेत घन के एक अकिंचन टुकड़े से अधिक न रह जायगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



मानी ! मुझे अब अधिक न सता सकेगा। वालामुखमण्डल के प्रकाशित होने में अधिक देर नहीं है।

ऊपर के दोनों पद्यों में से एक में 'वालारुणमण्डल' हैं और दूसरे में 'वालामुखमण्डल' है। केवल 'अरुण' और 'मुख' के विपर्यास से कविताओं के सर्वाङ्गसमान होते हुए भी अर्थ और का और ही हो गया है।

दूसरे के अर्थों को आत्मसात् करने के कई प्रकार हो सकते हैं। वाक्यान्तर को रचना कर दूसरे का अर्थ ज्यों का त्यों विना तात्विक भेद भाव के ग्रहण किया जा सकता है। ऐसे अर्थ-ग्रहण को प्रतिविम्बकल्प कहते हैं। इधर-उधर थोड़ा घना संस्कार करके दूसरे के अर्थ को भिन्न सा बना दिया जा सकता है। इसे आलेख्यप्रख्य कहते हैं। दूसरे के अर्थ को विषयान्तर-सन्निवेश आदि से अपना बनाया जा सकता है। ऐसी दो रचनाएँ अत्यन्त सादृश्य होते हुए भी भिन्न सी प्रतीत होती हैं। इसे तत्तुल्य-देहितुल्य कहते हैं। जिस आत्मसात् करने की क्रिया में मूलदृष्टि से तो दोनों एक ही हों लेकिन दोनों के विवेक में अन्तर हो ऐसी प्रतिस्पर्धिनी रचना को तत्पुरप्रवेशप्रतिम कहते हैं। इस प्रकार के अपहरण में ऐसा भान होता है कि कोई दूसरे के नगर में अपने पराक्रम से प्रवेश कर रहा हो।

## प्रतिविम्बकल्प

प्रतिविम्बकल्प अपहरण में आत्मसात् की जाने वाली कविता में या तो पूर्वापर का विपर्यय कर दूसरी रचना करते हैं, अथवा उसका कोई खण्ड लेकर उसके आधार पर नया निर्माण करते हैं, अथवा संक्षिप्त अर्थ को विस्तृत कर देते हैं, अथवा भाषा में परिवर्तन कर देते हैं, अथवा छन्द में या हेतु में या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



प्रसंग में भेद कर देते हैं, अथवा भिन्न-भिन्न कई रचनाओं के अनुकूल अर्थ को एकत्र कर अपनी रचना प्रस्तुत करते हैं।

(अ) भृङ्ग वह काला कहाँ कुरूप
मनोहर सरसिज कहाँ अनूप
खोलकर कहे कोष अरविन्द
'लूट लो मुझको मधुर मिलिन्द'

काला-कलूटा, छः पैरो वाला, कर्कश, भन्न-भन्न करने वाला तुच्छ भौंरा कहाँ और स्वच्छ सलिल में कोमल मृणाल पर मनोहर दलों में मरन्द का भार सँभाले किसी कामिनी के कपोल-सा हँसता हुआ कमल कहाँ! दोनों में पृथ्वी और आकाश सा अन्तर! फिर भी वह स्वेच्छा से अपने कोष को उन्मुक्त कर उस भँवरे से कहता है कि लूट लो। प्रीति की रीति निराली।

(ब) मधुप से लुटवा कर निज कोष
कमल को कितना है सन्तोष
प्रेम का अद्भुत यह व्यापार
रूप का उस अरूप से प्यार।

इसका भी अर्थ वही है जो पद्य (अ) का है। जो कुछ भी अन्तर दिखायी पड़ता है वह केवल पूर्वापर के विपर्यय के ही कारण। दोनों में मधुकर और कमल का दृष्टान्त देते हुए प्रेम की विचित्रता का वर्णन किया गया है। पद्य (अ) में पहले भृङ्ग और सरसिज की कुरूपता और मनोहरता को दिखाते हुए परस्पर विरोधाभाष का कथन और बाद में दोनों के अत्यन्त अनुकूल व्यापार का वर्णन कर प्रेम की महिमा की स्थापना व्यंग्य रूप में की गयी है। पद्य (ब) में पहले मधुप और कमल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



के अत्यन्त अनुकूल व्यापार का वर्णन किया गया है और बाद में प्रेम की विचित्रता की सूचना देते हुए प्रणयी और प्रणयाधार के विरोधी धर्मों का कथन किया गया है।

(अ) भाई का आह्लाद बहुत है
मझली माँ का विपुल विषाद
मनःप्रसाद चाहिये केवल
फिर क्या कुटिया अरु क्या प्रासाद ?

निर्जन की निस्तब्ध रात्रि में पंचवटी की एकान्त शिला पर प्रहरी लक्ष्मण आप-आप से कहने और सुनने में व्यस्त हैं। अतीत की घटनाएँ आवश्यकतानुसार स्मृति-पथ पर आती और चली जाती हैं। मझली माँ के दुराग्रह से आज भाई राम को यहाँ इस कुटिया में निवास करना पड़ रहा है। लोग सोचते होंगे कि हमें यहाँ कष्ट होगा। लेकिन मैं सच कहता हूं कि हम जितने सुखी यहाँ हैं उतने कहीं भी नहीं थे। माँ कैकेयी अयोध्या के महलों में यद्यपि रहती हैं फिर भी वे हमसे कहीं अधिक दुःखी होंगी, इसमें सन्देह नहीं। महल सुखावह होते हैं, कुटिया में क्लेश होता है, यह सोचना भूल है। मन प्रसन्न रहे तो कुटिया ही स्वर्ग हो जाय, मन दुःखी रहे तो महल भी नरक से अधम हो जाय। दोनों पक्षों में यही एक अन्तर है।

(ब) पर्णकुटी क्या ? राजभवन क्या ?
कहो कौन ध्रुव उत्सव का ?
मन-प्रसाद ही मानदण्ड है—
मानव के भव-वैभव का।

कुछ लोग सोचते हैं कि सुख महलों में मिलता है और कुछ कहते हैं कि झोपड़ी में। अरे, उत्सव का कौन स्थान ध्रुव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



हैं ? कौन-सा ऐसा स्थान है जहाँ आनन्द की प्राप्ति निश्चित हो ? क्या महल ? अथवा पर्णकुटी ! यदि सच पूछो तो न महलों में आनन्द मिलता है और न झोपड़ी में। जहाँ मन की प्रसन्नता है, वहीं आनन्द भी है। किसका वैभव कितना लम्बा-चौड़ा है, इसे उसके मन की प्रसन्नता से ही नाप लो।

'मनःप्रसाद चाहिये केवल, फिर क्या कुटिया अरु क्या प्रासाद' यह पद्य (अ) का एक खण्ड है। इसी खण्ड को लेकर पद्य (ब) की रचना की गयी है। अर्थ में कोई विभेद नहीं।

(अ) तारे सारे तज चले नभ को क्रम से दीन।
धर्म-लक्षणों से यथा होता पापी हीन ॥

प्रभात आया ही चाहता है। रात सुख से बीती, प्रियतम के साथ। जो आकाश अभी तक अपने चन्द्र और नक्षत्रों के द्वारा संसार को शीतल करता रहा वही अब ताप का कारण होगा। सभी तारे क्रम से गगनमण्डल से प्रस्थान करने लगे, उसी तरह जैसे मन में पाप समाते ही एक-एक करके धृति, क्षमा, आदि धर्म के लक्षण पापी को छोड़ने लगते हैं।

(ब) तारे सारे रजत द्युति धारे मञ्जु शोभी निराले
धीरे-धीरे गगनतल से भागते जा रहे हैं।
पापाचारी कुगुणनिधि कोई महा हेय मानो
त्यागा जाता पतित जन हो धर्म के लक्षणों से ॥

चाँदी-सी कान्ति को धारण करनेवाले, विचित्र शोभा से युक्त सभी तारे अब नभस्थल से भागे जा रहे हैं। मानों दुर्गुणों का निधान, अत्यन्तनिंद्य, कलुषित आचरण करने वाला कोई सद्यः पापात्मा धृति, क्षमा आदि धर्म के दसो लक्षणों से क्रमसे विहीन हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



पद्य (अ) का संक्षिप्त अर्थ पद्य (ब) में अनावश्यक विस्तृत कर दिया गया है। दोनों में वस्तु एक ही है?

(अ) दृष्टः सप्रेम देव्या, किमिदमितिभयात्संभ्रमाच्चासुरीभिः,
शान्तान्तस्तत्वसारैः सकरुणमृषिभिर्विष्णुना सस्मितञ्च।
आदायास्त्रं सगर्वैरुपशमितवधूसंभ्रमैर्दैत्यवीरैः,
सानन्दं देवताभिर्मयपुरदहने धूर्जटिः पातु युष्मान्॥

त्रिपुरदाह के अवसर पर भगवती पार्वती से सप्रेम देखे गये, 'अरे, यह क्या हुआ' इस प्रकार के भय और उद्वेग से असुरों की स्त्रियों से देखे गये, शान्तात्मा ब्रह्मज्ञानी वसिष्ठ आदि ऋषियों से बड़ी करुणा से देखे गये, भगवान् कृष्ण से हँसते हुए देखे गये, हाथों में धनुष आदि शस्त्रास्त्रों को लेकर अपनी स्त्रियों के भय को दूर करते हुए दैत्य वीरों द्वारा बड़े गर्व के साथ देखे गये, इन्द्र आदि देवताओं से बड़े हर्ष के साथ देखे गये, शंकर जी आपकी रक्षा करें।

(ब) उमा प्रेम से, चकित चक्षु से डरी दैत्य दाराएँ,
ऋषियों का समूह नयनों में ले करुणा धाराएँ,
दिखा शस्त्र सन्नद्ध देवरिपु रमणी त्रास छुड़ाते,
मन्द-मन्द मुसक्याते प्रभु, सुर फूले नहीं समाते,
देख रहे थे त्रिपुर दाह के समय वही त्रिपुरारी,
ताल ठोंक, करमें त्रिशूल ले रक्षा करें तुम्हारी।

त्रिपुर दाह के अवसर पर भगवान् शंकर को उमा बड़े प्रेम से देख रही थीं (यह सोचकर कि मैं धन्य हूं जिसके वीर पति ने ऐसे दुर्दान्त मयासुर पर विजय पायी), दैत्यों की स्त्रियाँ चकित-चंचल नेत्रों से भयभीत होकर देख रही थीं (विस्मय यह था कि ऐसे पराक्रमी मयासुर की यह दुर्दशा! भय यह था कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



देवताओं के द्रोह से हमारे पतियों की भी यही दशा होगी ), बसिष्ठ आदि ऋषियों का समुदाय करुणावाष्पपर्याकुलित नेत्रों से देख रहा था ( उनके हृदय में करुणा की प्रधानता होती है, इसीलिए वह अकरुण दृश्य देखकर उनकी आँखों में करुणा के आँसू छलक पड़े ) देवद्रोही दानव अपने पैने शस्त्रों को दिखा-दिखा कर अपनी स्त्रियों के आतंक को दूर करने की चेष्टा करते हुए देख रहे थे ( हमारे हाथों में ऐसे शस्त्र हैं, हम तुम्हारी रक्षा करने के लिए हैं ही, फिर डर किस बात का ), भगवान नारायण तनिक मुसकाते हुए देख रहे थे ( प्रलयंकर शंकर ने तुच्छ त्रिपुर को जलाया, यह कौन-सी बड़ी बात है ? ) और देवगण अपार आनन्द में मग्न होकर देख रहे थे ( अजेय शत्रु के सर्वस्वनाश से उनकी सारी विपत्ति दूर हो गयी )। सर्व समर्थ वेही त्रिपुरारी आपकी रक्षा करें।

पद्य ( अ ) की भाषा 'संस्कृत' है और ( ब ) की हिन्दी। भाषान्तर में वही सब कुछ रख दिया गया है।

(अ) भैरवी का समय बीता
हाय, आज विहाग अपना
जिसे रसनिधि जानता था,
थी वहीं वड़वाग सोई,
अहह, वह था रूप,
या उस रूप का रूपक न कोई।
देख छूछे बादलों को
व्यर्थ चेतनते ! कलपना
भैरवी का समय बीता,
हाय, आज विहाग अपना।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



वे दिन लद गये जब हम दोनों राग में राग मिलाकर मिलन-भैरवी के मनोहर गान गाया करते थे। अब तो विरह के उपयुक्त विहाग ही गाना है, अकेले! मैंने तब जिसे रसनिधि समझा था, यह बड़वा भी तो उसी में थी जिसे मैंने उस समय न जाना और जो आज मुझे जला रही है। वह सुन्दर रूप, जिसे बरबस मैं प्यार करने लगा था, केवल रूपकमात्र निकला और ऐसा रूपक जिसकी उपमा नहीं। नहीं तो क्या फूल भी शूल-सा आचरण कर सकते हैं। अरी चेतने, बीती बातों की स्मृतियाँ केवल उन घटाओं के समान हैं जिनमें छटा ही छटा हो, रसविन्दु नहीं। इसलिए उनसे उदासीन हो जा।

(ब) बीती आनन्दमयी भैरवी, गालूँ विहाग।
चुप-चुप री चेतनते! नीरस के नाम न ले,
छूछे वे बादल थे, आये चुपचाप चले,
रूप नहीं रूपक था, रसनिधि की लहरों में—
लिपटी थीं लपटें री, गाऊँ फिर कौन राग?
बीती आनन्दमयी भैरवी गा लूँ विहाग।

पद्य (अ) और (ब) दोनों में वस्तु एक ही है, केवल छन्दों में भेद कर दिया गया है।

(अ) चन्द्र वही है, किरन नहीं क्यों? आज कहो क्या पीऊँ?
प्यास वही है, तृप्ति नहीं वह मिलती कैसे जीऊँ?
कल निद्रा की करवट में क्या मुख था मैंने फेरा,
जान सका फिर नहीं कि कैसे कब हो गया सवेरा।

किसी की प्रेमिका आज हँसती नहीं। ऐसा मालूम पड़ता है जैसे कि वह रूठी हो। ऐसा क्यों है, इसका पता नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



नायक कहता है--प्रिये तुम्हारा अपूर्व लावण्यमय मुखचन्द्र तो पहले ही जैसा है, लेकिन उसमें से मनोहर हास्य की किरणें क्यों नहीं निकलतीं, जिसे मैं प्रेम से पी लूँ ? तुमसे जो अबतक तृप्ति मिलती रही है, उसे देने में आज तुम कृपण हो गयी हो और मेरी अभिलाषाओं की पिपासा ज्यों की त्यों है। यह तो जीवन-मरण का प्रश्न है। लेकिन तुम्हारे कोप का कारण क्या है ? ऐसा हो सकता है कि गत रात तुम्हारी ओर मुख कर, तुम्हें अपने बाहुपाश में लेकर मैं सोया अवश्य था, लेकिन निद्रा की अचेतन अवस्था में शायद करवट लेकर मैंने दूसरी ओर मुख कर लिया हो और उसी तरह घोर निद्रा में सबेरा हो गया हो। क्यों कि प्रात:काल उठकर मैंने अपने को उसी अवस्था में पाया। तुम्हारे क्रोध का और तो कोई हेतु दिखायी नहीं पड़ता।

(ब) किसी सुन्दरी से सपने में करते देखा बातें।
मुझको क्या ? इससे आँखों में उमड़ी ये बरसातें।
बदन-चन्द्र की विमल चाँदनी इतनी दूर हुई यों
प्रिये ! बतादो कोमल थी तुम इतनी क्रूर हुई क्यों ?

(अ) और (ब) दोनों पद्यों में कार्य तो एक ही है लेकिन कारण भिन्न दिखाये गये हैं। दोनों में वस्तु यही है कि प्रेयसी रूठी है, हंसती नहीं और नायक अत्यन्त व्याकुल है। एक में रुठने का कारण है नायक का नींद में भूल से दूसरी ओर मुख फेर लेना और दूसरे में कारण यह है कि संभवत: पिछली रात नायिकाने सपना देखा हो कि उसका प्रिय किसी दूसरी स्त्री के साथ घुल-घुल कर प्रेम से बातें कर रहा है। पद्य (ब) में नायिका के मुख-चन्द्र में हास्य-किरणों का अभाव 'आँखों में उमड़ी हुई आँसू की बरसात' बताकर प्रकट किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



(अ) जल-केलि के पश्चात् कामिनियां केलि-सरोवर से तट की ओर जाने के लिए उन्मुख हुई। कमर के नीचे तक लटकते हुए काले, लम्बे, अराल और अत्यन्त सुगन्धित खुले केशों का झौर जिनमें से सुरभित जल की बूंदें टप-टप ! और नव विकसित कमल सी अलसाई आँखें। केलि-हंस गला उचका कर उन केशों से गिरती हुई बूँदों को आकाश में ही पी लेते थे। क्यों ?

(ब) तपस्वी सरिता में मज्जन करके खड़े-खड़े जप कर रहे हैं। उनकी जटिल जटाओं से ढुलक कर पानी के कँण अभी पृथ्वी पर पड़ने भी न पाये कि ग्रीष्म ऋतु के प्यासे हरिणों के बच्चे उन्हें बीच ही में पी गये। भीषण आतप से छिन्न प्रेयसी के सूखे मुख को निहार कर शकुन्त पक्षी अपनी पाँखों की दीन छाया कर रहा है।

(अ) में कामनियों के जलविहार का वर्णन करते हुए कहा गया है कि स्नान के बाद उनके केशों से जो पानी की बूँदें गिरती थीं उन्हें वहीं स्थित हंस चोंच उठा कर पी लेते थे क्यों कि वे पद्मिनियों के केशों से गिरे थे। पद्म से हंस का कैसा सम्बंध है ? (ब) में ग्रीष्म ऋतु की प्रचण्डता का वर्णन करते हुए यही बात कही गयी है लेकिन यहाँ पर बूंदें तपस्वियों की जटाओं से गिरती हैं और पीने वाले प्यासे मृगछौने हैं। केवल प्रसङ्ग को वदल कर वही वात (ब) में भी कही गयी है जो (अ) में।

(अ) वीत चुकी रजनी सजनी ऊषा प्राची में आई
कमलों के दल खुले और अलियों को मिली विदाई
सूर्योदय लो हुआ, देख लो सारा जगत सजग है
जय-जय 'रत्नप्रदीप' कौन सी दिशा नहीं जग-मग है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



(ब) दीखता क्यों रवि नहीं ?
गगन के तल में कहीं
आह, सायंकाल है
नभ अभीं कुछ लाल है
आती खगों की भीड़ है
जिधर उनका नीड़ है।

(स) कौन दिशा जिसमें पूरब के इस रविका न विकाश ?
विम्ब तिरोहित, अब भी लोहित हिन्दी का आकाश

पद्य (अ) में प्रभात का वर्णन किया गया है और पद्य (ब) में सायंकाल का। इनके रेखांकित पदों के वाक्यार्थ लेकर तीसरे पद्य में संपुटित कर दिया गया है। पद्य (अ) में कहा गया है कि कौन सी दिशा ऐसी है जो प्रभात के सूर्य से जग-मग नहीं है और पद्य (ब में कहा गया है कि सायंकाल के कारण सूर्य दिखायी नहीं पड़ता फिर भी आकाश अभी कुछ लाल है ही, अर्थात् अभी अंधेरा नहीं हुआ है। इन्ही अर्थों को लेकर पद्य (स) की रचना हुई है। 'प्रसाद-जयन्ती' में कवि कहता है-विश्व का ऐसा कोई कोना नहीं जिसको भारत के प्रसाद–सूर्य के अलौकिक आलोकपुञ्ज का प्रसाद न मिला हो। आज हिन्दी के गगन-मण्डल से वह सूर्य अस्त होगया लेकिन प्रभाव रूपमें उस प्रतिभा की अरूणिमा तबतक वर्तमान रहेगी जब तक अंधेरा नहीं छा जाता।

दूसरों की कविताओं का इस प्रकार अपहरण करना कवि-वर्ग के लिए त्याज्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



## आलेख्यप्रख्य

इधर-उधर थोड़ा बहुत संस्कार करके कई प्रकार से दूसरी कविता के अर्थ अपनाये जा सकते हैं।

(अ) चक्र-जलज हे, अग्रदूत बन मलय पवन है आया।
तुम प्रसन्न हो, नव प्रभात का शुभ सन्देश सुनाया॥

किसी महान् के आने के पूर्व उनका कोई अग्रदूत आता है। नव प्रभात के आगमन के पूर्व ही मलयानिल ने आकर इस बात की सूचना देदी। हे वियोगी चक्रवाक और हे संकुचित कमल अब तो तुम्हें प्रसन्न होना चाहिये।

(ब) मिलो-मिलो हे चक्रवाक तुम, खिलो-खिलो जलजात!
उषा सुन्दरी आती है यह कहता मलयज बात॥

उषा सुन्दरी यद्यपि अभीं दिखायी नहीं देती लेकिन यह मलय समीरण उसी पद्मिनी के शरीर की सुगंध तो है; उसी से समझ लो कि वह आ रही है। हे चक्रवाक, अब तुम अपनी चक्रवाकी से मिलकर प्रसन्न हो और हे कमल, अब तुम भी खिलो न!

पद्य (अ) में मलयानिल को प्रभात का अग्रदूत, पद्य (ब) में 'उषा के शरीर का सौरभ' कह कर चक्रवाक और कमल के उत्सव की सूचना दी गयी है। वस्तुतः दोनों कविताओं में कुछ भी अन्तर नहीं।

(अ) फूलि उठे कमल-से अमल हितू के नैन।
कहैं रघुनाथ भरे चैन-रस सियरे।
दौरि आये भौंर से करत गुनी गुन गान
सिद्ध से सुजान, सुखसागर सों नियरे॥
सुरभी सी खुलन सुकवि की सुमति लागी
चिरिया सी जागी चिंता जनक के जियरे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



धनुष पै ठाढ़े राम रवि से लसत आज
भोर के से नखत नारिंद भये पियरे॥

धनुष-यज्ञ मे शिव-धनुष के पास उसे तोड़ने को उद्यत श्रीराम बालरवि के समान सुशोभित हुए जिन्हें देख कर अन्य नरेश प्रातःकालीन तारों के समान पीले पड़ गये, हितैषियों के नेत्र शीतल आनन्द के मकरन्द से भरपूर प्रभात-कमलों के समान प्रफुल्लित हो गये। गुण-ग्राहकों का समुदाय उनके अलौकिक गुणों का गान करने के लिए भौरों की तरह दौड़ पड़ा। सुख-सागर के पास सज्जन सिद्धों के समान पहुंचे। इससे अधिक काव्यानुकूल कौन-सा दृश्य देखने को मिलेगा। इसलिए कविगण काव्य करने के लिए उसी प्रकार चंचल हो उठे जैसे सवेरा होते ही बंधन-मुक्त होने के लिए गायें। अज्ञात भविष्य के विषय की चिन्ताएँ जनक जी के हृदय में उसी प्रकार जागीं जैसे प्रभात में पक्षी। इस पद्य में पूर्णोपमा अलंकार है।

(ब) मित्र मण्डली के नैन आनँद से खिल उठे,
मिल गुणीगण गुणगान करने लगे।
'साधु' कहा साधुओं ने आज पा अपार सुख
आप-आप सुकवि के काव्य ढरने लगे।
कोमल कुमार रूप अपना कठोर प्रण
सोच-सोच जनक जी आहें भरने लगे।
रघुनाथ हाथ से उठाने लगे यज्ञ-धनु
साथ-साथ और भूप पीले पड़ने लगे।

पद्य (अ) मे पूर्णोपमा अलंकार है। उस अलंकार को हटाकर पद्य (ब) की रचना की गयी है। दोनों में मूल दृष्टि से कोई भेद नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



इस पद्यके क्रम को उलट कर भी एक दूसरी कविता बनायी जा सकती है। जैसे—

धनुष उठाने चले राम, भूप पीले पड़े,
ढ़ीले पड़े साहस जनक जी के आज हैं।
काव्य के सदृश उस दृश्य से अकवि कवि,
कवि से सुकवि जो सुकवि कविराज हैं॥
गाते न अघाते देख गुण का सगुण रूप—
रूप-रूप से जो गुणियों के सिरताज हैं।
जिनके हृदय हैं सुख उनके समीप धन्य,
फूला न समाता जो कि सुहृद समाज है॥

लेखन चातुर्य से पद्य के क्रम में उलट कर प्रायः वे ही अर्थ रख दिये गये हैं जो पद्य ( अ-ब ) में हैं।

(अ) दूती कह सन्देश गुप्त जब लगी लौटकर जाने।
उलटे-सीधे लगी आतुरा निजको स्वयं सजाने॥

दूती से सन्देश मिला कि प्रियतम आ रहे हैं। नायिका आतुरता से शृङ्गार करने लगी। हृदय तो चला गया प्रियके पास और मनोयोग के अभाव के कारण शृङ्गार उलटा-सीधा होगया।

(ब) प्यारी की प्यारी भूलें थी प्रिय को प्रिय उपहार।
देख गले में पड़ी करधनी और कमर में हार॥

प्रिय ने देखा कि आज उसकी प्रेयसी आभूषण पहनाने में भूल कर गयी है। उसने गले में हार की जगह करधनी और कमर में करधनी की जगह हार पहन रखा है। ये भूले भी प्रिय को प्यारी लगीं और उसने उन्हें प्रणय का उपहार ही समझा।

पद्य (अ) में एक बात सामान्य रूप से कह दी गयी है और पद्य (ब) में उसी को विशेष रूप से कह दिया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



(अ) मनभावक जावक सखिन, सौतिन पावक ज्वाल।
शीश नवावक लालको, तुव पद जावक लाल॥

अयि सुन्दरी, तेरे पावों में लाल-लाल जावक (महावर) लगा है, वह सखियों को प्रसन्न करने वाला, सौतों को जलाने के लिए आग की तरह और प्रियतम को लट्टू बनाने वाला है।

(ब) जावक विरचित तव चरण सखियन के सखि सुखकरन।
मनहर हूँ के मनहरन सौतिन के मारन दहन।

री सखि, जावक से सुशोभित तेरे चरण-युगल सखियों के सुखदायी, मनमोहन को भी मोहित करने वाले और सौतों को भस्म करने के लिए आग के समान हैं।

दोनों पद्यों में अन्तर केवल इतना ही है कि पद्य (अ) में जावक प्रधान और पांव गौण तथा पद्य (ब) में पांव की प्रधानता और-जावक की गौणता है। इस तरह गौण को प्रधान मान कर उसी अर्थ की दूसरी रचना की गयी है।

(अ) उदर सरोवर के सरिस त्रिवली तरल तरंग।
नाभि-भ्रमी में धाइ धंसि तैरत निरत अनंग॥

अपूर्व लावण्यमयी युवती के उदर को एक सरोवर समझो जिसमें त्रिवलियों की तरंगे हैं। वहीं पर नाभि की भँवरी है उसमें कामदेव पड़ा हुआ निरन्तर तैरता है। कैसे निकले ?

(ब) मो मन मज्जन को गयो उदर रूप सरधाय।
पर्‍यो सुत्रिवली झवर ते नाभि भँवर में हाय॥

यहाँ "मो मन मज्जन को" औ 'हाय' की उक्ति चातुरी से ही पद्य (अ) के संपूर्ण अर्थ को अपना लिया गया है।

(अ) घूघट पट के ओट में रहहु वदन करि बन्द।
भीड़ चकोरन की निरखि घबरइहैं मुखचन्द॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



कंगले चकोरों की यहाँ भीड़ लगी है। इसलिए हे चन्द्रमुखी, अपने मुखड़े को घूँघट की आड़ में ही बन्द रखना। नहीं तो चकोरों की भीड़ देख कर तुम्हारा मुख-चन्द्र घबड़ा जायगा।

(ब) जनि झाँकहुँ प्यारी सखी कोऊ करै करोर।
नतु इत-उतते वदन-विधु लैहैं घेरि चकोर॥

ऐ सखी, कोई करोड़ करे लेकिन घूघट से झाँकना नहीं। अन्यथा रसिक चकोर तुम्हारे मुख-चन्द्र को घेर लेंगे।

पद्य (अ) की व्यंजना विकृत है। ओट में बन्द नहीं किया जाता; छिपाया जाता है। निरीह चकोरों की भीड़ मात्र देख कर चन्द्र न घबड़ायेगा; हाँ घबड़ायेगा जब घिर जायगा। अभिलषित अर्थ के अनुरूप पद्य (अ) की विकृत व्यञ्जना को प्रकृत रूप देकर पद्य (ब) की सृष्टि की गयी है।

आचार्यों ने इस प्रकार के अर्थापहरण को सर्वथा अग्राह्य नहीं कहा है क्योंकि उक्तिवैचित्र्य लाने के लिए इसमें थोड़ी-घनी अपनी प्रतिभा तो लगानी ही पड़ती है।

## तत्तुल्यदेहितुल्य

विषयान्तर आदि में सन्निवेश कर तत्तुल्य होते हुए भी तद्भिन्न रचना करने में तनिक और प्रतिभा की आवश्यकता होती है। ऐसे अपहरण को अपहरण नहीं कहा जा सकता। ऐसी दो रचनाएँ एक पेड़ की दो शाखाओं को तरह होती हैं, कोई छोटी, कोई बड़ी, कोई मोटी, कोई पतली।

(अ) जुगुनू उतै हैं, इतै जोति है जवाहर की।
झिल्ली झंकार उतै इतै घुघुरू लरै।
कहैं कवि 'तोष' उतै चाप, इतै वंक भौंह,
उतै बक पंक्ति, इतै मोती माल ही धरैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



धुनि सुनि उतै शिखि नांच, सखि नाचैं इतै,
'पी' करै पपीहा उतै, इतै प्यारी 'सी' करै।
होड़ सी परी है मानो घन-घनश्याम जू सों
दामिनी को-कामिनी को दोऊ अंक में धरैं॥

पावस में कामिनीसे युक्त घनश्याम और दामिनी से युक्त श्यामघन में होड़ सी लगी है। उधर जुगुनू इधर जवाहिरात, उधर झिल्ली की झन्न-झन्न इधर घुघुरू की मधुर रुन-झुन, उधर इन्द्र-धनुष इधर टेढ़ी भौहें. उधर उड़ती हुई वकुलों की पांत, इधर मोतियों की माला! घन की ध्वनि सुन कर मोर नाचते हैं—घन-श्याम की सुन कर सखियाँ नाचती हैं। उधर पपीहे 'पी-पी' करते हैं—इधर प्रेयसी 'सी-सी' करती है।

(व) उत श्याम घटा, इत हैं अलकैं,
वक-पांति उतै, इत मोती लरी।
उत दामिनि, दन्त चमंक इतै
उत चाप इतै भ्रुव वंक धरी॥
उत चातक तो पिउ-पीउ रटैं,
विसरै न इतै 'पिउ' एक घरी।
उत बूंद अखण्ड, इतै आंसुवा,
वरसा-विरहीन सों होड़ परी॥

वर्षा और विरहियों में आज होड़ लगी है। उधर काली-काली घटाएँ छाई हैं। इधर वियोग के कारण अस्त व्यस्त-असंयत चूर्ण-कुन्तल हैं। उधर वकुलों की पांत व्यर्थ उड़ती है-इधर मोतियों की माला गले का भार बनी है। उधर रह-रह कर दामिनी की चमक इधर उच्छ्वास के प्रभाव में कभी-कभी दाँत खुलकर अपनी चमक विखेर देते हैं। उधर इंद्रधनुष है—इधर टेढ़ी भौहें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



हैं। उधर पपीहे 'पी कहा—पी कहाँ' रटते हैं—इधर भी प्रिय के उच्चारण में विराम नहीं है। उधर बूँदों का धारासंपात है तो इधर भी आँसुओं की झड़ी लगी है।

पद्य (अ) में पावस के सर्वविदित धर्मों का आरोप संयोगी नायक में किया गया है। पद्य (ब) में उन्हीं धर्मों का वियोगियों में आरोप कर विषय बदल दिया गया है। यथावकाश उसी आधार पर कुछ विशेष बातें भी कह दी गयी हैं।

(अ) केहरि, छला, सेवार सी, कै मृनाल के तार।
बारहुं ते वारीक कटि, आय न कविन विचार॥

सुन्दरी की कटि सिंह की कमर से, मुदरी से, सेवार से, मृणाल के तार से और बाल से भी बारीक है। अधिक क्या कहा जाय, कुशल, विचारशील कवियों के विचार में भी नहीं आ सकती। वे विचारे कैसे वर्णन करें ?

(ब) कोऊ कहै बार सी सेवार की कहत कोऊ
कोऊ कञ्जतार सी बतावत निशंक है।
मेरे जान सिरिफ लुनाई की लपेट लागी
ताही की लहत औ लचत होत वंक है॥
'तोषनिधि' जो पैं वेअधार को वहम बाढ़ै
तोपै परतच्छ को प्रमान कौन टंक है।
जैसे भूमि-अम्बर के मध्य में न खंभ कोऊ,
तैसे लोल-लोचनी के अंक में न लंक है।

इस पद्य के रचयिता की कल्पना ने पद्य (अ) के अर्थ पर आरूढ़ होकर उसी के सहारे उछल-कूद मचायी है, उत्प्रेक्षा के बल पर।

(अ) अरुण-कुसुम, किरणें, अरुण, विद्रुम, जावक, लाल।
ईंगुर, विम्ब, मजीठ से प्यारी के पद लाल॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



मेरी प्रेयसी के चरण कमल, गुलाब, बंधूक आदि अरुण-पुष्पों, किरणों, अरुण, विद्रुम, ईंगुर, विम्बा, और मंजिष्ठ से भी अधिक लाल हैं।

(ब) विम्ब में प्रवाल में न ईंगुर गुलाल में,
न चंपक रसाल में न नेसुक निहारे में।
दाड़िम प्रसून मे न सून धरातून मे,
न इन्द्र की बधून में न गुञ्जा अधिकारे में॥
कुसुम सुरङ्ग मे न किंशुक पतंग में,
न जावक मजीठ कञ्ज-पुञ्ज वारि डारे में।
राधा जू तिहारे पग अरुण समान ताको,
हेरि हारे कविता न आवत हमारे में॥

पद्य (अ) में विधिरूप से सुन्दरी की पदलालिमा की उपमा जिन पदार्थों से दी गयी है पद्य (ब) में निषेध रूप से उनका तिरस्कार किया गया है। राधा के आलम्बन ने विषय में भी भेद कर दिया है।

(अ) वर विद्रुम में कहाँ लाली इती
कहाँ कोमलता जपा ऐसी गहै?
कहां लाल में लाल! प्रकाश इतो
समता कहाँ वापुरो विम्ब लहै?
वहाँ ऊख महूख मे ऐसी मिठास
पियूख हूँ ना हरिऔध लहै।
जिती चारुता, कोमलता, सुकुमारता,
माधुरता अधरा में अहै॥

(ब) मिस्री में न मधु में, न माखन न दाखन में
हेरि हेरि लाखन में वृथा गाइयतु है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



बैनन में, सैनन में, नैनन में चैनन में,
रतिरंग ऐन में न रंच भाइयतु है॥
रसिक विहारी हास मन्द में न चन्द में,
न कन्द में न फन्द में न छवि छाइयतु है।
ऊख में महूख में पियूख में न ऐसी—
मधुराई जैसी प्यारी के अधर पाइयतु है॥

पद्य (अ) में सदृश पदार्थों का कहीं काकु से और कहीं निषेध से तिरस्कार करते हुए सखी के मुख से नायिका के अधरों की लाली की अनुपमेयता कही गयी है। वे ही बातें पद्य (ब) में सर्वांग निषेध से कविने स्वयं कहा है। इस प्रकार दोनों में वर्ण्य, और वर्णन एक हैं। कथन-भेद से प्रसंग दो हो गये हैं। कुछ विशेष बातें भी कह दी गयी हैं।

(अ) शरद जुन्हाई देखि कै भाजन में तत्काल।
पान करत है जानि सखि, दूध नदान मराल॥

अरी सखि, इस शारदी ज्योत्स्ना ने अपनी शुभ्रता से गृह-हंस को भ्रम में डाल दिया है। वह नादान छूछे पात्र को दूध से भरा हुआ समझ कर बड़े चाव से व्यर्थ पी रहा है।

(ब) शीतकर आय हरषाय पुनि जाहो समैं;
अम्बर की शोभा करि उज्वल दिखायी है।
ताही समै चाटत न आँटत है मारजार,
जानि जनु खप्पर में दूध अधिकाई है॥
खैंचत अकाश कन्त हन्त! जानि वसन को,
हँसन को प्यारी मुँह आँचर छिपाई है।
छाई छिति चाँदनो सुचारु चारो ओर याकि
ठगन को जग जाल काहू ने बिछाई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



चन्द्रोदय के पश्चात् गगन मण्डल जब समुज्ज्वल होगया किसी खप्पर में भरी चाँदनी को न समझ कर यह विड़ाल दूध से भरा हुआ समझता है और इसलिए खप्पर को बराबर चाट रहा है। और नायिका की शुभ्र साड़ी और धवल चाँदनी में कुछ भी अन्तर न होने के कारण भ्रमवश नायक साड़ी के स्थान पर शून्य को ही खींच रहा है। अरे, संसार में यह चाँदनी बिछी है या जाल, जिसमें जिसे देखो वहीं फँस जाता है।

पद्य (अ) के अर्थों का पद्य (ब) में अर्थान्तरण द्वारा विशेषता-पूर्वक व्यवहार किया गया है।

(क) गरब करत कत चाँदनी हीरक-छीर समान।
फैली इती समाजगत कीरति शिवा खुमान॥

(ख) राम रावरे वदन की सरवरि करत मयंक।
ते कविजन झूठे जगत लखि मलीन सकलंक॥

पद्य (क) में चाँदनी को शिवाजी की कीर्ति की अपेक्षा अत्यन्त तुच्छ कहा गया है और पद्य (ख) में कहा गया है कि सकलंक चन्द्रमा श्री राम के सर्वांग सुन्दर मुख की बराबरी कर ही नहीं सकता। इन दो भिन्न अर्थों को एकत्र कर तीसरी रचना की गयी है—

छीर सरिस बस चन्द्रिका, काहें चढ़ी अकाश।
या मुख की सरवरि करत विधु हूं भयो हताश॥

अरी चन्द्रिके! केवल दूध के समान होने से ही तू आकाश चढ़ गई है। तेरे अभिमान का ठिकाना नहीं। तूं मेरी नायिका की बराबरी करना चाहती है। अरे, तेरा बाप जो चन्द्रमा है वह भी नायिका के मुख की बराबरी करने में हार कर हताश हो चुका है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



(अ) दुकूल व्योम से निखर शून्य मे
विखर-विखर विधु-किरन-सुधा ।
सींच रही शतधा प्रसन्न हो
पुलक-पुलक हँसती वसुधा ।।

चन्द्र-किरणों की सुधा का द्रव गगन से ढुलक पड़ा । वह आकाश के अवकाश में छन कर और भी निर्मल होकर पृथ्वी पर अत्र-तत्र सर्वत्र बिखर गया । उससे स्नात होकर वसुधा पुलकित है ।

(ब) मुख-शशि-घट से ढुलक–ढुलक
अधराधर पर विछ्ल-विछ्ल
युग कपोल पर उछ्ल-उछ्ल
बिखरी चारो ओर चाँदनी
देखो छलनापर के छल
पल्लव कुल में कुसुम धवल
यही सरोवर में शतदल
पीते चकोर हैं पुलक-पुलक
मुख-शशि-घट से ढुलक-ढुलक

नायिका का मुख शशि है और वही मानो सुधा-कलश है । उसमें से हास्य का शुभ्रसमवाय अन्तःकरण की प्रेरणा से अनायास ढुलक पड़ा । वह चिकने अधरों से विछ्ल कर कपोलों पर पहुँचा और वहाँ से उछ्ल कर सारे संसार में फैल गया । वहाँ तक तो वह हास्य सत्य रहा लेकिन आगे बढ़कर छल हो गया । संसार में सर्वत्र व्याप्त चन्द्रिका वही तो है ! विटपों के पल्लवों में जो सुमन हैं, जलाशयों में जो कमल-कुमुदादि हैं वे भी तो उसी के रूपान्तर हैं । चकोर भी तो उसी को पुलकित होकर पीते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



पद्य (अ) के जो कन्दभूत अर्थ हैं वे ही पद्य (ब) में अंकुरित होकर नाना-दिशाओं में विस्तृत हो गये हैं। और इनके मूल में जो अन्तर दिखायी पड़ता है वह दूध-दही का सा है।

## तत्पुरप्रवेशप्रतिम

दूसरे के पुर में प्रवेश करना जैसे पराक्रम की अपेक्षा करता है उसी प्रकार दूसरे के मूल अर्थ को लेकर प्रतिस्पर्धिनी रचना प्रतिभा के भरोसे ही की जा सकती है। इसे अपहरण नहीं कह सकते। ऐसे अपहरण का प्रधान कारण दोनों कवियों के मति-दर्पण में पदार्थविशेष का समभाव से प्रतिफलित होना ही हो सकता है। बड़े से बड़े कवियों में भी यह भावसाम्य देखा गया है। जैसे—

(अ) देश में, दिशान में, लतान द्रुम वेलिन में,<br>
कुञ्जन में, कञ्जन में रङ्ग दरसानो है।<br>
पल्लव में, पौन में, पराग हू में, किसलै में,<br>
कुसुम कलीन अलि गुञ्ज सरसानो है॥<br>
हारन में, क्यारिन में, फूल-कचनारन में,<br>
भारन, पहारन में मोद सरसानो है।<br>
बाग में, वगर में बनाय वन वीथिन में,<br>
वैहर में वन में वसन्त बरसानो है॥

(ब) कूलन में, केलि में, कछारन में, कुञ्जन में<br>
क्यारिन में कलित कलीन किलकन्त हैं।<br>
कहैं 'पद्माकर' पराग हूँ में, पौन हूँ में,<br>
पातिन में पीकन पलासन पगन्त है॥<br>
द्वार में दिसान में दुनी में देस-देसन में,<br>
देखो दीप-दीपन में दीपति दिगन्त है।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



विपिन में, व्रज में, नवेलिन में, वेलिन में,
वनन में, वागन में वगर्‌यो वसन्त है॥

अथवा

(अ) तालन पै ताल पै तमालन पै आलन पै,
लाल माल बाल पै रसाल सरसो परै।
कहैं कवि 'रामचन्द्र' कुन्द कन्द वन्दन पै,
चन्दन पै चन्द पै मलिन्द दरसो परै॥
केकी केल केसर करञ्ज केतकी पै कञ्ज,
कारकूत कोंकिल कदम्ब परसो परै।
रङ्ग-रङ्ग रागन पै सङ्ग ही परागन पै,
वृन्दावन वागन वसन्त बरसो परै॥

(ब) अवनि ते अम्बर ते द्रुमनि दिगम्बर ते,
अपर अडम्बर ते सखि सरसो परै।
कोकिला की कूकन ते हियन की हूकन ते,
अतन भभूकन ते तन तरसो परै॥
कहत किशोर कञ्ज पुञ्जन ते कञ्जन ते,
मञ्जु अलि गुञ्जन ते देखो दरसो परै।
बसन ते वासन ते सुमन सुवासन ते,
वैहर ते वन ते बसन्त वरसो परै॥

इनमें एक मूल श्रोत से निकल कर दो समान धाराएँ समानान्तर अपने-अपने वैभव का अलग-अलग अस्तित्व लिए हुए एक ही दिशा की ओर बह रही हैं।

(अ) बौरे रसालन की चढ़ि डारन,
कूकति कोयल मौन गहै ना।
ठाकुर कुञ्जन पुञ्जन गुञ्जत,
भौरन को वै चुपैबो चहै ना॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सीतल मन्द सुगन्धित वीर,
समीर लगे तन धीर रहै ना।
व्याकुल कीनो बसन्त बनाय कै,
जाय के कन्त से कोई कहै ना॥

(ब) फूलन दै अवै टेसू कदम्बन,
अम्बन बौरन छावन दै री।
री मधुमत्त मधूकन पुञ्जन,
कुञ्जन सोर मचावन दै री॥
क्यों सहिहैं सुकुमार किशोर,
अरी कल कोकिल गावन दै री।
आवत ही बनिहैं घर कन्तहिं,
वीर वसन्तहिं आवन दै री॥

पद्य (अ) में वसन्त में वियोगिनी की आतुरता बौरे रसाल, कोयल की कूक, भ्रमरों के गुञ्जन, सगुण समीरण आदि से बढ़ाई गयी है। पद्य (ब) में उन-उन पदार्थों का समर्थन कर और उन्हें भावी मिलन का कारण बताते हुए वियोगिनी की आतुरता घटायी गयी है। मूल एक है, विवेक दो।

(अ) कह सके यह कौन कि वीरता,
मदन की अविवेक विहीन है ?
अदय हो दयिताकुल को अहो !
कुसुम कोमल जो, छिप मारता॥

यह कौन कह सकता है कि कामदेव की वीरता में उचित और अनुचित का तनिक भी विवेक है। वह दयनीया, फूलों सी कोमल वियोगिनियों पर भी निर्दय होकर प्रहार करता है फिर भी छिपे-छिपे ; साक्षात् नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



(ब) कह सके यह कौन कि वीरता
मदन की सुविवेकविहीन है।
सदय हो दयिताकुल को अहा !
कुसुम के सर से यदि मारता॥

यह कोई नहीं कह सकता कि कामदेव की वीरता में उचित और अनुचित का विचार नहीं है। यदि ऐसा न होता तो वह फूलों से कोमल कामिनियों को दयाकर फूलों के बाणों से ही क्यों मारता ?

पद्य (अ) और पद्य (ब) में परस्पर समानता होते हुए भी कितना भेद है ! एक में मदन को अकरुण और अविचारी कहकर उसकी वीरता पर आक्षेप किया गया है और दूसरे में उसे सदय और विचारशील सिद्ध कर आक्षेप का परिमार्जन किया गया है। दोनों कवियों की विचार धाराएँ परस्पर मिली दीखती है लेकिन मानों आपस में हुड्डयुद्ध करने के लिए।

(अ) वे धरें अंग अनंग के भूषण
येहूँ भुजंग रहें हिय धारे।
वे धरें चन्द्र सवाँरि के भाल में,
येऊ नखच्छत चन्द्र सँवारे॥
शंभु की औ कुच की समता
कवि-कोविद भेद इतोई विचारे।
शंभु सकोप ह्वै जार्‌यो मनोज
उरोज मनोज जगावन हारे॥

(ब) कञ्ज के सम्पुट हैं पै खरे
हिय में गड़िजात ज्यों कुंत की कोर हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



मेरु हैं पै पिय हाथ मैं आवत
चक्रवती पै बड़ेई कठोर हैं॥
भावती, तेरे उरोजनि में गुण
दास लखे सब और ही और हैं।
शंभु हैं पै उपजावैं मनोज.
सुवृत्त हैं पै परचित्त के चोर हैं॥

दोनों पद्यों का मूलाधार है विषमता विमिश्रित शंभु और उरोजों की समता। पद्य (अ) में शंभु और उरोजों में सब कुछ समानता दिखाते हुए अन्त में एक और प्रधान विषमता दिखाकर (कि शिव कामदेव के जलाने वाले हैं लेकिन उरोज उसमें चेतनता का सञ्चार करते हैं) मूलविन्दु को प्रधानता दी गयी है। पद्य (ब) में समकक्षा के और भी विशेषणों का अभिधान करके मूल को सर्व प्रधान नहीं बल्कि सबको प्रधान रखा गया है।

(अ) आई हौं देखि सराहे न जात हैं
या विधि घूँघट में फरके हैं।
मैं तो हौं जानी मिले दोउ पीछे है,
कान लख्यो कि उन्हें हरके हैं॥
रंगनतें रुचितें रघुनाथ
विचार कर्यो करता करके हैं।
अञ्जनवारे सही दृग प्यारी के
खञ्जन वारे विना परके हैं॥

(व) अलि लोल कपोलन डोलत हैं
ढँकना पट घूँघट में सटके।
चट यों पट भेद दिखावत हैं
जस भाव चले गुटिका नटके॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



पुनि सैननि चित्त चुरावत श्याम को
बाम को ये दुटिका वटके।
चख चञ्चल यों चमकैं तियके
दृग अंचल में न रहें हटके॥

दोनों पद्यों में प्राण एक हैं, शरीर दो। पद्य (ब) में लौकिक वस्तु में 'श्याम' का सन्निवेश कर प्रतिभा के सहारे उत्कर्ष की स्थापना की गयी है।

(अ) लाज घट जैहैं गृहकाज घट जैहैं
सुखसाज घट जैहैं रूप राज घट जायगो।
कानि घट जैहै मृदुबानि घट जैहै
सकुचानि घट जैहै उर ज्ञान घट जायगो॥
रसिक बिहारी ढीठ छैल सब ही को छलै
ताकी छबि देख पतिधर्म घट जायगो।
तन घट जैहै अरु मन घट जैहै अरी
पनघट जैहै ताको पन घट जायगो॥

(ब) आयके निकट वह पीतपट वारो भट
अटपटे वैन वरजोरी बतरात है।
देत ना भरन घट पटको पकर रहै
नट लौं नचावै नैन नेक ना डरात है॥
मोह तें अधिक उर औटत है लाजन सों
लङ्गर निकट हट कैसे अधिकात है।
घर-घर घैरो सुने मन हटि जात है री
पनघट जात ताको पनघट जात है॥

पद्य (अ) में कार्यों का परंपरित सरल उल्लेख है और पद्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



(ब) में मूल कार्य के कारणों का परंपरित निरूपण है। वस्तु दोनों में एक ही है।

(अ) गुरुकुल को भी पाठ पढ़ाते
नयन दीखते हैं।
खञ्ज-कञ्ज-मृग-मीन-मधुप
निज धर्म सीखते हैं॥

ये नयन कितने बड़े हैं यह कौन कहे? क्योंकि देखा जाता है कि अपनी-अपनी कला के सर्वश्रेष्ठ कलाकार भी इनसे अपने पाठ पढ़ते हैं। खञ्ज को मनोहर चपलता आदि, कञ्ज को अलसविकाश आदि, मृग को चतुर वीक्षण आदि, मीन को रसधार में तीर-सा तिरना आदि और भौरों को पँखुड़ियों में डोलना आदि ये ही तो सिखाते हैं।

(ब) नित्य सिखाते थे मराल
मनहर गति से चलना तुमको।
बड़े प्रेम से रही बताती
तुम भी कल कूजन उनको॥

सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् श्रीराम पंचवटी की अतीत-स्मृति में सीता से कहते हैं—सीते! वहाँ मराल तुम्हें अपनी मधुर गमन की विद्या सिखाते थे और बदले में तुम भी उन्हें मधुर बोलना सिखाती थी।

पद्य (अ) में नयनों को सर्वाचार्य कहकर एकाङ्गीण अध्यापन की प्रतिष्ठा की गयी है। पद्य (ब) में पूर्वविरोधी कथन कर शिष्य-शिक्षक की परस्पर कृतज्ञता से उक्ति में चमत्कार का सुन्दर भार दिया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



(अ) अपलक आँखों से उसने जो
देखा मेरी ओर।
फिर तो मधुर कल्पनाओं का
मेरी ओर न छोर।
मैंने सोचा मुझे मिल रहे
गुंथे कमल के हार।
फिर सोचा, ये बरस रहे हैं
अमृत-घन रसधार॥

(ब) तट पर पलकों के पलभर रुक
वे सुकुमार उदार।
नयन गूँथने लगे प्रेम से
मुक्ताओं के हार॥
मुझे जिलाने को स्वर्गङ्गा
आई नभ से आज।
मैंने सोचा या कि हँस रहा
मुझ पर तारकराज॥

'एक दिन प्रेयसी प्रेम भरी आँखों से एकटक मेरी ओर देखने लगी; तब क्या हुआ ?' यही दोनों पद्यों का मूल विषय है। दोनों के उपमेय तो एक ही हैं लेकिन उपमानों में भेद कर दिया गया है। एक ने सोचा कि बड़ी-बड़ी आँखें स्थिर-सी होकर मेरे लिए कमलों की माला का सृजन कर रही हैं और दूसरे ने सोचा कि माला कमलों की नहीं बल्कि सीपी के मोतियों की है। एक ने सोचा कि आँखों के गगन में अमृत के मेघ हैं; वे मुझे भिंगो देनेके लिए बरस रहे हैं और दूसरे ने सोचा कि उस गगन से वही स्वर्गङ्गा आकर मुझे जीवन-दान दे रही है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



जिसने कभी महाराज सगर के सहस्रों पुत्रों के भस्मावशेष को जीवित किया था।

आज-कल कुछ कवियों को अपनी रचनाओं के प्रकाशनमें अधिक सुविधाएँ रहती हैं। जिनका घनिष्ठ वर्ग भिन्न-भिन्न पत्र-पत्रिकाओं के संपादन विभाग का अधिकारी हो अथवा स्वयं संपादन मण्डल में हों ऐसे कवियों की अनुत्तम अथवा किसी प्रकार की भी रचनाओं को जनता के सम्मुख जाने के सुयोग अधिक प्राप्त होते हैं। जो अपनी प्रसिद्धि के लिए उत्सुक रहते हैं, उनका एक दल होता है। कवि-गोष्ठी, परिषद और सम्मेलनों में भाग लेने से यथा-संभव वे नहीं चूकते। तनिक सुन्दर कण्ठ हो, कविता कहने का ढंग भी आता हो तो कविता का जम जाना कोई कठिन नहीं। क्योंकि संसार में साधारणों की संख्या अधिक है और असाधारणों की कम। इसलिए ऐसे सार्वजनिक आयोजनों में स्वभावतः कविता के वास्तविक रसज्ञ और 'मर्मज्ञों की संख्या कम होगी तथा साधारण कोटि के श्रोताओं का बहुमत होगा जो सिद्ध-रस की अपेक्षा सिद्ध कण्ठ तथा सुबोध का अधिक आदर करेगा। इसीलिए प्रायः देखा जाता है कि सम्मेलन वाले कविगण ऐसी कविताएँ जो सर्व साधारण के अनुकूल हों, जो 'जमती' हों, चुन रखते हैं और हर-एक सम्मेलन में उन्हीं का अधिकतर पाठ करते हैं। और फिर परस्पर सद्भावना रखने वाले कवियों का एक उदार दल भी तो वहीं रहता है जो अकारण भी "वाह-वाह, बड़े अच्छे, बहुत सुन्दर" आदि का बारम्बार उच्चारण कर सरल श्रोताओं को भी वही बातें कहने के लिए विवश किया करता है। इस तरह वे थोड़े ही दिनों में अधिक प्रसिद्ध हो जाते हैं और उनकी कविताओं की मांगें भी फलतः बढ़ जाती है जिनको पूरी करना उनकी शक्ति के परे हो जाता है। लेकिन अपनी बढ़ी हुई प्रतिष्ठा को ध्यान में रखते हुए अधिक 'नहीं' तो कर नहीं सकते। जैसे व्यर्थ आडम्बर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



और थोथी 'राय साहिबी' के लिए शक्ति से अधिक अपव्यय करने वाले व्यक्ति को ऋण लेने पड़ते हैं और अन्त में चोरियाँ भी करनी पड़ती हैं, वही दशा ऐसे कवियों की भी होती है। वे ऐसी चोरियाँ करते हैं जो कवि वर्ग के लिए सर्वथा त्याज्य हैं। वे अपने अंतरंग मित्रों कोभी नहीं छोड़ते। वे सोचते हैं—पत्र-पत्रिकाओंके पृष्ठ मेरी रचनाओं से भरे पड़े हैं। मेरी पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं। जिस मित्र ने उस दिन कविता सुनायी थी उसे तो कोई भी नहीं जानता कि कविता करता है। उसकी कविताको अपनानेमें किसी आपत्ति की आशंका नहीं है। प्रकाशित होने के बाद यदि वह कहेगा भी कि कविता मेरी है तो कौन विश्वास करेगा ? अरे, मेरी प्रतिष्ठा की भी धाक है। पदादिकों का विपर्यय कर ऐसी कविता बना दूँगा कि कोई कह नहीं सकता कि यह कविता दूसरे की है।

यह भी सोचकर कि अमुक भाषा के जानकार हमारे समाज में नहीं के बराबर हैं अथवा उसके ज्ञाता अब निःशेष हो गये हैं, अथवा उससे संबंध रखने वाले सुदूर द्वीपान्तर में हैं लोग ऐसा दुःसाहस करते हैं। अनुचित लोभ देकर और दबाव डालकर कविताओं का खरीदना भी सुना गया है। इसी तरह चोरी के और भी अनेक आधार हो सकते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# मंगलवाद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माँ ने भोजन की थाली पिताजी के सामने रख दी। मैं उन्हें पंखा झल रहा था। एक ग्रीष्म ऋतु की दोपहरी की बात है। थाली के सामने आते ही पिता जी ने अनायास ही कहा— हरिर्दाता-हरिर्भोक्ता।

उस समय मैं १४ वर्षों का एक किशोर था। अंग्रेजी स्कूल में आठवीं कक्षा में पढ़ता था। पहले मैं पिताजी की बातों पर अंधविश्वास भी कर लिया करता था। लेकिन जब से मास्टर साहब ने विश्वास को अविवेक का रूपान्तर कह कर बिना मीन-मेष के किसी भी बात पर न विश्वास करने की व्यवस्था दी थी, मैं कुछ दूसरा ही हो गया था। पिता जी से मैंने उक्त व्यवस्था के विषय में कभी कुछ कहा न था फिर भी जैसे वे मेरी प्रकृति के इस परिवर्तन से परिचित हो गये थे और जान-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



बूझकर मेरे हृदय के किंचित् विचलित सरोवर में प्रायः ढेले फेंक दिया करते थे। पता नहीं, उन्हें इसमें क्या रस मिलता था।

कानों ने सुना "हरिर्दाता-हरिर्भोक्ता" आज मन ने उसे ग्रहण कर बुद्धि के पास विचारार्थ भेज दिया। मस्तिष्क में वही 'हरिर्दाता-हरिर्भोक्ता' गूँजने लगा। शब्दार्थ तो सुनते ही मेरी समझ में आ गया, लेकिन रहस्य जैसे बहुत दूर था और मैं अपने नन्हें हाथों से डाल पर अत्यधिक ऊँचाई पर लटकते हुए आम को लेने के लिए ललच गया। मेरे हाथों की क्रिया शिथिल होने लगी अनजान में और पिताजी की सन-सी सफेद मूँछों से छिपे हुए अधर कुछ खिंचे मुस्कुराने के लिए जिसे मैं देख न सका। हाँ, उनके कपोलों पर दो रेखाएँ स्पष्ट दीख पड़ीं, जिनसे मैंने अनुमान किया कि वे गूढ़ मुसकान में व्यस्त हैं। मैंने कहा—पिताजी, आपने जो कुछ कहा है वह अवश्य सत्य होगा। लेकिन बात कुछ मेरी समझ में न आयी। लौकिक व्यापार से सिद्ध और प्राप्त पदार्थ को आप हरि का बताते हैं और यही नहीं, आप यह भी कहते हैं कि इसके भोक्ता भी हरि ही हैं। मैं तो प्रत्यक्ष देखता हूँ कि इसे माँ ने आपको दिया है और आप भोजन करेंगे।

पिता जी ने कहा—बेटा, इन्द्रियों को अगोचर, सूक्ष्म, एक अदृश्य मूलद्रव्य से सारी व्यक्त सृष्टि उत्पन्न हुई है। देखो, संसार में जितने भी जीव दिखायी पड़ते हैं उनमें एक प्राण वर्तमान है। प्राण तुम नहीं देख सकते, जाने दो। सभी में भेद होते हुए भी जो अभेद दिखायी पड़ता है उसी से अनुमान कर लो कि सभी एक सत्ता की मुद्रा से अंकित हैं। सभी के जीवन तथा मरण की एक ही प्रणाली है। संपूर्ण सृष्टिका कोई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



एक परम-पिता है और उसी को हरि कहते हैं। यह अत्यन्त गूढ़ रहस्य है जिसे मैं तुम्हें नित्य समझाऊँ, फिर भी न जाने कब समझोगे। हाँ, सतत चिन्तन से तुम स्वयं समझ पाओगे। लेकिन तुम्हारा मन उस अचिन्त्य के चिन्तन में तब तक प्रवृत्त नहीं हो सकता, जब तक तुम विश्वास करना न सीखोगे। पहले विश्वास करो, उससे श्रद्धा उत्पन्न होगी, जो चिन्तन करायेगी और तब अनुभव कर सकोगे। विश्वास करो—एक सूक्ष्म स्वरूप से समस्त स्थूल जगत का विस्तार है। जैसे सर्वत्र वहने वाला एक पवन शून्य में सर्वत्र वर्तमान है, उसी प्रकार सभी में वह वर्तमान है। अन्त में सभी भूतों का उसी में समाहार होता है और फिर आदि में वही निर्माण करता है। इस जड़ जगत का पिता, माता, धाता इत्यादि वही है। सभी की गति, सभी की चेतना, सभी का पोषक, प्रभु, साक्षी, निवास, शरण, सखा, उत्पत्ति, प्रलय, स्थिति, निधान और अव्ययवीज वही तो है। सागर वही है, मेघ वही है, आग वही है, ईंधन वही है, सत् वही है—असत् वही है, पतित वही है, पावन वही है। बुद्धि, ज्ञान, असंमोह, क्षमा, दम, शम, सुख, दुख, भव-अभाव, भय, अभय, शान्ति, पुष्टि, तुष्टि, यश, अपयश, सब कुछ वही है। बारह आदित्यों में विष्णु वही है, तेजस्वियों में मरीचिमाली वही है, उन्चास पवन में मरीचि वही है, वेदों में साम वही है, देवताओं में इन्द्र वही है, इन्द्रियों में मन वही है, रुद्रों में शंकर वही है, यक्षों में कुवेर वही है, वसुओं में पावक वही है, पर्वतों में मेरु वही है, गुरुओं में वृहस्पति वही है और वाणी में ॐ वही है। ज्ञानियों का ज्ञान वही है, गुह्य का मौन वही है, जय की नीति वही है, और शाशन का दण्ड वही है। "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।" सभी तत्वों में वही परम तत्व वर्तमान है। इसीलिए दृश्य वही है—द्रष्टा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



वही है, श्रव्य वही है, श्रोता वही है, ज्ञेय वही है—ज्ञाता वही है और भोज्य वही है, भोक्ता वही है।

पिताजी भोजन और व्यञ्जन में से थोड़ा-थोड़ा अदृश्य भगवान के चरणों में समर्पित करने लगे। मैंने पूछा—क्या भगवान खायंगे, पिताजी ?

उन्होंने कहा—हाँ, क्यों नहीं ? उन्होंने उस दिन स्पष्ट शब्दों में कहा था—

*पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।*
*तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥*

"अनन्य भाव से समर्पित घास-पात, फल-फूल सभी कुछ मैं बड़े चाव से खाता हूं।" उनका आदेश है—

*यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।*
*यत्तपस्यसि कौन्तेय ! तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥*

"तुम जो खाते हो, दान करते हो, तप करते हो अथवा जो कुछ भी करते हो, पहले मुझे अर्पण करना !"

भारतवर्ष का प्रायः हरएक पिता अपनी सन्तान को ऐसी शिक्षा देता है। इसीलिए कुछ भी करने के पहले परमेश्वर की अनेक विभूतियों में से किसी एक का चिन्तन कर लेना भारतीयों का सनातन धर्म रहा है। कोई शिवका, कोई विष्णु का, कोई गणपतिका, कोई प्रणव मंत्राक्षर ॐ का, कोई निर्गुण और कोई सगुण स्वरूप का कार्यारंभ में ध्यान कर लेते हैं। हमारे अग्रजों ने अपना उत्तराधिकार हस्तान्तरित करते समय यह सन्देश भी दिया है कि काया, वाणी, मन, इन्द्रिय, बुद्धि, आत्मा की प्रवृत्ति अथवा स्वभाव के अनुसार तुम जो कुछ भी करना सबसे पहले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



परात्पर नारायण के चरणों में समर्पण करना। कवि परिपाटी में भी मङ्गलवाद का यहीं से प्रारंभ होता है।

तर्कशास्त्रियों में मङ्गलवाद को लेकर काफी तूं तूं—मैं मैं हो चुका है।

"कोई भी रचना करने के पहले मङ्गल का निबंध करना आवश्यक है।"

"क्यों ?"

"मङ्गल करने से विघ्नों का नाश होता है।"

"विघ्नों का नाश होने से क्या होता है ?"

"ग्रंथ की समाप्ति निश्चित है।"

'हम इसे नहीं मानते ! 'वाण' ने अपनी कादम्बरी के प्रारंभ में इतना अधिक मङ्गल लिखा जितना और किसी ने नहीं। फिर भी विचारे ग्रन्थ पूरा न कर सके। आह, यदि सारी कादम्बरी 'वाण' के हाथों लिखी गयी होती !"

"भाई इसमें 'वाण' के किये गये मङ्गलों का दोष नहीं। 'बाण' ने जितना मङ्गल किया उसकी अपेक्षा उनके विघ्न कहीं अधिक रहे होंगे। एक सती-साध्वी ने पतित-पावनी गङ्गा में केवल एक बार गोता लगाया जिसके प्रताप से उसे अन्त में बैकुण्ठ का धाम मिला। उसी गङ्गा में एक वेश्या ने वर्षों स्नान किया, फिर भी उसे नरक में ही स्थान मिला। क्यों ? सती-साध्वी के पापों की मात्रा।

---

*१. 'वाण' सम्राट् हर्षवर्धन के समकालीन माने गये हैं। ये जिस कुल में उत्पन्न हुए थे वह अपने पाण्डित्य के लिए सुप्रसिद्ध था। ये हिरण्यवाहु नदी के तट पर प्रतिकूट नामक ग्राम में रहते थे। इनका गोत्र वात्स्यायन था। इनकी माता का नाम राज्यदेवी था।*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सम्राट् हर्षवर्धन की शीतल छाया में इन्होंने अनेकों ग्रंथरत्नों की रचना की। इनकी रचनाओं में हर्षचरित और कादम्बरी सर्वोत्कृष्ट हुई। अब तक विश्वसाहित्य में ऐसी कोई सृष्टि न हो सकी जिसे कादम्बरी की समकक्षा में कहा जा सके।

लेखक द्वारा आसमाप्ति लिखा जाना ही यदि ग्रन्थ की पूर्णता का अर्थ हो तो यह कहा जा सकता है कि 'वाण' अपने जीवनकाल में कादम्बरी पूरी न कर सके। लेकिन मैं तो कहूँगा कि कादम्बरी इतना पूर्ण ग्रन्थ है जितना पूर्णग्रन्थ आजतक लिखा नहीं गया। मेरे इस कथन का प्रमाण कादम्बरी का एक-एक सर्वांगपूर्ण वर्णन है। कादम्बरी की महानता स्पष्ट करने के लिए एक कादम्बरी ही जैसा ग्रन्थ चाहिये जिसे मैं यहाँ कैसे लिख दूँ।

असमाप्त कादम्बरी का उत्तरभाग 'वाण' के पुत्र 'भूषण वाण' द्वारा लिखा गया। कुछ लोग 'वाण' के पुत्र का नाम 'पुलिनभट्ट' बताते हैं। किम्वदन्ती है कि एक बार का दम्बरी पूरी लिखकर 'वाण' ने अपने पुत्र के हाथ से महाकवि के पास भेजा। 'वाण' के पुत्र ने पूरी कादम्बरी महाकवि को सुनाया। 'महाकवि' ने सुनकर ग्रन्थ की भूरि-भूरि प्रशंसा की। किन्तु 'वाण' के पुत्र सुनाकर जब चलने लगे तब महाकवि ने कहा--तनिक संभाल कर ले जाना; कादम्बरी छलके न। 'वाण' को यह व्यंग्य सुनकर बड़ी ही ग्लानि हुई। उन्होंने तत्क्षण उस ग्रन्थ को विनष्ट कर दिया और अपनी सारी शक्ति और प्रतिभा समेट कर फिर से कादम्बरी लिखने लगे। इस बार वे पूरी कादम्बरी न लिख सके। फलतः उत्तर कादम्बरी 'वाण' के पुत्र ने पूरा किया। वे एक बार पूरी कादम्बरी 'महाकवि' को सुना चुके थे; उसी के आधार पर वे कादम्बरी पूरी कर सके। लेकिन उपर्युक्त एक किम्वदन्ती है; सत्य हो अथवा असत्य।

कादम्बरी कीमूल-कथा गुणाढ्य की बृहत्कथा से ली गयी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अत्यल्प थी और वेश्या के पाप बलवत्तर थे। इसीलिए फल की प्राप्ति में न्यूनाधिकता हुई।"

"'किरणावली' आदि ग्रन्थों को देखिये। उनमें तो तनिक भी मङ्गल का निबंध नहीं है। फिर भी ग्रंथ अच्छी तरह समाप्त हुआ है। इससे तो यही स्पष्ट है कि मङ्गल करना आवश्यक नहीं।"

"अनुमान प्रमाण से सिद्ध है कि किरणावली आदि ग्रन्थों की सुन्दर समाप्ति जन्मान्तर में किये गये मङ्गल से ही हुई। विघ्न थे ही नहीं। इसलिए ग्रंथ बिना मङ्गलपाठ के ही समाप्त हो गया!"

मैं जानता हूं कि आधुनिक समाज के अधिकांश सदस्यों की जिज्ञासा उपर्युक्त कथनोपकथन मात्र से तृप्त नहीं हो सकती। मङ्गलपाठ द्वारा विघ्नों का शमन होता है और फलतः ग्रन्थ की समाप्ति सकुशल हो जाती है, ऐसी आध्यात्मिकता को आज का बहुमत अंधविश्वास कहेगा। कहे।

मैं कहूंगा कि मन और बुद्धि को संस्कृत कर व्यक्ति को समाधि की अवस्था में लाने के लिए मंगलाचरण किया जाता है। श्यामदेव ने कहा है कि 'काव्य कर्मणि कवेः समाधिः परं व्याप्रियते' मन की समाधि से ही कवि अपने व्यापार में सफल हो पाता है। काव्यमीमांसाकार ने कहा है कि अवहित मन ही वेदना की क्रिया में प्रधान कार्य करता है। इसलिए सारस्वत पद की प्राप्ति के लिए मनकी समाधि अत्यंत आवश्यक तत्व है। समाधि द्वारा भावों की सत्ता में व्यक्ति की विशेषता को विलीन कर कवि सच्ची कविता कर सकता है। किसी भी पदार्थ का ग्रहण करने के लिए इन्द्रियों को मनोयोग की अपेक्षा होती है। यदि मन उदासीन हो, विरक्त हो अथवा अन्य दिशा में हो तो इन्द्रियों का कार्य करना न करने के बराबर होता है। '*चक्षुः पश्यति रूपाणि मनसा न तु चक्षुसा*'



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



आखें रूप को देखती हैं, लेकिन अपने से नहीं, मनसे। रूप, रस, गंध आदि को इन्द्रियां ग्रहण करती हैं लेकिन उनके व्यापार सर्व-स्वतंत्र रूप से कदापि नहीं हो सकते। वे मनकी अनुकूल अवस्था में विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों का आदान करती हैं और मनके पास पहुँचाती हैं। वहाँ शृंगार, हास्य, करुणा आदि स्थायी भावोंमें स्फुरण होता है। फिर बुद्धिके अवकाशों में छनकर वे ही भाव आत्मा को रसकी अनुभूति कराते हैं। बुद्धि अपना व्यवसाय करती ही जाती है। बुद्धि के तीन व्यवसाय हैं। अतीत अर्थों का स्मरण करना, अनागतों का अनुमान करना और वर्त-मान पर मंत्रणा देना। इन्हीं व्यवसायोंके आधार पर बुद्धिके तीन स्वरूप कहे गये हैं। एक को स्मृति, दूसरी को प्रज्ञा और तीसरी को मति कहते हैं। स्मृति, प्रज्ञा और मति की मंत्रणाओं के आधार पर आत्मा निर्णय करता है और निर्णयानुसार क्रिया का संचालन करने के लिए बुद्धि को आदेश देता है। मन को व्यवसायात्मिका बुद्धि के व्यवसायों का व्याकरण करना पड़ता है अर्थात् निर्णय को प्राप्त अध्यवसायों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए व्यव-स्थाएँ करनी पड़ती हैं जिसके लिए वह इन्द्रियों की चेतना को प्रेरित करता है। कवि का यही बौद्धिक व्यवसाय और मानसिक व्याकरण वाणी के साधन से काव्य हो जाता है। पाणिनीय ने कहा है—

*आत्मा बुध्या समेत्यार्थान् मनो युंक्ते विवक्षया*
*मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्।*
*मारुतस्तूरसि चरन् मन्दं जनयति स्वरम्॥*

आत्मा बुद्धि के द्वारा पदार्थों का आकलन कर मन में बोलने-की वासना को उत्पन्न करता है। मन कायाग्नि को, जिसे चेतना कहते हैं, उभाड़ता है जिससे आभ्यन्तर वायु गतिशील होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



वही वायु रसना के सहयोग से रस का क्षरण करती है। इस प्रकार कविता की सृष्टि होती है। मन, बुद्धि, वासना, प्राण और ज्ञान का एकतार करना ही समाधि है। समाधि में सत् का चिन्तन करता हुआ मन 'चित्' हो जाता है और वही 'चित्' फिर आनन्द की पदवी को प्राप्त होता है। कवि को ध्यान रखना होगा कि काव्य रचना करते समय मन में अर्थविरुद्ध वासनाओं का जागरण न हो। उनका संवरण समाधि के द्वारा ही हो सकता है। साथ ही यह भी ध्यान रखना होगा कि बुद्धि अपने व्यवसाय में भूल न करे। इसलिए काव्य का प्रारंभ करते समय ऐसा उपाय करना होगा कि बुद्धि राजस और तामस भावों को छोड़ कर सात्विक हो जाय। क्योंकि 'सत्' ज्ञान की भूमिका सात्विक ही बुद्धि हो सकती है। प्रमाथी मनको अनुकूल प्रवृत्ति में प्रवृत्त करने के लिए और व्यवसायात्मिका बुद्धि को शुद्ध और स्वस्थ रखने के लिए क्षण भर उस इष्ट का चिन्तन कर लेना आवश्यक है जो श्रद्धास्पद हो। मंगलाचरण का यही रहस्योद्देश्य हो सकता है।

शंका हो सकती है कि कवि मन में ही मङ्गलपाठ क्यों नहीं करलेता ? पुस्तक में लिखने की आवश्यकता क्या है ?

आवश्यकता है। जिस संस्कार की अपेक्षा काव्य-रचयिता के मन और बुद्धि को होती है वही पाठक के लिए भी अपेक्षित है। समाधि दोनों के लिए आवश्यक है। जब तक कवि की कारयित्री और भावक की भावयित्री चेतना का समीकरण नहीं हो पाता, कविता की वास्तविकता का बोध नहीं हो सकता। मन की तरङ्ग-मालाएँ जब शिथिल होंगी और बुद्धि सतोगुण से निर्मल होगी तभी वहाँ आरोपित रसात्मक अनुभूतियां उचित स्वरूप में प्रतिफलित हो सकेंगी। इसीलिए मङ्गल का निबंध कर कवि अर्थबोध कराने के पहले पाठक के मन और बुद्धि का संस्कार कर लेता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



मङ्गलाचरण की तीन विधियाँ हैं। नमस्कारात्मक, वस्तुनिर्देशात्मक और आशीर्वादात्मक। नमस्कारात्मक जैसे—

विघनकदन करिवर वदन, एक रदन सुख-कन्द।
सिद्धि सदन मङ्गल करन, जै-जै गिरिजानन्द॥

यहाँ इष्टदेवता को नमस्कार मात्र किया गया है। वस्तुनिर्देशात्मक जैसे—

श्री गुरुचरण-सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि।
बरणौ रघुवर विमल यश, जो दायक फल चारि॥

यहाँ जो वर्णन करना है उसका निर्देश करते हुए मङ्गल-पाठ किया गया है।

आशीर्वादात्मक जैसे—

विधुने बाहु बढ़ा अपने इन कलियों का मुख खोला।
पंखुड़ियों को खुली देख अब अलियों का मन डोला॥
लेने दे मरन्द मधुपों को क्यों करता धिक् वर्जन?
नहीं जानता क्या हरिके मन भाता ही है जूठन?
प्रेम युक्त हो, भक्ति-भाव से दे इनकी ही अञ्जलि।
पावों में पड़ यही बने कल्याणमयी कुसुमावलि॥

भावकों के लिए शुभचिन्तक कवि के ये आशीर्वचन हैं।

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# कवि के देश में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिव के मस्तक पर विराजमान चन्द्रमा को अनादिकाल से होते हुए भी बालचन्द्र ही कहा जाता है। [1]भोजपत्र हिमालय पर्वत पर ही पाये जाते हैं। [2]मलयाचल पर ही चन्दन होते हैं।

---

१—सतलज की घाटी से लेकर नेपाल गढ़वाल तक, और पञ्जाब, चीन, जापान आदि स्थानों में भी भोजपत्र पाये जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ये ५,००० से लेकर १४००० फीट की ऊँचाई पर ही पैदा होते हैं।

२—तापापहारचतुरो नागावासः सुरप्रियः।
नान्यत्र मलयादद्रेर्दृश्यते चन्दनद्रुमः॥—काव्य मीमांसा।
ताप को दूर करने में कुशल, सर्पों का आवासस्थल, और देव-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



वे कभी फूलते हैं न फलते हैं। चन्दन का साहित्यिक नाम भद्रश्री है। 'वर्षा ऋतु में ही मोर नाचते हैं। उनका कण्ठ नीला ही होता है।

ताओं को अत्यन्त प्रिय चन्दन का वृक्ष मलयाचल के अतिरिक्त और कहीं नहीं होता।

चरक ने चन्दन का विलेपन किये हुए रमणियों के शीतल स्पर्श को दाह की परम औषधि कहा है।

'यद्यपि चन्दनविटपी विधिना फलकुसुमवर्जितो विहितः।'

—काव्य मीमांसा।

यद्यपि विधाता ने चन्दन वृक्ष को फल, फूल आदि समृद्धियों से विहीन बनाया है फिर भी वह अपने शरीर से ही दूसरों के ताप का अपहरण कर असाधारण उपकार करता है। सज्जन ऐसे ही होते हैं।

तैलपर्ण और गोशीर्ष पर्वत आदि अनेक अन्य स्थानों में भी भद्रश्री नाम के चन्दन मिलते हैं। 'वनौषधि-दर्पण' के अनुसार चन्दन के पेड़ में हलके बैगनी रङ्ग के अधिकाधिक फूल और गोले-गोले फल भी होते हैं।

१—यद्यपि मेघदर्शन से ये गद्-गद् होकर नाचने लगते हैं और वर्षाऋतु की आर्द्र प्रकृति में इनका नृत्य अत्यन्त मनोहर होता है जब ये तारकखचित वर्ह ( पुच्छ ) के विस्तार को मण्डलाकार कर प्रमत्तभाव से थिरकते हैं। फिर भी देखा जाता है कि अन्य ऋतुओं में भी ये कभी-कभी नाचते हैं, भले ही उस नृत्य में वह मोहिनी न हो क्योंकि वर्षाऋतु के अन्त में इनकी पाखें गिर जाती हैं।

एक दूसरी जाति के भी मोर होते है जिनका कण्ठ नीला नहीं होता। लेकिन भारतवर्ष में नीलकण्ठ मोर ही अधिक मिलते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सागर में ही 'मकर' का वर्णन किया जाता है। कवियों के मोती ताम्रपर्णी नदी में ही होते हैं। शेफालिका के सुमन शरद की रात में ही विकसित होकर सूर्योदय से पहले ही मलयानिल

---

१—कामं भवन्तु सरितो भुवि सप्रतिष्ठाः
स्वादूनि सन्तु सलिलानि च शुक्तयश्च।
एतां विहाय वरवर्णिनि ताम्रपर्णीं
नान्यत्र संभवति मौक्तिक-कामधेनुः ॥ —काव्य मीमांसा

इस संसार में सुस्वादुसलिलशालिनी सीपियों से युक्त न जाने कितनी बड़ी से बड़ी नदियाँ हैं। लेकिन उस ताम्रपर्णी नदी को छोड़कर और कहीं भी मोती नहीं होते।

यद्यपि शास्त्रों के मत से गजविशेष के गण्डस्थल में, मेघविशेष में, वाराहविशेष में, मत्स्यविशेष में, सर्पविशेष में, सीपी में और बाँस-विशेष में भी मोती पाये जाते हैं। लेकिन इसे सभी ने स्वीकार किया है कि सीपी से जो मोती निकाला जाता है वही प्रकाश और सौंदर्य में सर्वश्रेष्ठ होता है। हार इन्हीं का बनाया जाता है क्योंकि और मोतियों में छेद करना अत्यन्त कठिन है।

२—पश्य-पश्य, एतत्तुहिनकणशिशिरसमीरणोद्वेलितवृन्तबन्धुर-शेफालिकाविरचितकुसुमप्रकरं शरद्प्रभातरमणीयं अग्रतस्ते-बालोद्यानम्।—वेणीसंहार

महाराज, शरदऋतु के प्रभातकाल में अत्यन्त रमणीय यह अन्तःपुर का बालोद्यान आपके सामने है। तुषार के कणों से सिक्त शीतल समीर से उद्वेलित शेफालिका के कोमल फूल वृन्तों से टूटकर पृथ्वी पर बिछे पड़े हैं।

शेफालिका को ठेठ भाषा में हरसिंगार कहते हैं। इसके फूल कहीं-कहीं वर्षा में भी खिलते हैं लेकिन कवि इसके विकास को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



से आहत हो वृन्तों से टूट-टूट कर पृथ्वी पर बिछ से जाते हैं। मालती वसन्त में नहीं फूलती। [1]कोकिल केवल बसन्त ऋतु में ही कूजता है। [2]कृष्ण पक्ष में किसी भी तिथि को तनिक भी चांदनी नहीं होती और इसी तरह शुक्लपक्ष की रात में अंधकार नहीं होता।

---

शरद में ही लिखते हैं। ये रात में ही खिलते हैं, इसमें तो संदेह नहीं लेकिन ये सूर्योदय के पहले ब्राह्ममुहूर्त में ही झड़ते हैं, कवियों के इस कथन में व्यभिचार भी देखा गया है। कुछ लोगों का कहना है कि इनके फूल सूर्योदय के बहुत देर बाद तक दिन में भी पेड़ों से गिरते रहते हैं।

१—'मालतीविमुखश्चैत्रो विकासी पुष्पसंपदाम्'

—काव्य मीमांसा

बसन्त में और सभी लताओं के फूल फूलते हैं, केवल मालती के नहीं। महाकवि कालिदास के ऋतुसंहार में इनका वर्षा और शरदऋतु में विकास वर्णित है। यद्यपि यह सत्य है कि मालती वसन्त में विकसित होती है।

२—लोक में कोकिल अन्य ऋतुओं में भी कूजते हुए देखा गया है। लेकिन बहुत कम। बसन्त के अतिरिक्त समय में इसका बोलना न बोलने के बराबर ही होता है। कुछ लोग तो ऐसा भी कहते हैं कि वसन्त के बाद यह पक्षी कुछ दिनों तक अत्यन्त दीनतापूर्वक ज्यों-त्यों मौन अवस्था में समय बिता कर जाड़े में किसी अन्य देश में चला जाता है। चाहे जो हो लेकिन बसन्त में इसका प्रमत्तभाव का पंचम स्वर जितना प्रलम्ब, अल्पविरल और मनोहर होता है उतना कभी नहीं।

३—मासि-मासि समा ज्योत्स्ना पक्षयोः शुक्ल-कृष्णयोः।
तत्रैकः शुक्लतां यातो यशः पुण्यैरवाप्यते॥

यद्यपि मास के दोनों पक्षों में अन्धकार और ज्योत्स्ना का परिमाण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सदा अपने मिथुन के साथ विहार करने वाले चक्रवाक दम्पती को निशाकाल में एक दूसरे से अलग रहना पड़ता है।
²अंधकार को मुष्टिग्राह्य और सूचीभेद्य कहा जाता है। अञ्जलि

---

समान ही होता है फिर भी एक को सर्वाङ्ग शुक्ल और दूसरे को सर्वाङ्ग कृष्ण ही कहा जाता है। यश बड़े पुराय से मिलता है।

१—चक्रवाक हंस की जातिविशेष है। दिन में ये अपने जोड़े के साथ नदी के तट पर विहार करते हैं और रात्रि के आते ही उनमें से एक नदी के उस पार चला जाता है और एक इस पार रह जाता है। सारी रात वे मार्मिक विराव करते हैं। भारतीय साहित्य इनके प्रणय की प्रशंसा से भरा पड़ा है। 'चल चकवा वा देश में रैन कदै नहिं होय।' लोक को इस कथन का प्रत्यक्षी-करण नहीं हुआ है। राजशेखर ने भी लिखा है कि 'चक्रवाक-मिथुनस्य भिन्नतटाश्रयणं असतोऽपिनिबंधनम्' यद्यपि चक्रवा-कमिथुन के रात में बिछुड़ने का अनुभव लोक को नहीं है फिर भी कविसंप्रदाय ने इसे एक स्वर से स्वीकार किया है। कहा जाता है कि सीताहरण के पश्चात् वियोगी राम को देख कर अपने मिलन में मत्त चक्रवाकमिथुन ने उनकी हँसी उड़ाई थी। तभी से रामचन्द्र जी के अभिशाप से इन्हें नित्य वियोग का दुःख सहन करना पड़ता है।

२—'मुष्टिग्राह्यत्वं सूचीभेद्यत्वं च तमसः, कुंभापवाह्यत्वं च ज्योत्स्नायाः असतोऽपि द्रव्यस्य निबंधनम्।' अंधकार में सघनत्वका आरोप करने के लिए कविगण उसके मुट्ठी में पकड़े जाने योग्य और सूई से छेदे जाने योग्य स्वरूप का कथन करते हैं। इसी प्रकार ज्योत्स्ना में विशेष चमत्कार का अभिधान करने के लिए उसके घड़े में भरकर ले जाये जाने का उल्लेख करते हैं। यद्यपि ये सभी बातें असत्य हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



द्वारा चन्द्रिका से घड़ा भरा जाता है। उसे पान कर चकोर तृप्त होते हैं।

कुन्दकली और कामी के दाँतों में ललिमा कमल मुकुल आदि की हरीतिमा और प्रियङ्गु पुष्पों की पीलिमा नहीं कही जाती।

---

१—दिन में चकोर प्रायः मौन ही रहते हैं। लेकिन चन्द्रोदय होते ही उनका असाधारण मौन मुखरभाव में परिणत हो जाता है मानों उस समय उनके आनन्द की सीमा नहीं रहती। इसीलिए कवि विश्वास करते हैं कि चन्द्रिका चकोरों की तृषा को शान्त करती है। चकोर मोर की ही जाति का पक्षीविशेष होता है।

२—कुन्द एक श्वेत पुष्प होता है। मल्लीनाथ ने अपनी टीकाओं में इसे माघ्य पुष्प अर्थात् माघ मास में विकसित होने वाला फूल कहा है। यद्यपि मूल के पास इनके कुड्मलों में थोड़ी लालिमा अवश्य रहती है फिर भी विकास की अवस्था में पुष्प के सर्वाङ्ग श्वेतत्व में यह खो सी जाती है।

काम के उत्कर्ष में सहायता देने वाले पान आदि का उपयोग करने से किसी कामी के दांत क्यों न लाल होंगे? लेकिन कवि के देश में इस लालिमा का वर्णन निषिद्ध है।

इसी प्रकार यद्यपि कमल का मुकुल कुछ हरा होता है, लेकिन कवि उसका वर्णन नहीं करते। कमल के कई भेद होते हैं। श्वेत कमल को पुण्डरीक, लाल को कोकनद अथवा तामरस और नील को नीलकमल या सौगंधिक कहते हैं। कमल के नाल को मृणाल कहते हैं। नाल को तोड़ने से जो दूध सा रेशा निकलता है उसे बिषतंतु कहते हैं। बिषतंतु को हंस बड़े चाव से खाते हैं।

इसी प्रकार प्रियंङ्ग में भी पीलिमा होती है फिर भी कवि उसका वर्णन नहीं करते। 'प्रियङ्गु श्यामाङ्ग प्रकृतिरपि।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सुन्दरियों के नूपुरयुक्त चरणाघात से अशोक, नृत्य से कर्णिकार, आलिंगन से कुरवक, पटु-मृदु हास्य से चंपा, कटाक्ष से तिलक, गान से नमेरु, स्पर्श से प्रियङ्गु, शृङ्गारवार्ता से मन्दार, प्रश्वास से सहकार और मुख में मदिरा लेकर कुल्ला करने से वकुल असमय में भी फूलने फलने लगते हैं। अशोक के फूलों का वर्णन नहीं किया जाता। प्रियङ्गु के फूल पीले नहीं होते।

---

१—'पादाघातादशोकास्तिलककुरवकौ वीक्षणालिंगनाभ्यां,
स्त्रीणांस्पर्शात् प्रियङ्गुर्विकसति वकुलः सीधुगण्डूषसेकात्।
मन्दारो नर्मवाक्यात् पटुमृदुहसनाच्चंपको वक्त्रवाक्यात्,
चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरोनर्तनात्कर्णिकारः॥'
काव्यमीमांसा मे भी इसका उल्लेख है—
कुरवक! कुचाघात क्रीड़ा रसेन वियुज्यसे
वकुलविटपिन्! स्मर्तव्यं ते मुखासवसेचनम्।
चरणघटनाशून्यो यास्यस्यशोक सशोकता
मिति निजपुरत्यागे यस्य द्विषां जगदुः स्त्रियः॥

किसी विजयी राजा के शत्रुओं की स्त्रियां कहती हैं—हे कुरवक! इस देश पर हमारे शत्रुओं का अधिकार हो गया है। इसलिए हम लोग यहाँ से अन्यत्र जा रही हैं। अब तुम्हें आलिङ्गन के समय हमारे कुचों के निपीड़न से जो आनन्द मिला करता था वह न मिलेगा। हे वकुल। हम अपने मुखों में मदिरा लेकर उससे तुम्हें सींचा करती थीं और तुम विकसित हो जाते थे। उसे तुम भविष्यमें याद करोगे। और हे अशोक! तुम हमारे चरणों के आघात को न पाकर सशोक हो जाओगे।

कुमारसंभव, मेघदूत, ऋतुसंहार, मालविकाग्निमित्र, रत्नावली आदि में अशोक के अनेकशः वर्णन मिलते हैं। यह बसंत में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



खिलता है। इसके फूल गुच्छाकार और लाल होते हैं। ये लाल फूल बड़े ही स्मरवर्धक होते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि इसके फूल सफेद भी होते हैं और आस्तिकों का विश्वास है कि ये सर्वसिद्धिदायक होते हैं। इसके किसलयों में तरङ्गें होती हैं। ये कुमार अवस्था में श्यामारुण और प्रौढ़ावस्था में हरे हो जाते हैं। कवियों को श्यामारुण किसलय ही अधिक रुचते हैं। इन किसलयों का छोटे-बड़े सभी प्रकार के उत्सवों में भारतीय खूब प्रयोग करते हैं। इन्हें माङ्गलिक समझा जाता है। इसमें गोल-गोल और काले-काले फल भी पाये जाते हैं। लेकिन कविवर्ग इसके फूल और किसलयों को छोड़ कर अन्य किसी भी अङ्ग का वर्णन नहीं करता। प्राचीन परिपाटी के अनुसार इसके फूलों का वर्णन करना निषिद्ध है।

कर्णिकार को ठेठ भाषा में कनेर कहते हैं। इसके पुष्प सुनहले होते हैं। साहित्य में अशोक के समान ही इसकी भी प्रतिष्ठा है। हाँ, मांङ्गलिक द्रव्यों में इसकी गणना नहीं है। कविसमाज में अशोक के फूल और किसलय दोनों का आदर होता है और कर्णिकार के केवल फूलों का ही। इसमें छीमीदार लम्बे-लम्बे फल भी होते हैं।

कुरवक पुष्प के अग्रभाग श्याम और शेष सितारुण होते हैं। अपने विक्रमोर्वशी में महाकवि कालिदास ने वसन्त में नवविकसित सुमनों की और मुग्धा नायिका के उभड़ते हुए उरोजों की समानता दिखायी है। 'अग्रेस्त्रीनखपाटलं कुरवकं श्यामंद्वयोर्भागयोः........' ठेठ भाषा में इसे कसरैया कहते हैं। अमरकोष में कहा गया है कि यह झिंटीका एक भेद है और इसके फूल लाल होते हैं। वसन्त में इसका फूलना प्रारंभ होता है। इसमें फल भी होते हैं लेकिन आदर फूलों का ही होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



चंपक के पुष्प से साधारण और असाधारण सभी कोटियों के भारतीयों की घनिष्टता और सहानुभूति है। सभी ने इसका विशेष आदर किया है। इसकी गंध मनोहर-तीव्र होती है। भ्रमर इसे पसन्द नहीं करता।

किं कुत्सितो भवति गंध सुचंपकस्य, तस्यान्तिकं न मधुपस्तु कदापि याति।
संकोचमम्बुजदलस्य कदा स वेत्ति, एतादृशो भवति बंधनमस्य प्रेम्णः ॥

"क्या चंपा की गंध बुरी होती है ? कदापि नहीं। लेकिन आह, भ्रमर उसके पास भूलकर भी नहीं जाता। और वही भ्रमर कमल के कोष में बैठा हुआ यह भी नहीं जान पाता कि कब और कैसे उन कोमल दलों ने उसे बन्दी बना लिया। प्रेम का बंधन ऐसा ही होता है।"

इसके फूल कनकवर्ण के होते हैं। इसके कनकगौर सुमनों का हार किसी कनकगौरी के गले में बड़ा ही मनोहर होता है।

तिलक तरु के फूल भी बसन्तकाल में ही खिलते हैं। कुछ लोगों ने कहा है कि इसके फूल सितासित होते हैं। महाकवि कालिदास के वर्णनों में इनके श्वेतारुण होने की व्यंजना मिलती है। प्राचीनकाल में इसके पुष्प स्त्रियों के मनोहर शृङ्गार थे। मालविकाग्निमित्र में 'महाकवि' ने लिखा है "आक्रान्ता तिलकक्रियापि तिलकैर्लीनद्विरेफाञ्जनैः।" प्रमदाओं की तिलकक्रिया को मण्डनीभूत तिलक सुमनों ने दबा दिया।

प्राचीन काव्यों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि जैसे स्त्रियाँ तिलक के पुष्पों से अपना शृङ्गार करती थीं उसी प्रकार नमेरु के फूल पुरुषों के मण्डन थे। महाकवि ने कुमारसंभव में लिखा है कि "गणाः नमेरुप्रसवावतंशाः......" कैलाश पर्वत पर जहाँ नमेरु वृक्षों की सघन और समाधि के अनुकूल छाया थी, शिवजी ने समाधि लगायी और उनके गँण मनःशिला का अनुलेप कर, नमेरु पुष्पों से आभूषित होकर भूर्जत्वक् का परिधान कर वहाँ उपस्थित हुए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



प्रियङ्गु एक लता होती है। "प्रियं प्रियङ्गुलता परिरंभति। सहकारं खलु तच्छ्री जृम्भति।" प्रिय सहकार का गाढ़ालिङ्गन किए हुए प्रियङ्गुलता की शोभा में असाधारण उल्लास है। प्रियङ्ग पुष्प का रङ्ग उस श्यामा नायिका के वर्ण के समान कहा गया है जिसे बच्चा न पैदा हुआ हो। 'प्रियङ्गु श्यामाङ्ग प्रकृति रपि।' लेकिन लोक में उसका फूल पीला ही प्रसिद्ध है। इसके फूलों में मनोहर सुगन्धि तो होती ही है साथ ही साथ ये प्रियदर्शन भी होते हैं। प्राचीन समय में इसका बड़ा आदर होता था। इसमें छोटे-छोटे फल भी होते हैं।

पञ्च देवतरुओं में मन्दार का प्रथम स्थान है।

पंचैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः।
सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम्॥

मन्दार, पारिजात, सन्तान, कल्प और हरिचन्दन ये पाँच देवलोक के वृक्ष हैं। इसी से काव्यों में जहाँ जहाँ इनके वर्णन पाये जाते हैं उनका सम्बंध देवताओं से ही है। अभिज्ञान शाकुन्तल में इन्द्र का दुष्यन्त को मन्दार-माला देना वर्णित है! इन्द्राणी मन्दार से अपने अलकों का शृङ्गार कराती हुई कही गयी हैं। मेघदूत के यक्ष के आंगन में भी वालमन्दार था जो इतना ऊँचा था कि बिना उस पर चढ़े ही हाथों से उसके पुष्पस्तवक ग्रहण किये जा सकते थे। 'हस्तप्राप्यो स्तवकनमितो वालमन्दारवृक्षः।' हरगिरि कैलाश पर—

यत्र-तत्र करते रहते हैं
देवद्वन्द निर्द्वन्द विहार
थक जाते तब विजन डुलाते
हिल-हिल मंद-मंद मन्दार

अमरसिंह ने मन्दार की व्युत्पत्ति स्पष्ट करते हुए कहा है—मन्दा अरा (गति) यस्य अथवा मंदा आरा (धारा) अस्य सरलत्वात्, अथवा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



मन्दते मोदयतीति मन्दारः। जिसकी गति मन्द हो, सरलता के कारण जिसकी धारा मन्द हो अथवा जो अपने गुणों से मुदित करे वही मन्दार है। इस वृक्ष का रङ्ग श्वेतपीतविमिश्रित, फूल गोल-गोल सरल बैंगनी रङ्ग के कहे गये हैं।

सहकार (आम्र) को फलराज की उपाधि प्राप्त है। वस्तुतः लोक में यही एक ऐसा वृक्ष है जिसका सर्वाङ्ग सर्वोत्कृष्ट है। इसके पल्लव अत्यन्त माङ्गलिक, मञ्जरी स्मरवर्धक और फल सुस्वादु! इसकी समता का और कोई विटप नहीं है। संभवतः कोई ऐसा मनुष्य न होगा जिसे सहकार ने मुग्ध न कर लिया हो, सहृदय कवियों का तो कहना ही क्या! काव्यों में कहीं-कहीं सहकार की लता का भी वर्णन मिलता है। लेकिन लोक में ऐसा नहीं देखा जाता। यह अनङ्ग का एक प्रधान वाण है।

वकुलवृक्ष बसंत से लेकर शरदऋतु तक पुष्पित रहता है। अधिकतर काव्यों में इसके फूलों का वर्णन बसंत और शरदऋतु में हुआ है। कहते हैं कि शरदकाल में इसकी गंध और भी मादक हो जाती है। अमर सिंह ने केसर और वकुल को पर्यायवाची कहा है। इसमें परिमल की अन्य पुष्पों की अपेक्षा अधिकता रहती है। ठेठ भाषा में इसे मौलसिरी कहते हैं। इसका पेड़ विशाल और छायादार होता है। महाकवि ने कहा है 'कांक्षत्यन्यों (वकुलः) वदनमदिरां दोहदच्छद्मनास्याः।' कहा जाता है कि शिवजी के त्रितीयनेत्र की ज्वाला में कामदेव के भस्म होने पर उनका धनुष पांच-टुकड़े होकर पृथ्वी पर गिरा। उस धनुष का मुष्टिवंध रुक्ममय था, वहीं चंपक हुआ। उसका नाह वज्रनिर्मित था; वही वकुल पुष्प हुआ। उसकी कोटियां इन्द्रनीलमणिखचित थीं; वे ही पाटलपुष्प हुईं। नाह और मुष्टिबंध के बीच में चन्द्रकान्तमणि जड़ा था; वही जाती



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



'नीलकमल और कुमुद दिन में नहीं खिलते। पद्म का विकास दिन में ही कहा जाता है। नदी और समुद्र आदि में भी इनका बिना किसी हिचकिचाहट के वर्णन किया जाता है।

वर्षाऋतु के आते ही 'हंस मानसरोवर चले जाते हैं।

---

पुष्प हुआ और मूँठ के ऊपर तथा कोटि का अधोभाग विद्रुम से युक्त था वही मल्ली पुष्प हुआ।

१—राजशेखर के मत से नीलकमल आदि दिन मे भी और पद्म रात में भी खिले हुए देखे गये हैं। कवियों का यह इतना प्रिय रहा है कि जहाँ भी उन्होंने जलसंग्रह का वर्णन किया है वहाँ इनको अवश्य स्मरण किया है, भले ही वह धारावाहिनी नदी हो अथवा उत्तुङ्गतरङ्गों वाला समुद्र ही क्यों न हो। यदि सच कहा जाय तो ये उन जलाशयों में ही पाये जाते हैं जहाँ कर्दम की अधिकता हो। धारा-प्रवाह में तो इनका ठहरना ही कठिन है। भगवान कृष्ण की रासलीला के वर्णन में कवियों ने नीलकमल का प्रायः अवश्य ही वर्णन किया है। ये भगवान को विशेष प्रिय थे। आज कल यद्यपि ये नहीं दिखायी पड़ते पर इसका अर्थ यह नहीं हो सकता कि ये कपोलकल्पित हैं।

२—हंसों का मानसरोवर से घनिष्ट सम्बंध है। मानसालय, मानसोकस्, और मानसचारिन् आदि भी इनकी संज्ञाएँ हैं। वर्षाकाल में यहाँ के जल आविल हो जाते हैं, इसीलिए कहा जाता है कि तब वे उड़कर मानसरोवर में चले जाते हैं। अनेकानेक पश्चिमी विद्वानों ने भी इसका समर्थन किया है। महाकवि को तो, आकाश में घटाएँ घिरी हों और उस समय कोई मधुर कूजन सुनाई पड़े, चट राजहंस याद आ जाते थे।

मेघश्यामा दिशो दृष्ट्वा मानसोत्सुकचेतसाम्।
कूजितं राजहंसानां नेदं नूपुरशिञ्जितम्॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



'कामदेव के धनुष और बाण फूलों के होते हैं। उस धनुष की प्रत्यंचा भ्रमरपंक्ति की है। अरविन्द, अशोक, आम्र, नवमल्लिका और नीलोत्पल ये पाँच काम के बाण हैं। कामदेव को अनङ्ग भी कहा जाता है और सर्वातिशयितसौन्दर्यशालीस्वरूपमान् भी। वसन्त को काम का अभिन्न हृदय मित्र और परम सहायक कहा जाता है।

---

मेघदूत के यक्षका अलका पुरी में जो उद्यान था उसकी वापी में रहने वाले हंस वर्षा के मेघों को देख कर भी उसे छोड़कर मानसरोवर में नहीं जाते थे, यद्यपि मानसरोवर वहाँ से दूर नहीं था।

यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं सन्निकृष्टं
नाध्यासन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसः॥

पुराणों में मानसरोवर की व्युत्पत्ति भी बताई गयी है। कैलास के शिखर पर स्थित ब्रह्मा ने इस सरोवर का मनसा निर्माण किया, इसीलिए इसका नाम मानसरोवर पड़ा।

कैलास शिखरे राम मनसा निर्मितं सरः।
ब्रह्मणा प्रागिदं यस्मात्तदभून्मानसं सरः॥

इस दिव्य सरोवर में कनक के कमल होते हैं।

सुरदारादर्पणीभूतभू सित - मणिमयी विभूषित भूप।
जिसका प्रतिपल कनककमलमय मानसरोवर मुकुर अनूप॥

१—देवदारु पर देव-देवदाराएँ दोला डाल कहीं।
इष्टों के सँग धृष्टभाव से हृष्टमना हो झूल रहीं॥
दोलित दोला वायुविलोड़ित अङ्ग-अङ्ग से स्खलित दुकूल।
कुपितकामसर वृष्टि हुई वे शूल नहीं थे केवल फूल॥

तारकासुर के साथ देवताओं का घोर युद्ध हो रहा था। देव-पक्ष अत्यन्त निर्बल होता जा रहा था। गति केवल यही थी कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



शिव को शूल धारण करने के कारण शूली कहते हैं लेकिन सर्पधारण करने के कारण सर्पी नहीं कह सकते। कोई कहता है कि चन्द्र-विम्ब में शश है और कोई कहता है कि उसमें हरिण है। कवि दोनों को स्वीकार करते हैं। लेकिन चन्द्रमा को शशांकित होने के कारण शशी कहते हैं किन्तु हरिणांकित होने के कारण उन्हें हरिणी कहना मना है। भगवान शंकर के सिर पर वालचन्द्र विराजमान रहते हैं और गङ्गा भी। लेकिन उन्हें चन्द्र-शेखर कह सकते हैं किन्तु गङ्गा-शेखर नहीं। र और ल, ड और ल, श और स में भेद नहीं माना जाता। थोड़े से जल में भी हंस और जलपक्षी होते हैं। जलाशयमात्र में सेवार पाया जाता है। स्त्रियाँ काली नहीं होती। उनके कुचों का गिरना अथवा शिथिल भाव से हिलना नहीं कहा जाता। स्तनपान का वर्णन

---

भगवान शंकर से उत्पन्न कुमार सेनापतित्व करें। उस असुर का वही वध कर सकता था। अखण्ड ब्रह्मचारी भगवान शंकर समाधि लगाये हुए थे। देवताओं के कल्याणार्थ काम उनके हृदय में वासना का जागरण करने के लिए ससमाज प्रस्थित हुआ और शिवजी के तृतीय नेत्र की ज्वाला में उसे भस्म होना पड़ा। रति के असाधारण विनय पर फिर शिवजी ने कामका पुनर्जन्म स्वीकार कर लिया। फलतः द्वापर में श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न के स्वरूप में काम का अवतार हुआ।

काम के वाण द्रावण, शोषण, तापन, और उन्मादन अथवा सम्मोहन, स्तंभनकारण, ज्वलन और चेतनाहरण होते हैं। श्रीहर्ष ने कहा है— हे काम के वाण! यदि तुम फूलों के नहीं हो तब भी यह कहना ही पड़ेगा कि तुम विषवल्लियों से पैदा हुए हो। कुछ लोगों का कहना है कि रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द ये ही पांच काम-वाण हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



करना भी निषिद्ध है। देवताओं का नख-शिख कथन चरण से प्रारंभ किया जाता है और मनुष्यों का सिर से। द्वन्द्वकथन में पहले स्त्रीलिङ्ग तब पुल्लिङ्ग का क्रम होता है। जैसे सीताराम, गौरीशङ्कर आदि। देवता विषयिणी चर्चा में पहले देवता का वर्णन होता है तब देवी का और मानव विषयिणी वार्ता में पहले नायिका का तब नायक का। गगन-मण्डल की स्थिति सौ धनुष ऊपर कही जाती है। शब्द से पहाड़ फटता है और स्त्रियों के कटाक्ष से कामियों का कलेजा। उपाधि और नाम को एक ही माना जाता है, जैसे खरवाहिनी और शीतला। वाहन और ध्वजा में कोई भेद नहीं समझा जाता। काम की ध्वजा में मत्स्य और मकर एक ही माने जाते हैं। अत्रि के नेत्र से उत्पन्न और समुद्र से जात चन्द्रमा को एक ही समझा जाता है। नारायण और माधव में कोई अन्तर नहीं। बारहो सूर्य एक ही माने जाते हैं। दामोदर, शेष और कूर्म, एक ही कहे जाते हैं। नाग और सर्प का एवं दैत्य, दानव तथा असुर का समान अर्थ में ही व्यवहार किया जाता हैं साधारण से साधारण पर्वत पर भी सुवर्ण और रत्नों का वर्णन किया जाता है। कुछ लोग समुद्रों की संख्या चार और कुछ लोग सात कहते हैं। इसी तरह तीन, सात और चौदह के अनुसार भुवनों की संख्या में भी मतभेद है। विद्याओं को चार भी कहते हैं, अट्ठारह भी और चौदह भी।

काव्यजगत में कृष्ण, नील, हरित, और श्याम रंग में कोई भेद नहीं होता। श्वेत और गौर भी एक ही समझे जाते हैं।

इन्द्र के हाथी और घोड़े (ऐरावत और [2]हरि), मन्दार,

१—'रोहित' नाम की मछली।

२—अमरसिंह के अनुसार इन्द्र के हरि नामक अश्व का वर्ण पीत-कौशेय है। कहा गया है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



हिम, चन्द्रकान्त और सूर्य्यकान्त मणि, हिमालय, शरदकाल के मेघ, अमृत, अभ्रक, शिव, नारद भार्गव, हली, कैरव, शेष, हास्य, मृणाल, स्वर्गङ्गा, हस्तिदन्त, लोध्र, केंचुल, कीर्ति, पुण्य, सतोगुण, सतयुग वृद्धावस्था, सौध, मुक्ता, स्फटिक, फेन, सिकता, चन्द्रिका, करका, वक, और हंस आदि को श्वेत कहा जाता है।

कृष्ण, व्यास, राम, अर्जुन शनि, द्रौपदी, काली, चन्द्रचिन्ह, विष, आकाश, अमा, शस्त्र, अगरु, पाप, अद्भुत और शृङ्गार रस, पाप, अन्धकार, रात्रि, मद, ताप, वाण, युद्ध, बलराम के वस्त्र, यम, राक्षस, खञ्जन, और मोरकण्ठ, कृत्या, छाया, गज, अँङ्गार, राजपट्ट, अपयश, विदूरज, दुष्ट हृदय, राहु, नीलम, तिल, तमाल, धूम्रकेतु, चोर तथा खल के हृदय आदि को श्याम, नील अथवा कृष्ण कहा जाता है।

प्रताप, क्रोध, अनुराग, कुञ्जरविन्दु, विद्युत, खद्योत, तक्षक, जिह्वा, भौम, प्रवाल, इन्द्रवधू, प्रभात, कबूतर और कोकिल के नेत्र, त्रेता, रौद्र रस, चकोर, कपिमुख, क्षात्रधर्म, कुंकुम, रजोगुण, जावक और विम्बाफल आदि का लाल वर्णन होता है।

इन्द्र, गरुण, शिवनेत्र, शिवजटा, ब्रह्मा, वीर रस, स्वर्ण, कपि, दीप, जीव, गोरोचन, किञ्जल्क, चक्रवाकी, हरिताल, मनःशिला, चंपक, वृहस्पति, द्वापर, वसुमती और वसन्त आदि का पीतवर्ण स्वीकार किया गया है।

---

*त्वक्केशवालरोमाणि सुवर्णाभानि यस्य तु।*
*हरिः स वर्णतोऽश्वस्तु पीतकौशेय सप्रभः।"*

*१—राजशेखर ने लिखा है कि कुछ कवियों ने पाप का रंग लाल भी कहा है, यद्यपि यह लोक और शास्त्र दोनों के विरुद्ध है।*

*२—अङ्गार का वर्ण लाल भी होता है और यही उचित भी जँचता है।*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



कपोत, करभ, गृहगोधा. मूषक, रज, लूता, दुर्गा, काककण्ठ, धूम्र और गर्दभ के वर्ण को धूसर कहा जाता है।

सूर्य के घोड़ों को, बुध को और मरकत आदि को हरा कहा जाता है।

आँखों का चित्र वर्णन होता है; श्वेत, श्याम, रतनार!

सभी पर्वतों पर स्वर्ण और रत्नों का पाया जाना, अल्पजल में भी हंसादिकों का निवास, नदी और समुद्रों में भी नीलोत्पल और पद्म आदि का विकास, स्वर्गंगा में भी इहलोक की तरह जल का कल-कल तथा पशु-पक्षियों की क्रीड़ा, तमका मुष्टि ग्रहण और सूची भेदन, यश और पुण्य का श्वेतत्व, पापका श्यामत्व, प्रताप, क्रोध और अनुराग का रक्तत्व, सुन्दरियों के चरणाघात आदि से अशोक आदि वृक्षों का असमय में भी फूलने-फलने लगना, सभी जलाशयों में सेवार की सुलभता, चन्द्रिका से घट का भरा जाना, और चक्रवाक मिथुन का रात्रिवियोग आदि ऐसी बातें हैं जिन्हें लोक और शास्त्र असत्य समझते हैं, फिर भी कवियों ने इन्हें सत्य माना है और बराबर ऐसा ही वर्णन करते चले आये हैं।

लोक में देखा जाता है कि बसन्त में मालती खिलती है, चन्दन में फल और फूल होते हैं, स्त्रियों का रङ्ग श्याम भी होता है, उनके पयोधर यौवन के पश्चात् शिथिल और हलकौहें भी हो जाते हैं, मास के कृष्णपक्ष में भी चाँदनी होती है। कुमुदिनी दिन में भी खिलती है, और वर्षाऋतु में भी मल्लिका पुष्पित होती है। लेकिन इनके सत्य होने पर भी कविसमाज में ये अवर्णनीय हैं।

कुछ कथन ऐसे हैं जिनके कहने की लीक सी पड़ गयी है। भालचन्द्र के चन्द्र को वालचन्द्र ही कहना, भोजपत्र का हिमा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



लय की पर्वतमालाओं में ही होना, भद्रश्री चन्दन का मलयाचल पर ही पाया जाना, मनुष्य का सिर से और देवताओं का नख से ही सर्वाङ्ग वर्णन करना, सामान्यतः रत्न और रविबिम्ब आदि को रक्त ही, केश, काक, मेघ आदि को कृष्ण ही, छत्र, जल, पताका, और फूल आदि को श्वेत ही कहना, वर्षा ऋतु में ही मयूरों का विरुत और नृत्य इत्यादि ऐसे विषय हैं जिनके कहने का नियम चला आता है।

चन्द्रमा में मृगांक या शशांक, कामदेव की ध्वजा पर मकर या मत्स्य, लोध्र वृक्ष के पुष्प लाल या गुलाबी, कामिनी-कटाक्ष शुक्ल या कृष्ण, विद्युत, स्वर्ण, पराग और अग्नि पीत या रक्त, श्री कृष्ण श्याम या नील या हरे, ये ऐसे विषय हैं जिनका ऐसे भी निबंध होता है और वैसे भी।

"ऐसी लोक और शास्त्र के विरुद्ध बातें कहना तो दोष है।" इसका उत्तर देते हुए राजशेखर ने कहा है—प्राचीनकाल के विद्वानों ने वेद, वेदाङ्ग और श्रुति-स्मृति आदि का आलोड़न कर, शास्त्रों का प्रगाढ़ अध्ययन कर तथा भिन्न-भिन्न देशों और द्वीपान्तरों में अनुसन्धान के निमित्त पर्यटन कर जिन-जिन पदार्थों का प्रणयन किया है वे मिथ्या नहीं हो सकते। हाँ, यह हो सकता है कि देश और काल के परिवर्तनवश उन पदार्थों में आज कुछ भिन्नता आ गयी हो।

यह भी हो सकता है कि आज विपरीत वातावरण के कारण हमारी वाह्य और अन्तर्दृष्टियों में पदार्थों के सूक्ष्म दर्शन की वह सामर्थ्य न हो जो पहले के विद्वानों में थी। अगर हम सहानुभूति और आदर की भावनाओं से अनुप्राणित हो अतीत की ओर देखें तो हम देख पायेंगे कि हमारे पूर्वपुरुषों की चेतनाओं में जो स्फूर्ति थी वह आज के आलोचकों में नहीं है। चाहे जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



हो उनके इन नियमों का यही मूल कारण मालूम पड़ता है कि पदार्थों के उत्कृष्ट अंश का ही काव्यों में कथन करना उनका नियम था। तनिक ध्यान से विचार करने से उनके प्रत्येक कथन का कारण जाना जा सकता है। कोई उनमें मिथ्यात्व का आरोप अविवेकवश न करे। ये नियम काव्य की शोभा को बढ़ाने ही वाले हैं।

सब कुछ होते हुए भी हमारा यह कर्तव्य नहीं है कि हम उसी सीमा में रह जायँ। हमें विज्ञान के उन्मुक्त क्षेत्र में और भी अधिक साहस के साथ अग्रसर होना है। जिस प्रतिभा के अपव्यय से प्राचीन मत का खण्डन-मण्डन किया जायगा उसी के सहारे दो कदम आगे बढ़ा जा सकता है। "If the past has given us some part of the truth the future also hides many aspects of truth and invites us to search for it" अतीत से हमें जो सत्य का अंश मिला है उसके लिए हम आभारी हैं। लेकिन सत्य का बहुत कुछ अंश भविष्य में भी छिपा है जिसे खोज निकालना हमारा धर्म है। इसके लिए भविष्य हमें आमन्त्रित करता है।

कटाक्ष, दुर्वचन, प्रतिभा, अग्नि, सूर्य की किरण, हीरा, नख, और लवण की तीक्ष्णता का वर्णन किया जाता है।

अलक, बालचन्द्र ( द्वितीया का चन्द्र ) भ्रू, नखचिन्ह, अंशुक फण, इन्द्र धनुष, अंकुश, किंशुक ( पलास ), हाथी और सूअर के दांत, खड्ग, कटाक्ष, मयूरचन्द्रक, और कुंचिक आदि की वक्रता का कथन किया जाता है।

श्रोणी, कुच, कपाट, सज्जनों के मन और बुद्धि को गंभीर और गुरु कहा जाता है।

भिक्षुक, हाथी के नेत्र, कुमंत्रणा, अधम, मशक, चपलता,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



असत्य, और दुष्टों की वाणी की तुच्छता और लघुता का वर्णन किया जाता है।

काक. उलूक, वाराह, वृक, चक्की, और गर्दभ आदि के स्वर को क्रूर और अमधुर कहा जाता है।

वज्र. शिवनेत्र. एकार, शकट, हल, उत्तरीय, पर्वत, कामाख्या, मण्डल और अग्नि आदि के त्रिकोणभाव का वर्णन होता है।

वायु, विष्णु, यम, गरुण, गज, हनूमान, बलराम, भीम, वालि, महावाराह. पूर्वजन्म के कर्म, सती, काम, सत्य और प्रतिज्ञा आदि को वलिष्ठ कहा जाता है।

कृष्ण. अश्विनी कुमार, नल कूवर ( कुवेर के पुत्र ) कामदेव, शाम्ब ( कृष्णपुत्र ) आदि को अत्यन्त सुन्दर कहा जाता है।

सत्कीर्ति, धर्म, अधर्म, समुद्र, शूर, सती का मन आदि स्थिर होता है।

शनि, कच्छप, वृषभ. कामिनी, हंस, और मातङ्ग आदि मन्दगामी कहे जाते हैं।

दुर्जन, स्वर्ग का अधिवास अबला का निश्चय, स्वामी की प्रसन्नता. यौवन, अपाङ्ग, प्रमाद, मत्स्य, कपि और दोला को अस्थिर कहा जाता है।

वसन्त, सुन्दरी के अधर, शशि, सज्जन की उक्ति, चतुर नारियों की युक्ति, नवोढ़ा के 'नहीं', और आश्विन के मास को मधुर माना जाता है।

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृष्णता, कोमलता, कुटिलता, दीर्घता और सघनता आदि गुणों को ध्यान में रखते हुए स्त्रियों के केशों की उपमा अन्धकार शैवाल, मयूरपुच्छ, सजलमेघ, चामर, भ्रमरपंक्ति सर्पकुमार, यमुनासलिल, नीलमणि, नीलकमल, आकाश और अगरुधूम की श्याम लहरियों से दी जाती है और उन्हीं के आधार पर भिन्न-भिन्न उत्प्रेक्षाएँ भी की जाती हैं।

"तम को निवास कैधों तामस प्रकाश कैधों,
सर में सिंगार के ये सुथरे सेवार हैं।"

लटों की भी ऐसी ही उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ होती हैं।

"नेह भीनी लट वाकी लपटि कपोलन पै,
मानो मैन आरसी में फारसी हरफ हैं।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



"शीश ते एक छुटी लट सुन्दर आनिके यों कुच में लपटाई।
गङ्ग कहैं मनो चन्द के बीच में शंभु को पूजन नागिन आई।"

पाटी की उपमा असित छत्र और कज्जल गिरि की घाटी आदि से दी जाती है। माँग को द्वितोया के चन्द्र, राहु की रसना, सात्विक पन्थ, और नीलगिरि पर गङ्गाजी की धारा आदि के समान कहा जाता है।

वेणी की उपमा त्रिवेणी, काली नागिन, अन्धकार की धारा, कञ्ज के नाल, और मत्त मधुप की श्रेणी आदि से दी जाती है।

हे तिय, वेनी रावरी कारी नागिन रूप।
भेद इतो वाके डसे या लखि लहरि अनूप॥

धम्मिल ( जूरा ) की उपमा राहु, साकार अधकार के मस्तक अथवा शालिग्राम आदि से दी जाती है।

माँग में मुक्तावलि घनांधकार में नक्षत्रों की पंक्ति, घोर घटाओं में दामिनी की द्युति, और यमुना में दुग्धनदी की धारा आदि के समान कही जाती है।

सुवर्णपट्टिका, शोभा की सभा और चन्द्रमाका चतुर्थांश आदि भाल के उपमेय हैं। अष्टमी के चन्द्र अथवा अर्धचन्द्र से भी इसकी उपमा दी जाती है।

"देता ललाट जिसका सुन्दर उस पूर्णचन्द्र को अर्धचन्द्र।"

शरदऋतु के प्रभातकालीन निरभ्र गगन को भी भाल के सदृश कहा गया है।

"आयत, शोभन, ऊँचो उठ्यो गोरटी के ललाट ललाम लसैं।
प्रातः के सुखदानविशारद शारद अंम्बर को विहसैं॥"

भाल में सिन्दूर की बिन्दी की उपमा बालप्रभाकर, इन्द्रवधू ( वीरवधूटी ) अथवा मंगल से तथा कृष्णविन्दु की उपमा भ्रमर-कुमार अथवा कामसर की अनी से दी जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



भाल विशाल पै ईंगुरलाल सोहाग जतावत ना सरसैं।
बालप्रभाकर हूं पद धारिहैं केवल द्वै दिन के अरसैं॥

आँखों की उपमा अलस कलम, कमलपत्र, केतक, खञ्ज, मीन, मृग, और चकोर से दी जाती है। साञ्जन नयनों की उपमा भौरों, गोधूली के बाद के अंधकार आदि से दी जाती है। बरुनियों को आँखों के हाथ, शृङ्गार रस के अंकुश और कामदेव के बाण कहा गया है। इनकी उपमा तारों की किरण आदि से दी जाती है। पलकों को कवियों ने काम के तराजू के पल्ले, लज्जा के कपाट, रस-कूप के पिधान और प्रियतम का रूप-रस पीने के लिए आँखों के अधर कहा है। कहते हैं कि कटाक्ष से युवकों का हृदय विदीर्ण हो जाता है लेकिन खून नहीं निकलता। इसकी उपमा मधुकर परंपरा और यमुना की तरङ्गमाला से दी जाती है। आँखों का रंग श्वेत भी हो, श्याम भी हो, अरुण भी हो मेघ-विहीन गगन की तरह। वे स्निग्ध हों, बड़ी-बड़ी हों, उनके कानों की ओर के कोने पैने हों। उनमें मादकता लाली के डोरे हों, अतिचपल और अतिस्थिर के मध्य में हों और बरुणियाँ घंनी हों। महाकवि ने केले के फूलों से भी इनकी उपमा दी है। बड़ी, कजरारी और ढ़रारी आँखें अच्छी होती हैं लेकिन बैल की आँखों से इनकी उपमा नहीं दी जाती। भौंहों को वक्र-बल्ली (टेढ़ी लता), कामदेव के धनुष अथवा खड्ग के म्यान, और भौरों की पांखों के समान कहा गया है। भौहें अधिक मोटी न हों, उनका परस्पर मिलन लक्षित न होता हो और वे आँखों के कोनों को दूर से छूने का प्रयास सी करती हों।

तिलके कुसुम और सुग्गे की चोंच आदि नासिका के उपमान माने गये हैं। इसे सुगंधित श्वांस की गुफा और कामदेव का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



तरकस भी कवि कहते हैं। श्रीहर्ष ने इसे कामदेव की दुनाली भी कहा है। आभूषण पहनने के लिए नांक में जो छेद किया होता है उसे कवियों ने शोभा सदन का मनोहर वातायन अथवा काम वाण में मनोहर छिद्र भी कहा है। उन्हें नाक में लटकती हुई नथ मन्मथ की फाँसी के तरह मालुम पड़ी है। नाक के मोती की उपमा सुधाविन्दु, मकरन्द, मनमतङ्ग के दीपक और आनन्दकन्द फल आदि से दी जाती है। नाक लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई में उचित हो। उसके दोनों पुट एकतार हों। श्रवणों की उपमा कनक के कटोरे अथवा सीप से दी जाती है। उन्हें मन का मीत अथवा मन्त्री, सुधाके दोने, नयनसचिव, लज्जा के नेत्र, मौन सर्वज्ञ, श्रुतियों के कूप, छवि के कमल और ज्ञान के विवर आदि कहा जाता है। कर्णफूल की उपमा चंचल चक्र, मध्याह्न के सूर्य और सुमन आदि से दी जाती है। किसी कवि ने उन्हें मुखचन्द्र के झाँझ भी कह दिया है। कर्णालंकार की उपमा आकाशदीप, मीन, पताका, तोतरी और पीपल के पत्तों से दी जाती है।

चन्द्र, दर्पण और कमल से मुख-मण्डल की उपमा दी जाती है। गुलाब की पंखुड़ियां नवनीत के गोले और ताजे मधूक (महुआ) पुष्प आदि कपोलों के उपमान कहे गये हैं। उनमें कञ्जों की कोमलता हो, गुलाब की गुलाबी हो, चन्द्र का प्रकाश हो और कंचन का वर्ण हो।

"यों उजराई, पिराई, ललाई मलाईहु के न मुलायमी है तनु।
लोने सलोने से सोने से शोभित होने न ऐसे विधातहुं के धनु॥"

कहते हैं कि प्रत्यूषकालिक प्राची के क्षितिज में जो उषा की आभा होती है, कपोलों में वैसी अरुणिमा हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



'नासिका उचित, जिसके कपोल
कुछ खिंचे गुलाबी गोल-गोल
वे उषा सुन्दरी को देते क्या
रोज अरुणिमा तोल—तोल ?"

कपोलों के तिल की उपमा राहु के दाँत, चन्द्र के स्थान में शनि और नीलकमल आदि से दी जाती है। उसे विधाता की मसी का विन्दु भी कहा जाता है। कवियों ने कपोलों के गड्ढे को देखकर अनुमान किया है कि यह कामदेव के तालाब की भँवर है, अथवा हास्यरस का कूप है। आश्चर्य है कि रसिकों के हृदय में गड्ढे भी गड़ जाते हैं। 'कपोल की गाड़ हिये गड़ि जात है।' उन्होंने कपोलों पर पड़ी हुई शीतला की दाग को शोभा के बोये हुए बीज, रूपसागर में झलकते हुए झाग आदि कहकर उनकी प्रशंसा ही की है। किसी-किसी ने उन्हें 'सौत का सोहाग' भी कहा है।

अधरों की उपमा बिम्ब, पल्लव, प्रवाल और बंधूक पुष्प से दी जाती है। इनके अतिरिक्त जितने भी पदार्थ, मीठे हो सकते हैं उन सब को इनका उपमान माना गया है। यही अमृत का कल्पित निवास भी है। रसिक बिहारी को अधरों सी मिठाई न ऊँख में, न मधूक्ष में, न पीयूष में, न मिश्री में, न मक्खन में, न द्राक्षा में, कहीं भी नहीं मिल सकी। श्वेतारुण और पतले से पतले ओठ शुभ और शोभन कहे गये हैं। ओठों की लाली की उपमा भोर की संध्या, तामरस, अनुराग और अङ्गराग आदि से दी जाती है।

कुन्दकली, दाड़िमवीज, मणि-माणिक्य, मुक्ता, हीरा, और तारें दाँतों के उपमान समझे जाते हैं। कवियों ने इन्हें मानसरोवर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



के सीकर, सुधा के समुद्र में छिपे हुए नक्षत्र और मङ्गल के बालक आदि कहा है। बत्तिस दाँतों का होना मंगलमय भी है।

जिह्वा की उपमा अंचल और दोला से दी जाती है। इसे मन की सचौटी और रस की कसौटी कहते हैं। जिह्वा का गौरव वाणी से ही है। वाणी स्पष्ट और मधुर होनी चाहिये। जो वाणी स्पष्ट न हो उसकी गणना कल-कल में है। मनुष्य के वाणी की स्पष्टता का ही महत्व है। इसके माधुर्य का वर्णन करते हुए किसी ने कहा है कि 'ऊँख पियूख महूख की भूख मिटै बतियाँ बतियाँ सुनि मीठी' वाणी की उपमा वेणु, वीणा, कोकिल-हंसादि के कूजन, मधुर पदार्थ और किन्नर के गान आदि से दी जाती है।

स्मित और मृदुहास्य के उपमान अमृत के प्रकाश, मृगतृष्णा, चपला की चमक, अमृत के फेन और कैरव आदि कहे गये हैं। इन्हें मोहमहिमा, प्रेम और मोहिनी, चित्त की फाँसी, और रतिराज की फुलझरी आदि उपाधियाँ मिली हैं।

कवि की नायिकाओं के मुख में अपूर्व सुगन्धि अवश्य होती है।

अगर तगर के नगर में कहूँ रही नहिं चाह।
बगर-बगर सब डगर में तुव मुखवास प्रवाह॥

इसकी उपमा पद्म अथवा केतकी के मधु से दी जाती है। इसे काम की सञ्जीवनीबूटी आदि कहा गया है।

चिवुक को विधाता के कौशल का प्रतीक, शोभा की चौकी, कनक-कमल का संपुट आदि कहा जाता है। चिवुक में उल्लिखित बिन्दु के प्रायः वे ही उपमान माने गये हैं जो, कपोलतिल के हैं।

ग्रीवा ( कण्ठ ) की उपमा अधिकतर शंख और कपोतकण्ठ से दी जाती है। कोई-कोई इसे कनककमल के नाल के समान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



भी कहते हैं। ठेठ भाषा में सुराहीदार गर्दन की प्रतिष्ठा है। ग्रीवा पतली और लम्बी होते हुए भी मांसल होनी चाहिये जिसमें तीन रेखाऐं पड़ी हों।

विद्युद्वल्ली, कंचनलता और मृणालादि भुजाओं के उपमान माने गये हैं। गोरे मणिबंध से ऊपर के प्रदेश में शोभित काली-काली चूड़ियों को सोनजुही की माला में लिपटी हुई अलिपंक्ति के समान कहा गया है। विद्रुम, नवपल्लव और कमल की पंखुड़ी आदि से करतल की उपमा दी जाती है। हथेली न बहुत ऊँची हो न बहुत नीची। सरल रेखाओं और स्वाभाविक अथवा कृत्रिम लालिमा से मण्डित हथेली को कमलके दलों में उल्लिखित पंच-सर का प्रबंध कहा गया है। अंगुलियों की कोमलता और कृशता सराहनीय होती है। उनमें चक्रचिन्ह अत्यन्तशुभलक्षण माने गये हैं। कल्पतरु की मञ्जरी, चंपाकली और मूँगे की टहनी आदि इनके उपमान कहे गये हैं। किसी-किसी ने इन्हें वशीकरण बीज के अंकुर भी कहा है। करनखों की उपमा चन्द्रकला, कुन्दकली, रत्न, तारे और अनुरूप कुसुम आदि से दी जाती है। उनकी सहज लालिमा के साथ कृत्रिम का भी प्रयोग हो तो लाल कुरविन्द, इन्द्र-वधू और विद्रुम आदि उपमान होंगे।

वक्षस्थल को यौवन का तम्बू कहा गया है। संस्कृत के कवियों ने प्रायः पीनोन्नत पयोधरों की प्रशंसा की है। हिन्दी के प्राचीन कवियों ने गोरे, गाढ़े और ठाढ़े उरोजों की सराहना करते हुए उन्हें 'तरुणाई के फल' कहा है। सामान्यतः इनकी दृढ़ता, विस्तार औन्नत्य, पाण्डुता और अग्रश्यामभाव को ही आकर्षक कहा गया है। इनकी उपमा करिकुंभ (ऊँचाई और कठोरता मात्र को ध्यान में रख कर) कमलकोरक, बेल, पुष्पस्तवक, कनककुंभ, पहाड़, शिव, चक्रवाक, गुम्बज, पूगीफल (सोपाड़ी) ताल,



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सौवीर, जंवीर, वीजपूर, आदि से दी जाती है। ठेठ भाषा में नारंगी भी इनके उपमान हैं। एक कवि ने तो इनकी ऊँचाई का यहाँ तक वर्णन किया है कि—

'आते, टकराते, हो जाते रथ न मनोरथ कितने चूर।' कोई-कोई इन्हें काम के कनकछत्र भी कहते हैं। महाकवि ने कुरवक के फूल से भी इनकी उपमा दी है। इनके अग्रभाग के साधारण श्यामभाव कवियों के कौतुक के विषय हो चुके हैं। कहते हैं कि इनके नोक कामियों के कलेजे में चुभते-चुभते उसी रक्त से कृष्ण-मुख (श्माम) हो जाते हैं। और इसी प्रकार अनेकानेक उत्प्रेक्षाएँ की गयी है। इनके संधिस्थली को सुमेरु पर्वत के मध्य स्वर्गका रास्ता, अथवा कामदेव की गली आदि कहा गया है। इनके अतिरिक्त कुच पर पड़े हुए तिल, नख के सूखे घाव (नखक्षत) और कंचुकी आदि का वर्णन करने में प्राचीन कवियों ने बड़ी तत्परता दिखायी है।

उदर की उपमा मानसरोवर और पीपल के पत्ते आदि से दी जाती है। उसे मदन की क्रीड़ास्थली कहा गया है। वहाँ के मांसविस्तार में तीन रेखाएँ होनी चाहिये। उन्हें 'त्रिवली कहते हैं। नदी की छोटी लहरें, सोन की सीढ़ियां और कामचक्र की लीक आदि उसके उपमान माने गये हैं।

प्राचीन कवि उदर और त्रिवली का वर्णन करते समय तद्-गत रोमराजियों को कभी नहीं भूले हैं। उनकी उपमा साधा-

---

*१—एक कवि ने कहा है कि केवल एक वली ही संसार पर अधिकार कर लेता है। जहाँ तीन वली इकट्ठे हों वहाँ क्या होगा? "एक वली सबही को बस करि राखत है त्रिवली करै वश अचरज कौन है?"*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



रणतया चीटियों की पंक्ति, तम, और धूम से दी जाती है। रोम-राजियों का सौन्दर्य इसी में है कि वे नाभि देश में घुसी हों। महाकवि ने नाभि की उपमा 'आवर्त' (भँवरी) से दी है। रसातल, ह्रद, कूप, नद आदि भी इसके उपमान माने गये हैं। नाभि को शृंगार की गुफा, छवि की भँवर, रसका कुण्ड, रूपकी बाँबी, कामदेव की मथनी और विधाता की दावात आदि कहा गया है।

पीठ की उपमा कनकपत्र और कदलीदल आदि से दी जाती है। कंधे से चौड़ी और कमर तक पतली पीठ अच्छी होती है। इसे यौवन मन्दिर की ढालुई भीत कहा जाता है।

प्राचीन कवियों को कटि, वक्षस्थल और नितम्ब को मनोहर महानता में खोई सो जान पड़ी है। इसीलिए उन्होंने कभी-कभी शून्य और कल्पित आधार भी कह दिया है।

'जैसे भूमि अम्बर के मध्य में न खंभ कोऊ तैसे लाल लोचनी के अंक में न लंक है।'

'देह मध्य यों जानिये ज्यों रसना में बैन।'

बार, सेवार, मृणाल के तार, मुट्ठी, सूई की नोक, अणु, वेदी और सिंह की कमर आदि इसके उपमान कहे गये हैं। श्रीहर्ष आदि कवियों ने इसे मुष्टिग्राह्या (मुट्ठी में समा जाने वाली) कहा है। कटि में पड़ी हुई और नाभि-प्रदेश को चूमती हुई किंकिणी (करधनी) को रूप के रस से भरी हुई नाभि के कूप पर रहट आदि कहा गया है। कटि में नीवी या घाघरे की गाँठ लोगों को भोर के गुलाब की अधखुली कली के समान मालुम पड़ी है।

नितम्ब की उपमा चक्रवाक, द्वीप, पृथ्वी, पहाड़, प्रस्तर, पीढ़ा और चक्र आदि से दी गयी है। नितम्ब विस्तीर्ण और मांसल हों। इन्हें कामदेव के उलटे हुए नगाड़े और जंघरूपी कदली के रसमय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



आलवाल ( थाला ) आदि भी कहा गया है। कदली के उलटे हुए खंभे, हाथी के सूड़ और [1]करभ आदि जंघों के उपमान माने जाते हैं। जंघों का रोम रहित होना शुभ लक्षण है। अश्वत्थपत्र और कमठ पृष्ठ आदि गुह्य देश के उपमान कहे गये हैं। [2]पार्ष्णी की उपमा दीप-शिखा से दी जाती है। रेशम की गाँठ आदि से गुल्फों को उपमित किया गया है।

स्निग्ध, कोमल, साधारण छोटे और आगे की ओर पतले चरण हो।

चरण-कमल का रूपक रूढ़ है। पल्लव और स्थलपद्मों से भी चरणों की उपमा दी जाती है। अँगुली न अधिक लम्बी हो न छोटी। वे परस्पर सटी हों और पतली हों। इनकी उपमा चंपा-कली से दी जाती है। प्रवाल को अँगूठे के नख का उपमान माना गया है। और नखों की उपमा रवि, शशि, तारे और फूल से जाती है। दुपहरिया के फूल, ईंगुर, मूँगा और कौहर के फल आदि एँड़ी के उपमान कहे गये हैं। कोमलता को ध्यान में रखते हुए साधारणतः पगतल की उपमा चन्दन के किसलय तथा कमल गुलाब की पखुड़ियों से दी जाती है। इनकी कोमलता में अति-शयोक्ति बड़ी भली मलूम पड़ती है।

"कोमल कमल के, गुलाबन के दल के सुजात गड़ि पायन बिछौना मखमल के।"

"तुव पगतलमृदुता चितै कवि वर्णत सकुचाहिं।
मनते आवत जीभ लौं मति छाले पड़ि जाहिं॥"

---

१ 'मणिवंधादाकनिष्ठं करस्य करभो वहिः।'—अमरकोष। कानी अंगुली की ओर हथेली के समूचे बाहरी हिस्से को करभ कहते हैं।

२ पादपश्चात् भाग।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



चरणों में लगे जावक की उपमा प्रातःकाल की प्राची, रजोगुण और रंगभूमि आदि से दी जाती है। पगतल की लालिमा के वर्णन में भी अतिरञ्जनाएँ हुई हैं।

"अरुण सरोरुह से चरण अंगुरी अति सुकुमार।
चुवत सुरंग-रंग सी मनो चपि बिछियन के भार॥"

"पांव धरे अलि, ओर जहाँ तिहि ओरतें रंगकी धार सी धावति।"

पदलालिमा की उपमा अरुण, किरण, प्रवाल, लाल, ईंगुर, कमल, गुलाब, वंधूक विद्रुम, बिम्ब और मञ्जिष्ठ आदि से दी जाती है। सारस और हंस आदि के मधुरकूजन नूपुर आदि पादभूषण की मधुर रुन-झुन के उपमान माने जाते हैं। स्त्रियों की गति का सौन्दर्य धीरता में माना गया है। इसलिए उसकी उपमा राजहंस, कलहंस, और हाथी आदि के मन्द गमन से दी जाती हैं।

समष्टि में सपूर्ण शरीर की उपमा दीपशिखा, कनकयष्टि, चपला, चन्द्रकला और औषधिलता आदि से दी जाती है। कंचन, केसर, केतकी, चम्पक और गोरोचन आदि कान्ति के उपमान माने जाते हैं। अङ्गवसन को लज्जा और शृंगार की मर्यादा, शरीर और माया का भाव सौन्दर्य का सौभाग्य आदि कहा गया है। कवि की नायिकाओं के अंग-अंग में सुवास की चहल-पहल होती है।

"लाड़िली के हासतें रु अंग की सुवासतें
सुह्वै रह्यो सुवासित अवास आस-पास तें।"

स्त्रियों के [1]शृंगार की संख्या सोरह मानी गयी है।

---

*१—पुंसः स्त्रियां स्त्रियाः पुंसि संभोगंप्रति या स्पृहा।*
*स शृङ्गार इति ख्यातः क्रीड़ा इत्यादि कारकः॥*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



शुचिता शील सनेह गति चितवन बोलन हांसि।
कच गूँथन श्रीवन्त शुभ भाल तिलक सुखरासि॥
भाल तिलक सुख रासि दृगन अञ्जन अती सोहे।
बीरी बदन सुदेश चिबुक मसकत मन मोहे॥
या विधि मिंहदी अंगराग भगवत मन रुचिता।
ये सोरह शृंगार मुख्य तामे वर शुचिता॥

इसी प्रकार उनके आभूषणों की संख्या बारह निर्धारित की गयी है। यह संख्या निर्धारण सिर, ललाट, नासिका कर्ण, ग्रीवा, कटि, वक्षस्थल, वाहु, वाहुमूल, पाणि, अँगुली, और चरण प्रभृति वारह अलंकार्य अङ्गों के आधार पर ही किया गया है।

नूपुर, विछिया, किंकिणी, नीवीबंधन सोय।
कर मुँदरी, कंकण, वलय, वाजुवंद भुज दोय॥
वाजुवन्द भुज दोय कण्ठ श्री दुलरी राजे।
नासा वेसर सुभग श्रवण ताटंक विराजै॥
भगवत वेंदी भाल मांग मोती गुह ऊपर।
द्वादश भूषण अंग नित्य प्यारी पग नूपुर॥

संक्षेप में स्त्री के अवयवों के आल्हादक सौन्दर्य, मृदुता, कृशता, अति कोमलता, कान्ति, उज्जवलता आदि गुणों को ध्यान में रखते हुए उनके उपमानों की कल्पना करनी चाहिये।

पुरुषों की पुष्टता और सौंदर्य की अपेक्षा करती हुई पीनता, उच्चता, दीर्घ और उदग्र बाहुता, विशाल वक्षस्थल विपुल अंश, तनुवृत्त मध्य, उन्नत चरण, अवयवों की कर्कशता से अनुप्राणित कोमलता, उनका शुभ लक्षणों से अंकित होना, और प्रताप आदि का वर्णन करना चाहिये। उनके नाम के उत्तरपद में सिंह, शार्दूल व्याघ्र, ऋषभ, कुञ्जर, आदि श्रेष्ठार्थ वाचक उपाधियों के प्रयोग करने का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



नियम है। इन उपाधियों को यदि ध्यान में रखा जाय तो उपमानों की कल्पना करने में बड़ी सहायता होगी।

नायक के भुजदण्ड की उपमा, युग, अर्गल, भुजंग, इन्द्रदण्ड, और इभहस्त आदि से दी जाती है। वाहु की विशालता की सीमा जानु देश तक कही गयी है। वक्षस्थल के उपमान कपाट और शिलापट्ट आदि माने जाते हैं। नायिका के वक्ष के समान नायक का भी उरस्थल स्वच्छ होना चाहिये। स्कंध की उपमा वृष से दी जाती है। अरविन्द आदि के उपमानों की अपेक्षा करते हुए भी चरणों की उपमा कभी-कभी कूर्म से दी जाती है। गमन की उपमा सिंह या हाथी की चाल से दी जाती है।

विशेषतया नायक के अङ्गों के कान्तिप्रयोजक उपमान वे ही माने गये हैं जो नायिकाओं के। जैसे चन्द्रानन, मृगलोचन आदि-आदि। ध्यान देने की बात केवल यही है कि नायिका की सुकुमारता के पक्ष में आह्लादकत्व गुण की ही अपेक्षा होती है और नायक के पक्ष में प्रताप की भी। सूर्य, अग्नि, वज्र आदि प्रताप के और चन्द्र आदि कीर्ति के उपमान कहे गये हैं।

राजाओं के वर्णन में हाथ में पद्म अथवा उर्ध्व रेखा आदि के शुभ चिन्ह और चरणों में छत्र, ध्वजा आदि के लक्षणों का विशेषाभिधान होता है। रसिक बिहारी ने श्री रामचन्द्र के दक्षिण चरण का वर्णन करते हुए लिखा है—

स्वस्ति, त्रिकोण, वाण, कल्पतरु, कञ्ज, चक्र,
वज्र, छत्र, चौंर रथ, अष्टदल उर्ध्व रेष।
सिंहासन अंकुश मुकट हल मुशल,
श्री वसु अहिदंड ध्वजानर जव माला लेष॥
'रसिक बिहारी' रेष ऊरध के वाम सोहैं,
एक बीसता के दिशि दच्छि सुहै विशेष।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



ये हैं बीस चारि चिन्ह दच्छिण चरण चारु,
राजैं रामचन्द्र के मैं मुदित भयो है देश॥

लिङ्ग-वचन के अनुसार इव, तुल्य, लौं, सदृश, सम, ज्यों, जैसे अथवा कैसे—जैसे, जिमि, समान, इमि, प्रतिमान, प्रतिविम्ब प्रतिमा, प्रतियातना, प्रतिच्छाया, प्रतिकृति आदि वाचकों द्वारा उपमा की स्थापना की जाती है। जिस शब्द के द्वारा उपमेय और उपमान की समानता प्रदर्शित की जाती है, उसे वाचक कहते हैं। 'उप' का अर्थ होता है समीप और 'मा' का अर्थ है संतुलन। उपमा के द्वारा दो पदार्थों का एकत्र संतुलन किया जाता है। उपमा के चार अंग होते हैं, उपमेय, उपमान, साधारण धर्म और वाचक। जिस पदार्थ का वर्णन किया जाता है उसे उपमेय, जिस पदार्थ से समता दी जाती है उसे उपमान, उभय-गत जिन विशेषताओं के कारण संतुलन का कार्य किया जाता है उसे साधारण धर्म कहते हैं। वाचक ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है। जिस उपमा में ये चारो अंग स्पष्ट लक्षित होते हैं वहाँ पूर्णोपमा होती है। जहाँ इनमें से कोई एक, दो अथवा तीन नहीं वर्तमान रहते वहाँ लुप्तोपमा होती है। यदि वाचक नहीं है तो वाचक लुप्ता उपमा होगी, यदि साधारण धर्म नहीं है तो धर्म-लुप्तोपमा होगी, यदि उपमान नहीं है तो उपमानलुप्तोपमा होगी, यदि धर्म और वाचक दोनों नहीं हैं तो धर्मवाचकलुप्तोपमा होगी, यदि धर्म और उपमान नहीं हैं तो धर्मोपमानलुप्तोपमा होगी, यदि वाचक और उपमान नहीं हैं तो वाचकोपमान लुप्तोपमा होगी, यदि वाचक और उपमेय नहीं हैं तो वाचकोपमेयलुप्तोपमा होगी, धर्म वाचक और उपमान नहीं हैं तो धर्मवाचकोपमान-लुप्तोपमा होगी।

कविगण उपमेय और उपमान में अभेद दिखाकर उपमा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



देते हैं और भेद दिखाकर भी। उपमान को उपमेय के गूढ़ अथवा अगूढ़ साधारण धर्म का बन्धु, मित्र, सगोत्र, वयस्य, भृत्य, दास, चोर और शत्रु आदि बनाकर भी उपमाएँ दी जाती हैं। कुशल कवि उपमान के न्यक्कार से उपमा में अत्यन्त चमत्कार उत्पन्न कर देते हैं। न्यक्कार के अन्तर्गत तिरस्कार, आक्षेप, भर्त्सना, आक्रोश, कदर्थना, निन्दा, विडम्बना, हँसी उड़ाना, तुच्छ समझना और असूया आदि सभी आते हैं।

राम, रावरे बदन की, सरवरि करत मयंक।
ते कविजन झूठे जगत, लखि मलीन सकलंक॥

यहाँ 'राम-बदन' उपमेय है और 'मयंक' उपमान। उपमान उपमेय की समता करने के योग्य है ही नहीं।

गरब करत कत चाँदनी, हीरक छीर समान।
फैली इती समाजगत, कीरति-शिवा-खुमान॥

यहाँ आयुष्मान शिवाजी की कीर्ति उपमेय है और चाँदनी उपमान। उपमेय से उपमान का निरादर कराया गया है।

प्रभा-करन तम-गुन-हरन, धरन सहस कर राजु।
तब प्रताप ही जगत में, कहा भानु सो काजु॥

यहाँ 'प्रताप' उपमेय है और 'भानु' उपमान। उपमेय को इतना समर्थ बताया गया है कि उपमान की सत्ता ही व्यर्थ है।

चंपक-हरवा अग मिलि, अधिक सोहाय।
जानि परे सिय-हिय रे, जब कुम्हिलाय॥

यहाँ पर सीता जी का वक्ष देश उपमेय है और चम्पकहार उपमान। अत्यन्त सादृश्य के कारण उपमेय में उपमान का लोप दिखाते हुए भी उपमान का कुम्हलाना सूचित कर उसकी तुच्छता ही प्रगट की गयी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



इम्द्र निज हेरत फिरत गज इन्द्र अरु ,
इन्द्र को अनुज हेरैं दुगध नदीश को ।
'भूषन' भनत सुर सरिता को हंस हेरैं ,
विधि हेरैं हंस को, चकोर रजनीश को ॥
साहि तनै सरजा यौं करनी करी है तैं, जु ,
होत है अचंभो देव कोटियो तैतीस को ।
पावत न हेरे तेरे जस मैं हिराने निज ,
गिरि को गिरीश हेरैं गिरिजा गिरीश को ॥

यहाँ शिवाजी का धवल यश उपमेय है । ऐरावत, क्षीरसागर, सुर-सरिता, विधाता के हंस, चन्द्रमा, कैलासपति, ये सभी उपमान है। उपमेय की महिमा में उपमानों का समूह विलीन होकर संसार के लिए एक महान आश्चर्य का कारण हो गया है ।

सिय तुव अंग-रंग मिलि अधिक उदोत ।
हार-वेलि पहिरावडँ चम्पक होत ॥

यहाँ सीता जी उपमेय हैं और वेले का हार उपमान । उपमेय के अंग-संग से वेले का रंग पीला पड़ गया है ।

रामचन्द्र भूपाल-मणि, ज्वलित रावरो ओज ।
जीत्यो जब रवि को कहा, तब बड़वानल खोज ॥

यहाँ श्री रामचन्द्र उपमेय हैं । रवि और बड़वानल उपमान हैं । जब उपमेय के ओज से रवि ही पराजित होगया तब बेचारे बड़वानल की गणना ही क्या ? उपमानों की अतितुच्छता प्रगट होती है ।

तो मुख-छवि सौं हारि जग, भयौ कलंक समेत ।
सरद-इन्दु अरविन्दमुखि, अरविन्दन दुःख देत ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



यहाँ अरविन्दमुखी राधिका की मुख-छवि उपमेय है और इन्दु उपमान। उपमान उपमेय से पराजित होकर बेचारे अरविन्द समुदाय को कष्ट देकर अपने कोप का भार हलका करता है।

लई सुधा सब छीनि विधि, तुव मख रचिवे काज।
सो अब याही सोच सखि, छीनि होत द्विजराज॥

यहाँ राधिका का मुख उपमेय और द्विजराज उपमान है। उपमेय की विभूति से उपमान को जलन होती है और इसी से वह प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा है।

तेरो मुख अरु विधु धरे, दोऊ जगमग जोति।
पै यामे मित्रहिं लखे चटक चौगुनी होति॥

यहाँ मुख उपमेय है और विधु उपमान। उपमेय मुख तो मित्र को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होता है, लेकिन उपमान विधु मित्र अर्थात् सूर्य को देखकर मलिन हो जाता है। उपमेय उपमान से इस दिशा में बढ़-चढ़ कर है।

घटै-बढ़ै सकलंक लखि, जग सब कहे सशंक।
बाल-बदन सम है नहीं रंक मयंक इकंक॥

यहाँ बाल-वदन उपमेय है और मयंक उपमान। लेकिन उपमान मयक घटता-बढ़ता है, सकलंक है, इसलिए बाल-वदन की बराबरी नहीं कर सकता।

कमल कंटकित सजनी, कोमल पाइ।
निशि मलीन यह प्रफुलित नित दरसाइ॥

चरण उपमेय है और कमल उपमान। लेकिन उपमान कमल में काँटे होते हैं, रात में मलिन हो जाता है; वह उन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



चरणों को बराबरी कैसे कर सकता है जो अत्यन्त कोमल हैं और नित्य-प्रसन्न !

जहाँ कवि को उपमेय और उपमान में तनिक भी भेद दिखाना इष्ट नहीं रहता वहाँ वह उपमेय और उपमान को ज्यों का त्यों रख देता है। इसी को रूपक कहते हैं।

जीवन - पथ के दोनों तट
घेरे माया - पादप हैं।
जिनसे उत्पन्न हुए ये
सुख - दुख छाया - आतप हैं।

यहाँ जीवन उपमेय और पथ उपमान, माया उपमेय और पादप उपमान, सुख-दुःख उपमेय और छाया-आतप उपमान है। इनका तनिक भी भेद-कथन को इष्ट नहीं है।

उपमेय का निषेध करके भी उपमान का आरोप किया जाता है।

यह चपला चमकति नहीं डारि धनुष अरु बान।
विरहिन पर अति कोप करि, काढ़ी काम कृपान ॥

यहाँ चपला उपमेय है और काम–कृपान उपमान। उपमेय निषेध कर उपमान का आरोप किया गया है।

उपमेय और उपमान के विशेष सादृश्य की स्थापना के लिए कवि किसी भ्रमाक्रान्त का भी उदाहरण दे देते हैं।

कनक-कमल मुखमण्डलहिं नयन असित अरविन्द।
पुण्डरीक हासहिं समुझि, आवत दौरि अलिन्द ॥

भौरों को मुखमण्डल देख कर कनक-कमल का भ्रम होता हैं, नयन देखकर असित अरविन्द का भ्रम होता है, और हास्य को देखकर पुण्डरीक का भ्रम होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



उपमेय के आधार पर भिन्न-भिन्न उपमानों की संभावना की जाती है। इसी को आलंकारिक उत्प्रेक्षालंकार कहते हैं।

तम के विपिन में सरल पंथ सात्विक को,
कैधों नीलगिरि पर गङ्गाजू की धार है।
कैधों वनवारि बीच राजत रजत रेख,
कैधों चन्द्र कीनो अन्धकार को प्रहार है॥
नापति सिङ्गार भूमि डोरी हास रस कैधों,
वलभद्र कीरति की लीक सुकुमार है।
पय की है सार घनसार की असार मांग,
अमी कैसी आपगा उपाई करतार है।

यहाँ उपमेय है किसी सुन्दरी की 'मांग।' इसी के आधार पर 'तम के विपिन में सतोगुण का सरल पंथ' आदि उपमानों की संभावनाएँ की गयी हैं।

राम दूरि माया बढ़ति, घटति जानि मन माँह।
भूरि होति रवि दूरि लखि, सिर पर पग तर छाँह॥

यहाँ पूर्वार्ध वाक्य में 'राम' उपमेय और उसके धर्मों का कथन किया गया है। उत्तरार्ध वाक्य में 'सूर्य' उपमान और उसके धर्मों का दृष्टान्त देकर उपमेय के सर्वाङ्ग को समर्थन द्वारा पुष्ट किया गया है। मन से राम जितने ही दूर होते जाते हैं माया उतनी ही बढ़ती है और जितना ही समीप रहते हैं माया उतनी ही घटती है। सूर्य जितने ही दूर रहते हैं छाया उतनी ही अधिक होती है और वे जितना ही सिर पर आते हैं उसी क्रम से वह पैरों के नीचे होती जाती है। उपमेय और उपमानगत वाक्यों में विम्ब-प्रतिविम्बभाव है।

जहाँ किसी भी उपमान में उपमेय की समता करने की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सामर्थ्य नहीं दिखायी पड़ती वहाँ उपमेय को ही उपमान बना देते हैं। जैसे—

"राम से राम सिया सी सिया सिरमौर विरंचि विचारि सँवारे"

ऐसी उपमा देना जिससे उपमेय की अपेक्षा उपमान की अनुचित न्यूनता प्रगट हो, दोष है; वह न्यूनता चाहे जातिगत हो या प्रमाणगत हो अथवा धर्मगत हो।

"मयंक कसाई लौं मारन को मोहिं
आजु जुन्हाई को लेत जम्हाई।"

कोई वियोगिनी चन्द्रोदय में दुःखित होकर कहती है—मयंक रूपी कसाई मुझ विरहिणी अबला का वध करने के लिए आज आया है और क्रूर ज्योत्स्ना के बहाने जम्हाई ले रहा है। मयंक उपमेय है और कसाई उपमान। उपमान की यह जातिगत न्यूनता उचित नहीं है। इसलिए यह दोष है।

'दीप सरिस दीपत जगत यह प्रभात को भानु।'

प्रातःकालीन सूर्य प्राची के क्षितिज पर जलते हुए एक दीपक के समान है। भानु उपमेय है और दीप उपमान। लेकिन कहाँ सूर्य का प्रकाश और कहाँ एक अकिंचन दीपक का। उपमान की यह प्रमाणगत न्यूनता अनुचित है। इसलिए यह दोष है।

कृष्ण अजिन पट लसत मुनि शुचि मौञ्जीयुत गात।
नील मेघ के निकट जिमि नभ दिनमणि विलसात॥

काली मृगछाला लपेटे और मौञ्जी धारण किये हुए मुनि ऐसे सुशोभित थे जैसे आकाश में नीलमेघ के पास सूर्य। 'मुनि' उपमेय हैं और 'दिनमणि' उपमान। उपमेय 'मुनि' के दो साधारण धर्मों का कथन किया गया है; एकतो 'कृष्ण अजिन पट लसत मुनि' और दूसरा 'शुचिमौञ्जीयुत गात।' लेकिन उपमान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



'दिनमणि' के केवल एक साधारण धर्म का कथन किया गया है ; 'नील मेघ के निकट।' उपमेय में जो द्वितीय साधारण धर्म 'मौञ्जीयुत गात' है उपमान में उसकी समकक्षा का कोई धर्म नहीं कहा गया है। मौञ्जी के समान 'दिनमणि' के पक्ष में भी विद्युल्लता अथवा और कुछ कह देना चाहता था। यहाँ उपमेय की अपेक्षा उपमान में धर्मगत न्यूनता है। यह दोष है।

उपमेय की अपेक्षा उपमान की अधिकता का कथन भी दोष है। वह अधिकता चाहे जातिगत हो, या प्रमाणगत हो अथवा धर्मगत।

कमलासन आसीन यह, चक्रवाक विलसाहिं।
चतुरानन युग आदि में, प्रजा रचन जिमि आहिं॥

कमल के आसन पर यह चक्रवाक पक्षी ऐसा सुशोभित है जैसे युग के प्रारभ में विश्व का निर्माण करते हुए कमलासन पर विधाता। चक्रवाक पक्षी उपमेय और चतुरानन उपमान। कहाँ पक्षी जातिका चक्रवाक और कहाँ देव जाति के चतुरानन। यहाँ उपमेय की अपेक्षा उपमान की यह जातिगत अधिकता अवांछनीय है।

अहो, नितम्बिनि के नितम्ब वर-
पर घर्षित कच छूट रहे।
वसनहीन वक्षस्थल पर कुच
ज्यों सुमेरु के कूट रहे॥

कनकवर्ण वसनविहीन वक्षस्थल पर 'कुच' उपमेय है और कनकगिरि सुमेरु के 'कूट' उपमान। कहाँ कुच और कहाँ कूट! उपमेय की अपेक्षा उपमान की ऐसी प्रमाणगत अधिकता से उपमान की ऐसी प्रमाणगत अधिकता से उपमा ही अनुचित हो गयी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



लसत पीतपट चाप कर, मनहरवपु घनश्याम।
तड़ित इन्द्रधनु शशि सहित, ज्यों निशि में घनश्याम॥

पीताम्बर पहने हुए और हाथ में धनुष लिए मनोहर श्रीकृष्ण ऐसे सुशोभित हैं जैसे विजली, इन्द्रधनुष और चन्द्रमा सहित रात्रि में नील मेघ। उपमेय श्रीकृष्ण हैं और उपमान नीलमेघ। श्रीकृष्ण पीताम्बर पहने हैं तो नीलमेघ विजली से युक्त हैं। श्री कृष्ण के हाथ में धनुष है तो नीलमेघ के पास इन्द्रधनुष है। लेकिन नीलमेघ चन्द्रसहित हैं ; इसकी प्रयोगिता में श्रीकृष्ण के पास शंख अथवा और कुछ होने का उल्लेख नहीं किया गया है। उपमान की यह धर्मगत अधिकता दोष है।

उपमेय और उपमान के लिङ्ग और वचन में भेद होना भी दोष है।

'चरित चाँद की चाँदनी, बातें जैसे दाख'

जिसका उज्वल चरित्र चाँदनी के समान और बातें दाख की तरह हैं। उपमेय 'चरित्र' है जिसका उपमान 'चाँदनी' है। उपमेय पुल्लिङ्ग है और उपमान स्त्रीलिंग। 'बातें' उयमेय हैं और 'दाख' उपमान। उपमेय वहुवचन है और उपमान एकवचन। पुल्लिंग का स्त्रीलिंग के साथ तथा बहुवचन का एकवचन के साथ अन्वय करना उपमा में दोष है।

उपमेय और उपमान के कालभेद भी उपमा का कलंक होता है।

नील वदन के गौरमुख
कैसा शोभित था सुन्दर ?
श्वेत सुधाकर के समीप
घनश्यामल मानों अम्बर पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



घनश्याम राम और चन्द्रमुखी सीता एकत्र विराजती थीं। ऐसा मालूम पड़ता था मानो गौर चन्द्रमा के पास मेघ सुशोभित है। पूर्वार्ध उपमेय वाक्य है जिसकी क्रिया भूतकाल की है। उत्तरार्ध उपमान वाक्य है जिसकी क्रिया वर्तमानकाल की है। उपमेय और उपमान में इस प्रकार कालभेद है। इसी प्रकार उपमेय और उपमान के पुरुष भेद से भी उपमा का सौन्दर्य जाता रहता है।

जहाँ उपमेय और उपमान की परस्पर विधि न मिलती हो वहां विधि दोष होता है।

तिय ! तव तनु तन सम विमल।
हरत ताप विधु तापहर॥

हे सुन्दरी, तापहरण करनेवाला चन्द्रमा तुम्हारी विमल और कृश शरीर की तरह तापहरण कर रहा है। उपमेय चन्द्रमा है और उपमान सुन्दरी। दोनों के तापहरण साधारण धर्मों में समानता दिखायी गयी है। लेकिन चन्द्रमा स्वयं तापहरण है। सुन्दरी में तो तापहरण गुण का आरोप विमलता और कृशता के द्वारा किया गया है। अतएव उपमेय-उपमान की यह विधि विशेषणों द्वारा ही असङ्गत हो गयी है।

उपमा में अप्रसिद्ध उपमान का कथन करना दोष है क्योंकि उससे काव्य के प्रति अरुचि होती है और उपमान बलपूर्वक लादा हुआ सा मालूम पड़ता है।

वेनी परी पग ऊपर पाछे ते
ब्रह्म यहै उपमा उर आई।
लोक त्रिलोक के जीतिबे कारन
सोने की कांम कमान चढ़ाई॥



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



बाला खड़ी होकर अँगड़ाई लेने लगी। उसकी लम्बी वेणी पाँवों तक लटकने लगी। ऐसा प्रतीत हुआ मानो त्रिलोक को जीतने के लिए कामदेव ने सोने की कमान चढ़ाई है। वेणी उपमेय है और काम की सोने की कमान उपमान। संसार जानता है कि कामदेव के धनुष और बाण सभी कुछ फूलों के हैं। यह उपमान प्रसंगवश भले ही उपयुक्त हो किन्तु है अप्रसिद्ध।

कोई-कोई कवि ऐसी उपमा देते हैं जो एकदम असंभव मालूम पड़ती है। इसकी भी गणना दोष में है।

> भिड़ि-भिड़ि चमकि-चमकि उठै करवाल।
> कारे घन घुमड़ि अंगारे बरसत हैं॥

युद्धभूमि में दोनों दलों की तलवारें आपस में भिड़ती हैं तब उनमें से चिनगारियाँ निकलने लगती हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि बादल आकाश में घुमड़-घुमड़ कर अंगारे बरसा रहे हों। भला पानी बरसाने वाले बादल अंगारे बरसा सकते हैं!

—❀—❀—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# कवि-शिक्षा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

* क्षेमेन्द्र ने अपने 'कवि-कण्ठाभरण' में कवि-शिक्षा की पांच कक्षाओं का प्रतिपादन किया है। [ १ ] 'अकवेः कवित्वप्राप्ति' [ २ ] 'शिक्षाप्राप्तगिरः कवेः' [ ३ ] 'चमत्कृतिश्च शिक्षाप्राप्तौ' [ ४ ] 'गुणदोषोद्गत [ ५ ] 'परिचय प्राप्ति' 'अकवेः कवित्वप्राप्तिः' का अर्थ है, वीज रूप में वर्तमान काव्यशक्ति को अंकुरित करना। 'शिक्षाप्राप्तगिरः कवेः' का आशय है, नवोदित सुकुमार काव्यशक्ति

---

* क्षेमेन्द्र प्रकाशेन्दु के पुत्र और सिन्धु के पौत्र थे। इनका दूसरा नाम व्यास दास भी था। इनके साहित्यिक शिक्षक अभिनव-गुप्ताचार्य थे। ये काश्मीर के अनन्तराज के सभापण्डित थे। अनन्तराज का राज्यकाल सन् १०२८–१०८० ई० माना जाता है। इसलिए क्षेमेन्द्र का समय लगभग सन् १०५० ई० समझना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



को प्रौढ़ करना। 'चमत्कृतिश्च शिक्षाप्राप्तौ' का मतलब है, शिक्षित हो जाने पर कविता में चमत्कार लाने का प्रयत्न करना। इतना हो जाने पर काव्य के गुण और दोषों का सम्यक् परिज्ञान और शास्त्रों का परिचय भी अत्यन्त आवश्यक है। इन्हीं को क्षेमेन्द्र ने 'गुणदोषोद्गति' और 'परिचयप्राप्ति' कहा है।

पहले कहा जा चुका है कि कवि अन्नमय और प्राणमय आदि कोषों में यद्यपि हमारे ही समान होते हैं फिर भी उनके ज्ञानमय और आनन्दमय कोष हमारी अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत और गंभीर होते हैं। उनमें कोई एक ऐसी शक्ति होती है जिसके द्वारा वे हमसे कहीं अधिक अनुभव करते हैं और सविशेष सफलता पूर्वक अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करते हैं। इसी शक्ति के बल पर वे इतना देख पाते हैं, सुनते हैं, समझते हैं कि उनकी तुलना में हम अन्धे और बहरे से मालूम पड़ते हैं। उनकी वंशी के स्वरों में ऐसी शक्ति रहती है जिससे हमें उनके पीछे-पीछे जाना ही पड़ता है; चाहे आग हो या पानी।

नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा॥

—अग्निपुराण

बड़े पुण्य से मनुष्य-योनि ही मिलती है। मनुष्यत्व प्राप्त होने पर भी बड़ी तपस्या से विद्या की प्राप्ति होती है। विद्या प्राप्त होने पर भी बड़े भाग्य से कवि-हृदय मिलता है। कवि-हृदय मिल भी गया तो कवित्व-शक्ति मिलना अत्यन्त-अत्यन्त कठिन है।

शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्र—काव्याद्यवेक्षणात्।

—काव्य-प्रकाश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



लोक, काव्य और शास्त्रों के मनन से कवित्वशक्ति अंकुरित और क्रमशः पुष्ट होती है। इसी शक्ति की दूसरी संज्ञा प्रतिभा है। 'नव-नवोन्मेष-शालिनी प्रज्ञा प्रतिभा।' जिस प्रज्ञा के सहारे नयी-नयी कल्पनाएँ होती हैं उसे प्रतिभा कहते हैं। इसी को अंगरेजी में Poetic Sense, Imagination, Intuitive faculty आदि कहते हैं।

यद्यपि कहा जाता है कि कवियों में कवित्व शक्ति सहज होती है और किशोरावस्था में ही उसके लक्षण दिखाई भी पड़ने लगते हैं—'होनहार विरवान के होत चीकने पात'—फिर भी यह मानना ही पड़ेगा कि जिस प्रकार आलवाल में सुरक्षित उत्तम से उत्तम बीज भी बिना सींचे अंकुरित नहीं हो सकते उसी प्रकार कवि की तीव्र से तीव्र भी प्रतिभा बिना अपेक्षित अध्ययन आदि के जाग्रत नहीं हो सकती। कहा जाता है कि 'महाकवि' इतने मूर्ख थे कि जिस डाल पर बैठे थे उसी को काट रहे थे। इसमें सन्देह नहीं कि यदि कार्य-कारणवश अध्ययन की ओर उनका ध्यान न गया होता तो वे कभी भी महाकवि न बन पाते।

इसलिए अपनी कवित्व शक्ति को जाग्रत करना काव्य विद्या-स्नातक का प्रथम कर्तव्य है। इसके लिए किसी द्रोणाचार्य का एकलव्य होने की सलाह दी गयी है। गुरु सहृदय हों, स्वयं कवि हों, व्याकरण, छन्दःशास्त्र आदि के पारंगत हों। कहा गया है कि शुष्क वैयाकरण अथवा नीरस तार्किक को गुरु न बनाना चाहिये क्योंकि उनके द्वारा सहृदयता का ह्रास होता है। तार्किकों की जड़ता के विषय में अनेकों चुटकुले प्रसिद्ध हैं। एक तार्किक महोदय दर्शन करने के लिए भगवान विष्णु के मन्दिर में गये। संप्रदान् कारक के एकवचन में 'विष्णु' शब्द का क्या रूप होता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



है, शायद उन्हें भूल गया, या जो कुछ भी रहा हो। चट उन्होंने कहा—विष्णुशब्दस्य चतुर्थ्यैकवचने यादृशं रूपं भवति तद्वच्छिन्नाय देवाय नमः। 'विष्णवे नमः' न कहकर उन्होंने इतना अधिक कहा। किसी गुरुजी के दो शिष्यों में से एक व्याकरण का और एक तर्क शास्त्र का अध्ययन करता था। एक दिन दोनों कहीं जा रहे थे। मार्ग में ही सूर्यास्त हो गया। वहीं दोनों ने डेरा डाल दिया। वैयाकरण भोजन पकाने लगा और तार्किक घी लाने के लिए बाजार गया। हाँड़ी में चावल डाल दिया गया। ऊफान आने के पश्चात् चावल में से 'टुभ-टुभ' का शब्द होने लगा। वैयाकरण बेचारा बड़े चक्कर में पड़ा। यह 'टुभ' धातु कौन सी बला है? सारा व्याकरण समाप्त कर डाला लेकिन 'टुभ' धातु तो अब तक मिला ही नहीं। हो-न-हो यह हाँड़ी अशुद्ध उच्चारण कर रही है। छिः-छिः। उसने हाँड़ी का मुंह बालू से भर दिया। अशुद्ध शब्दोच्चारण बन्द हो गया। वयाकरण बड़ा प्रसन्न हुआ। उधर नैयायिक महोदय एक दोने में घी लेकर लौटे। मार्ग में वे तर्क करने लगे कि घी और दोने में से कौन आधार है और कौन आधेय? बड़ा जटिल प्रश्न! उन्होंने दोना उलट दिया। घी दोने में से जमीन पर गिर पड़ा। शंका का समाधान हो गया। दोना आधार और घी आधेय! दोनों मित्र जब मिले, उन्होंने आप-बीती कह सुनायी। यद्यपि उपवास करना पड़ा फिर भी वे अपने नवीन अनुसंधानों पर अत्यन्त प्रसन्न थे। एक आशुकवि थे। समस्या सुनते ही अविलम्ब श्लोक बना देते थे। आशुकवित्व के कारण किसी राजा की सभा में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा बढ़ी। उस राजा के यहाँ और भी अनेकों कवि थे। राजा ने एक दिन अन्य कवियों से पूछा—आप लोग इतने शीघ्र श्लोक क्यों नहीं बना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सकते ? कवियों ने उत्तर दिया—क्योंकि हम लोगों ने शास्त्रों का विशेष अध्ययन किया है और आशुकवि ने नहीं। यदि विश्वास न हो तो आशुकवि को भी शास्त्रों का अध्ययन करवा कर देखिये। राजा की आज्ञा से आशुकवि को किसी पण्डित जी के पास पढ़ने के लिए जाना पड़ा। पण्डित जी कवियों से मिले हुए थे। उन्होंने आशुकवि को तत्व-चिन्तामणि का प्रामाण्यवाद पढ़ाना प्रारंभ किया। कुछ दिनों के बाद जब आशुकवि फिर राज-सभा में आये, उन्हें समस्या दी गयी और देखा गया कि उनकी आशु-कवित्व शक्ति जाती रही। उन्हें कागज-कलम की आवश्यकता हुई। श्लोक बनाने में विलम्ब हुआ; लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि ऐसा सुन्दर श्लोक उन्होंने पहले कभी नहीं बनाया था। उप-र्युक्त कथन यदि सत्य माना जाय तो प्रश्न उठता है कि जयदेव आदि तर्क शास्त्रधुरन्धर थे फिर भी उनकी कवित्वशक्ति में कौन सन्देह कर सकता है ? जयदेव लिखित 'प्रसन्नराघव' नाटक साक्षी है। जयदेव ने स्वयं एक स्थल पर लिखा है—जिस कवि की भारती कोमल काव्य-कला में निपुण है वह क्या कर्कश तर्क की वक्र रचना में निपुण नहीं हो सकता ? पुरुष की जो भुजाएं कान्ता के साथ केलि करने में समर्थ हैं वे ही वाण भी तो चला सकती हैं !......काव्य में हमारी ही बुद्धि कोमल है, तर्क में हमारी ही बुद्धि कर्कश है, शृङ्गार में हमारी ही राग-बुद्धि है और भगवान कृष्ण के चरणों में हमारी ही भक्ति-बुद्धि है।

सहृदयों से संपर्क स्थापित करें, उनकी सभा में भाग लें, उनकी प्रत्येक उक्ति पर विशेष ध्यान दें, उनके व्यवहारों का अनु-करण करें, सत् और असत् को पहचानने का प्रयत्न करें, महा-कवियों के काव्यों का आद्योपान्त दत्तचित्त होकर अध्ययन करें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



उचित समाज में प्रतिष्ठित कवियों की चमत्कारपूर्ण उक्तियों के विषय में चर्चा करें। इस प्रकार कवित्वशक्ति में चेतना उत्पन्न होती है।

कवित्वशक्ति के स्फुरित होने पर काव्य-रचना का अभ्यास करें। प्रारंभिक अभ्यास के कई उपाय बताये गये हैं। प्रायः देखा जाता है कि गायक अपना गान प्रारंभ करने के पहले अनुकूल रागयुक्त निरर्थक 'न-न-न-न' का ही उच्चारण कण्ठ-साधन के लिए करते हैं, उसी तरह छन्द के अभ्यास के लिए पहले-पहल निरर्थक वाक्यों की भी छन्दोवद्ध रचना की जा सकती है। जैसे—

आनन्दसन्दोहपदारविन्दकुन्देन्दुकन्दोदितविन्दुवृन्दम् ।
इन्दिन्दिरान्दोलितमन्दमन्दनिष्यन्दनन्दन्मकरन्दवन्द्यम् ॥

यहां निरर्थक किन्तु मधुर और छन्दोवद्ध पदों की योजनामात्र है। इस प्रकार कठिन से कठिन छन्द में भी रचना करने का अभ्यास धीरे-धीरे डाला जा सकता है। दूसरों की कविता की छाया के अवलम्ब पर अपनी रचना करने से अथवा अन्यकवि के पद्य में से किसी एक पद या पादों को आधारस्वरूप ग्रहण कर उसी के सहारे अपनी बुद्धि से रचना करने से अथवा किसी कवि के काव्य का संपूर्ण अर्थ ग्रहण कर प्रकारान्तर से उन्हीं भावों को अपनी भाषा में व्यक्त करने से भी अभीष्ट सिद्ध हो सकता है। आभ्यासिक कवि सभी कुछ करने में स्वतन्त्र हैं।

अब न वह मैं, अब न वे तुम,
अब न वे दिन, वे न रातें
बीत जाए तुच्छ जीवन
वेदना के गीत गाते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



इस पद्य के स्थान पर—

और ही मैं, और ही तुम
और ही संसार सारा
चाहता बस, वेदना के—
गान में लय हो हमारा

इस पद्य की रचना ऊपर के पद्य की छाया पर की गयी है। केवल शब्दों में परिवर्तन कर दिया गया है।

उदित कुमुदिनीनाथ हुए प्राची में ऐसे
सुधाकलश रत्नाकर से उठता हो जैसे

इस पद्य के स्थान पर—

नव-प्रभात के प्राची में बालारुण ऐसे
किसी नवोढ़ा के ललाट पर कुंकुम जैसे

इस कविता में ऊपर के पद्य के 'ऐसे–जैसे' पदों का ग्रहण कर अपनी कल्पना के बल पर रचना की गयी है।

क्षितिज के कुछ ही ऊपर सोम
बस रहा छाया में तम-तोम

इसके स्थान पर—

क्षितिज के कुछ ही ऊपर सोम
शून्य में शून्य लालिमा लीन
तिमिर छिपते छाया में दीन
अमल अम्बर पर फिर चुप-चाप
चले आये तारे दो-तीन
चन्द्रिका का क्रमबद्ध विकाश
ढुलकता पल—पल पुलक प्रकाश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सुधा से धौत सौध सा विश्व
कहूँ कैसे कैसा आकाश ?
विहंसता था राका का व्योम
क्षितिज के कुछ ही ऊपर सोम

इस पद्य में ऊपर के पद्य का एक पाद लेकर अपनी प्रतिभा के सहारे रचना की गयी है। दूसरे की कविता का एक पाद लेकर शेष की स्वयं पूर्ति करने का अभ्यास करने से कवित्व-शक्ति बड़ी शीघ्रता से बढ़ती है। इसी को समस्यापूर्ति कहते हैं।

कवि समुदाय समस्यापूर्ति कर प्रायः कौतुक किया करता है ; आज से नहीं, प्राचीन काल से। जनता को भी समस्या-पूर्तियों को सुनने में बड़ा रस मिलता है। लोग समस्या के द्वारा कवियों की प्रतिभा को आंकते हैं। कवि अपनी आशुकवित्व और समस्यापूर्ति की कला से श्रोता के ऊपर अपने पाण्डित्य का प्रभाव अनायास जमा लेते हैं। इसलिए प्रारम्भ से ही समस्यापूर्ति की ओर ध्यान दिया जा सकता है। आधुनिक कवि इस पक्ष .का समर्थन प्रायः नहीं करते। उनका कहना है कि समस्यापूर्ति में जो कविता बनायी जाती है वह स्वाभाविक नहीं होती। लेकिन आज भी प्राचीनकाल की समस्यापूर्तियों को सुनकर हम आनन्द से नांच उठते हैं, पूर्तिकार की अपूर्व क्षमता का अनुभव कर। कहा जाता है कि भोजराज रात्रि में प्रछन्न रूप में अपने राज्य में घूमा करते थे। प्रजा के वास्तविक सुख-दुःख जानने के लिए एक दिन उन्होंने देखा—एक ब्राह्मणी अपने पति की सेवा में व्यस्त थी। उसके देखते-देखते उसका अबोध बच्चा खेलते-खेलते दहकते हुए अग्निकुण्ड में गिर पड़ा। यह देख कर भी ब्राह्मणी पति सेवा से विरत न हुई। राजा को यह देखकर महान् आश्चर्य हुआ कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



बच्चा अग्निकुण्ड में भी उसी तरह खेलता रहा और उसका बाल भी बांका न हुआ। धन्य रे, सती-प्रताप ! दूसरे दिन अपनी सभा के कवियों को उन्होंने एक समस्या की पूर्ति करने के लिए कहा 'हुताशनश्चन्दनपंकशीतलः।' 'महाकवि' ने उक्त समस्या की पूर्ति करते हुए कहा—

सुतं पतन्तं प्रसमीक्ष्य पावके
न बोधयामास पतिं पतिव्रता।
पतिव्रता शापभयेन पीडितो
हुताशनश्चंदनपंकशीतलः ॥

पतिव्रता पति की सेवा में तल्लीन थी ; इसलिए वह अपने प्रिय पुत्र को अग्नि में गिरते हुए देखकर भी न देख सकी। अग्नि को चन्दनपंक के समान शीतल होना पड़ा ; भय था कि ऐसा न करने पर कहीं पतिव्रता के शाप से उसे स्वयं न भस्म हो जाना पड़े। समस्यापूर्ति सुन कर सभी दङ्ग रह गये। लोगों में काना-फूसी होने लगी कि इष्टदेव की सहायता से ही 'महाकवि' ऐसी पूर्ति कर सके। जो हो !

तत्कालीन घटनाओं को देखकर, समस्यादाता की मनोकामना अपनी प्रतिभा से समझ कर, अथवा समस्या में स्थित पदों के अर्थ के अनुकूल, चाहे जैसे, खींच तान कर भी समस्या-पूर्तियां की जाती हैं।

पूर्तिकार को चाहिये कि समस्या सुनने पर सर्वप्रथम उस पर गंभीरता पूर्वक विचार करे। क्योंकि कभी-कभी समस्यादाता ऐसी समस्या दे देते हैं जिसके शब्द—व्यूह में अनावश्यक गूढ़ता रहती है और उसका अर्थ लगाना कठिन हो जाता है। जैसे—बाण बाण-बाण के। इस समस्या को जान—बूझ कर कठिन बनाया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



गया है। इसका अन्वय हुआ 'बाण-बाण के बाण।' पंचसर कामदेव का पर्यायवाची शब्द है। पंचसर के स्थान पर पंचवाण भी कह सकते हैं। 'पाँच' को भी 'बाण' कहते हैं। इस तरह 'बाण बाण-बाण के' का अर्थ हुआ कामदेव के बाण। समस्या वही अच्छी होती है जिसमें अर्थ—गांभीर्य के रहते हुए भी शब्द ललित और सुबोध हों, तुकान्त उत्तम कोटि का हो और ऐसा हो जिससे कि तुक मिलाने में पूर्तिकार को अनावश्यक कठिनता का सामना न करना पड़े। समस्या के अर्थ को अच्छी तरह समझ कर फिर यह विचार करे कि किन-किन छन्दों में उस समस्या पर अच्छी कविता बन सकती है और कौन सा ऐसा छन्द है जो समस्या तथा विषय दोनों के अनुकूल हो। उत्तम समस्यापूर्ति वही समझी जाती है जिसमें शब्द रस और गुण के अनुकूल हों, चरणान्त की अक्षर-मैत्री उत्तम कोटि की हो, अर्थ ललित और समस्या के अनुसार हों, उसकी विधि विकृत न हो, गुण और दोषों पर भी ध्यान रहे, व्यर्थ अनुप्रास और यमक आदि कविता के भार न बनें, यति और गति भङ्ग न हों।

समस्यापूर्ति कई प्रकार से की जाती है; समस्या के अर्थ का समर्थन करते हुए, विरोध करते हुए, समस्या के अर्थ को समस्या का खण्ड करके अथवा उसके पूर्व किसी वर्ण या शब्द का नियोग कर अन्य अर्थ सूचित करते हुए, श्लिष्ट अथवा साधारण रीति से कविता में पशु-पक्षी-वृक्ष-भूषण और नगर आदि की प्रतिष्ठा करते हुए, दृष्टान्त—लोकोक्ति—उत्प्रेक्षा—शास्त्र—प्रमाण आदि द्वारा समस्या का समर्थन करते हुए, वक्रोक्ति—अन्योक्ति—अतिशयोक्ति—उपमा आदि द्वारा समस्या को परिपुष्ट करते हुए, छोटी बात को बड़ी बनाते हुए अथवा बड़ी बात को संक्षिप्त करते हुए। कभी-कभी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



ऐसी भी समस्या दे दी जाती है जिसका होना असंभव हो। जैसे 'बाल के हाथ में सींग शशा को।' शश के भी सींगें होती हैं ? असंभव ! ऐसी दशा में पूर्तिकार को अपने पाण्डित्य का ही सहारा लेना पड़ता है। उक्त समस्या की पूर्ति ऐसे की गयी है—

काव्य पढ़ो कविता हूँ करो कछु भद गनागन को करो याको।
प्रश्न-प्रहेलिका आदि में जानहु रञ्जनहूँ बहु नीके सभा को ॥
शिष्यहिं सिच्छा करे गुरु या विधि मूरख नाम हंसावे पिता को।
कैहो कहा कोऊ दैहै समस्या जु 'बाल के हाथ में सींग शशा को' ॥

ऊपर कहा गया है कि अभ्यासार्थ किसी कवि के काव्य का संपूर्ण अर्थ ग्रहण कर प्रकारान्तर से उन्हीं भावों को अपनी भाषा में व्यक्त करे। जैसे—

मादक थी, मोहमयी थी
मन बहलाने की क्रीड़ा
अब हृदय हिला देती है
वह मधुर प्रेम की पीड़ा

—'प्रसाद'

इसके स्थान पर—

उस दिन की कोमल क्रीड़ा
जीवन की कठिन पहेली
इस ज्वार और भाटा में
नन्ही सी नाव अकेली

इस कविता में ऊपर की कविता के संपूर्ण भाव प्रकारान्तर से व्यक्त किये गये हैं।

पद-रचना की क्षमता प्राप्त करने के पश्चात् कवि को अपनी कवित्वशक्ति को उत्तरोत्तर प्रौढ़ करने का प्रयत्न करते रहना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



चाहिये। इसके लिए सात्विक आचरणों के द्वारा अपना हृदय और बुद्धि सात्विक बनाये रहे। सत्कवियों के काव्यों को आदरपूर्वक पढ़े। काव्य के अङ्गों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करे सत्सङ्ग में योग दे; सदा प्रसन्न रहे; शिष्टों का साथ हो; मनसा, वाचा, कर्मणा स्वच्छ रहे; वेश-भूषा कवियों के अनुकूल हो; अभिनय देखे; सङ्गीत का आस्वादन करे; शास्त्रों के अध्ययन के साथ-साथ लोक का भी दत्तचित्त हो कर अध्ययन करे; आख्यायिका, इतिहास, पुराण, चर्चा आदि में भी समय दे; चित्रकारों से मैत्री करे और परस्पर भावनाओं का आदान-प्रदान करे; शिल्पियों के कौशल का निरीक्षण करे; युद्ध के दृश्य भी देखे; दुःखियों के साथ सहानुभूतिपूर्ण आचरण करे; साधु-सन्त-ज्ञानी और विज्ञानियों की सेवा करे, ब्राह्ममुहूर्त में कभी न सोये; दिन में अवसर और इच्छा होने पर थोड़ा विश्राम कर ले; स्वास्थ्य पर सर्वदा ध्यान रहे; अति शीत और अति धूप से अपनी रक्षा करे; सामयिक पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखादिकों को व्युत्पत्तिपूर्वक पढ़े; सम्मेलन–परिषद–गोष्ठियों में सम्मिलित हुआ करे; प्राणियों के स्वभाव की परीक्षा करे; यथासाध्य अधिकाधिक पर्यटन कर समुद्र-वन-पर्वतादिकों के विषय में अच्छी जानकारी प्राप्त करे; सूर्य-चन्द्रमा-नक्षत्रों की गति और स्थिति का भी ज्ञान हो; ऋतुओं की विशेषताओं पर भी ध्यान देता रहे; संघों में भी भ्रमण करे; व्याख्यान सुने और स्वयं भी समय-समय पर व्याख्यान दे; अधिक से अधिक भाषाओं का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये और उन-उन भाषाओं में भी कविता करने का प्रयत्न करे; आस्तिक हो लेकिन अंधविश्वासी न हो, नास्तिक हो लेकिन दुराग्रही न हो; यह समझे कि किस पद के रखने से कविता की शोभा होगी और किसके निकाल देने से ही कविता भली मालूम पड़ेगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



'विद्यावतां दातरि दीनता चेत् किं भारती-वैभव-विभ्रमेण' यदि विद्वान् ने दाताओं के प्रति दीनता प्रगट की तो उसके विद्याविलास से क्या लाभ ? पराधीन होकर रहना कवि के लिए श्रेयस्कर नहीं होता। लोक-कल्याण के लिए ही कवि का अवतार होता है, इसलिए अपने उत्कर्ष की अपेक्षा लोक के उत्कर्ष की ओर विशेष ध्यान दे। कवि अभिमानी न हो बल्कि आत्माभिमानी हो। दूसरों की विभूति में प्रसन्न होना और आत्मश्लाघा से उदासीन रहना कवि का कर्तव्य है। वैर और मात्सर्य से रहित होना चाहिये। गुण प्राप्त करने के लिए चाहे जिसकी भी शिष्यता स्वीकार करने में कोई दोष नहीं है। चन्द्रमा से भी उसका सुधाभाव ग्रहण करले और कलंक छोड़ दे उसी के लिए। श्रोताओं की रुचि का अध्ययन करने के बाद अनुकूल कविता का पाठ करना चाहिये। लोक के भाव को समझने का प्रयत्न करना चाहिये। कोई कुछ कहे या न कहे, कवि उसके मानसिक भावों का परिज्ञान प्राप्त कर सकता है। 'अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः।' इङ्गित और विभिन्न मूक चेष्टाओं को तत्क्षण समझ लेने की क्षमता होनी चाहिये। कवि की एक भी ऐसी उक्ति न हो जिससे कुछ न कुछ उपदेश न मिले। कहीं भी संकोच, भय अथवा लज्जा की आवश्यकता नहीं। व्यवहारशील न होना कवि के लिए दोष है। जहाँ तक हो सके एकान्त का सेवन करे। आशा न करे, सन्तोषशील हो। ग्राम्य शब्दों का प्रयोग न करे। भाषण पर अधिकार हो। काव्य करते समय बीच-बीच में मस्तिष्क को विश्राम देना अत्यन्त आवश्यक है। पेट भर कभी न भोजन करे। 'वायोः संचारणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत्।' उदर का एक चतुर्थांश अवश्य रिक्त रहे। भोजन थोड़ा करे, कई बार करे। सरस, स्वादिष्ट और स्वास्थ्यवर्द्धक ही खाद्य हो। सभी देवता और धर्मों में समान श्रद्धा रखे। पक्षपातशील होना कवियों के लिए दोष कहा गया है।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



"भाई, तुम कौन हो और क्या करते हो ?"

"मैं तो कवि हूँ और कविता करता हूँ।"

"अच्छा! धन्यवाद । यदि कोई नवीन रचना की हो तो सुनाइये।"

"अब तो मैंने कविता सुनाना ही छोड़ दिया है ?"

"सो क्यों ?"

"क्योंकि संसार में कविता के वास्तविक गुण और दोषों की विवेचना करने वाले भावक लाख में एक ही मिलते हैं।"

उत्तम से उत्तम कविता होने पर भी यदि कोई असहृदय अप्रशंसा करे, उससे कष्ट तो होता है, लेकिन कवि को इससे पीड़ित न होना चाहिये।

कुछ कवि ऐसे होते हैं जो मन ही मन काव्य किया करते हैं किन्तु उसे प्रकाशित नहीं करते। यह दोष है। कहा जाता है कि ऐसे व्यक्ति दूसरे जन्म में वे 'आम' होते हैं जो देखने में तो बड़े सुन्दर और अत्यन्त सरस होते हैं लेकिन पकने पर उनके भीतर कीड़े ही कीड़े हो जाते हैं। क्या सचमुच ?

सामान्य जनता के भी आचरणों को अन्वेषण की दृष्टि से देखना और उनके वार्तालाप को ध्यान के कानों से सुनना ; प्रतिभा और स्मृति का समुचित उद्बोधन ; रागी होते हुए भी विरागी होना ; तुच्छ जीव और जन्तुओं से भी शिक्षा ग्रहण करना ; जड़ प्रकृति से भी कुछ प्राप्त करने का विश्वास रखना ; अपने काव्य का देशान्तरों में भी प्रचार करना ; दूसरे के काव्यों का संग्रह और मनन करना ; कवि के लिए लाभप्रद होता है।

कवि में समास-व्यास, विस्तार-संकोच की असाधारण क्षमता होनी चाहिये।

कुछ कवि ऐसे होते हैं जो अपनी रचना को भी दूसरे की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



घोषित कर कहते हैं, इस भय से कि कहीं कोई उसे बुरी न कह दे। संसार से इतना भय!

दूसरे की रचना को अपनी कहने से बढ़ कर तो कोई दोष ही नहीं हो सकता।

ऐसे आचरण करता हुआ कवि अपनी रचना में चमत्कार लाने का निरन्तर प्रयत्न करता रहे। चमत्कार को ही कविता का प्राण समझना चाहिये। 'रसे सारश्चमत्कार।' जिस रचना में कोई चमत्कार नहीं, वह असफल है।

किं कवेस्तस्य काव्येन्
किं काण्डेन धनुष्मतः।
परस्य हृदये लग्नं
न घूर्णयति यच्छिरः॥

कवि का चमत्कारविहीन वह काव्य और धनुर्धर का वह धनुष व्यर्थ है जो दूसरों के हृदय में नहीं चुभ जाता और जिससे दूसरों का मस्तिष्क नहीं दोलायित होता।

काव्यगत चमत्कार के दस स्वरूप कहे गये हैं। १—अविचारित रमणीय २—विचार्यमाण रमणीय ३—समस्त सूक्तव्यापी ४—सूक्तैकदेशदृश्य ५—शब्दगत रमणीयता ६—अर्थगत रमणीयता ७—शब्दार्थोभयगत रमणीयता ८—अलंकारगत रमणीयता ९—रसगत रमणीयता १०—रसालंकरोभयगत रमणीयता।

जिस काव्य की रमणीयता बिना विशेष विचार किये ही प्रकाशित हो जाय उसे अविचारित रमणीय कहते हैं। जैसे—

ओ फूलों से भी कोमल!
तुमको क्यों शूल कहूँ मैं?
हां, भूल नहीं सकता हूँ
अपनी ही भूल कहूँ मैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



जिसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि फूलों से भी कोमल है ( कोमल कमल के, गुलाबन के दल के सुजात गड़ि पायन बिछौना मखमल के।—पद्माकर ) उसे इस वियोग की अवस्था में मेरी मर्मान्तिक वेदना का हेतु होने के कारण शूल कैसे कहूँ ? यदि कहूँ तो मैं पागल हूँ। मुझे जो इतनी पीड़ा आज हो रही है उसमें तुम्हारा कोई भी अपराध नहीं। दोष मेरा है। यदि मैं बीती—बातों को भूल जाऊँ तो कुछ नहीं। लेकिन यही नहीं हो पाता।

उक्त कविता में चमत्कार किसी से उन्नीस नहीं हैं, और वह प्रकाशित है। विना विशेष प्रयास के समझ में आ जाता है।

अपेक्षित विचार करने पर ही जिस कविता की रमणीयता स्पष्ट होती है उसमें विचार्यमाणरमणीय चमत्कार होता है। जैसे—

ज्यों इन्दु विन्दु सा देखा
दो नयन विन्दु बन पड़ते
कितने त्रिकोण करुणा के-
यों बनते और बिगड़ते।

ज्योहीं आकाश में विन्दु के सदृश इन्दु दिखायी पड़ता है, मेरी पीड़ाओं का पार नहीं रहता। उसे देखते ही आँखें भी दो विन्दु हो जाती हैं क्योंकि उसमें से पीड़ा के पानी बहने लगते हैं। आँसू की बूँदें पलकों पर क्षणभर के लिए ठहर कर फिर खो जाती हैं। आकाश में एक इन्दुमय विन्दु और पलकों पर दो अश्रुमय विन्दु ! इस प्रकार एक समद्विवाहु त्रिभुज बन जाता है। यही करुणा का त्रिकोण है। इस त्रिकोण को बनाते और बिगाड़ते ही सारी रात बीत जाती है। जब पलकों पर आँसू की बूँदें रहती हैं तब त्रिकोण बना रहता है और जब वे बूँदें गिर जाती हैं तब त्रिकोण बिगड़ जाता है। विरही कोई रेखागणितज्ञ रहा होगा !

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



उक्त कविता में जो चमत्कार है वह प्रशंशनीय है किन्तु अनायास सबकी समझ में नहीं आ सकता।

चमत्कार जब सम्पूर्ण कविता में व्याप्त रहता है उसे समस्त-सूक्तव्यापी कहते हैं। जैसे—

सुख-माल न सूखी, टूटी,
अब सूत-सूत बाकी है
भगवान, भला हो उसका
जिसने 'हाँ' कर 'ना' की है

यह न समझो कि मेरे सुखों की माला सूख गयी। नहीं-नहीं, वह टूट गयी (आह, हम ऐसे मिले कि आज छूटे टूट)। माला टूट गयी; उसके फूल एक-एक कर बिखर गये। अब मेरे हाथों में केवल उसका सूत-सूत रह गया है। हे परमात्मा, उसका भला ही करना जिसने कल 'हाँ' कर आज 'नहीं' कर दिया।

इसका व्यंग्य अर्थ आप स्वयं समझ लें। इस कविता के नस-नस में चमत्कार व्याप्त है।

जब कविता के केवल एक देश में स्थित चमत्कार अकेले अपने प्रभाव से सारी कविता को प्रकाशित करता है वहाँ उसे सूक्तैक-देश दृश्य कहते हैं। जैसे—

मदमाती रसाल की डारन पै—
चढ़ि आनंद सों यों विराजति है।
कुल-जान की कान करै न कछू,
मन हाथ पराएहि पारति है॥
कोउ कैसी करै द्विज तूही कहै,
नहिं नेकौ दया उर धारति है।
अरी क्वैलिया, कूक करेजन की
किरचैं-किरचैं करि डारति है॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



इस पद्य में जो कुछ भी चमत्कार है वह अन्तिम चरण में 'अरी क्वैलिया, कूक करेजन की किरचैं-किरचैं करि डारति है' के रूप में स्थित है। अन्य पदों का समावेश तो उसी की पुष्टि के लिए ही किया गया है। इस चमत्कारपूर्ण पद को यदि हटा दिया जाय तो पद्य में कोई जान न रह जायगी।

जहाँ शब्द नाचते हुए से, लुभाते हुए से आयें, उनकी पारस्परिक मैत्री मनोहारिणी हो, अर्थ चाहे जैसे भी हों, वहाँ शब्दगत चमत्कार होता है। जैसे—

नवल-नवल चलदल के दल के
कवल लिये कर में करिणी–
करि के मुख में डाल रही,
वह चली प्रणय की निर्झरिणी

कोई करिणी यहाँ पीपल के कोमल किसलयों के कवल को सूंड़ में लेकर बड़े प्यार से अपने प्रिय हस्ती के मुख में डाल रही है। यहाँ अर्थ में कोई विशेष चमत्कार नहीं है; हाँ शब्दों की योजना ऐसी है जिससे कि हृदय सुनते ही प्रसन्न हो जाता है।

चुभता है तो चुभने दूँ!
अब मधु-मरन्द का घाटा
जब विरस प्यार की क्यारी-
में फूल सूख कर काँटा

आज वे कोमल फूल क्यों चुभने लगे हैं? क्योंकि आज बसन्त अपने साथ इनके मकरन्द लेता चला गया और प्यार की क्यारी नीरस हो गयी है। फलतः वे ही फूल सूख कर कांटे हो गये हैं। इसीलिए चुभते हैं। तो क्या उन्हें इसी तरह चुभने दूँ? यहाँ जो कुछ भी रमणीयता है, अर्थों में।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अञ्जनहीन नयन थे, फिर भी
खञ्जन होते मात रहे
जल में भी डहडहे डाह से
जल जाते जल जात रहे

राज्यारोहण के पश्चात् एक दिन श्री राम सीता जी से कहते हैं—सीते पञ्चवटी में वनवासिनी तुम्हारे नेत्रों में अञ्जन नहीं लगे रहते थे फिर भी नेत्र-सौंदर्य में अद्वितीय खंजन भी बराबरी नहीं कर पाते थे। सरोवर में विकसित कमल इनकी विभूति से ईर्ष्या करते हुए जल में भी जले जा रहे थे। यहाँ शब्दगत चमत्कार भी है और अर्थगत भी।

एक कहैं कलपद्रुम है इमि पूरत है सबकी चित-चाहैं।
एक कहैं अवतार मनोज को यों तन मैं अति सुन्दरता है॥
'भूषन' एक कहैं महि-इन्दु यों राज विराजत बाढ़्यो महा है।
एक कहैं नरसिंह है संगर एक कहैं नरसिंह शिवा है॥

इस पद्य में एक शिवाजी को सविशेष दानी होने के कारण कल्प-द्रुम, लोकोत्तर सुन्दर होने के कारण मनोज का अवतार, आल्हादक होने के कारण भूलोक का इन्दु, समर भूमि में पराक्रम में अतुल होने के कारण नृसिंह और समाज में सर्वातिशयित होने के कारण नर-सिंह आदि अनेक प्रकार का कहा गया है। अतः इसमें उल्लेख अलंकार है। यहाँ चमत्कार अलंकारगत है।

दूर ही तें देखत विथा मैं वा वियोगिन की,
आई भलै भाजि ह्याँ इलाज मढ़ि आवैगी।
कहैं 'पद्माकर' सुनो हो घनश्याम जाहि,
चेतत कहूँ जो एक आह कढ़ि आवैगी॥
सर-सरितान को न सूखत लगैगी देर,
एती कछू जुलमिनि ज्वाला बढ़ि आवैगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



ताके तन-ताप की कहौं मैं कहा बात,
मेरे गातहि छुऔ तो तुम्हें ताप चढ़ि आवेगी ।।

उपर्युक्त पद्य विप्रलंभ शृङ्गारान्तर्गत व्याधि संचारी भाव का मनोहर उदाहरण है। इसमें रसगत चमत्कार है; और साथ ही साथ अलंकारगत भी—

प्रतिभा के चमत्कारोत्पादनक्षम होने पर भी कविता के वास्तविक गुण-दोष का विवेचन करना सरल नहीं है। लेकिन कवि के लिए यह परम आवश्यक है। काव्य के गुण और दोषों का सविस्तर विवेचन 'शब्द और अर्थ' के अन्तर्गत किया जा चुका है।

*राजशेखर का कथन है—

कवि काव्य-विद्या और उपविद्याओंका पर्याप्त अध्ययन करके काव्य-रचना करने में प्रयत्नशील हों। नामपारायण, धातुपारायण, शब्द-कोष, छन्दः शास्त्र और अलंकार तन्त्र; ये काव्य-विद्याएँ है। नामपारायण और धातुपारायण का अर्थ 'व्याकरण' है। गीत, वाद्य, नृत्य, नाट्य आदि चौसठ कलाओं को उपविद्या कहते हैं। कवि और सज्जनों

---

* राजशेखर का उल्लेख इसके पहिले भी अनेक स्थलों पर किया गया है। ये महामंत्री दुर्दुरक और शीलावती के पुत्र तथा यायावरीय वंश के विख्यात कवि अकालजलद के प्रपौत्र थे। यायावरीय वंश में ही सुरानन्द, तरल और कविराज जैसे प्रसिद्ध विद्वान् और कवि उत्पन्न हुए थे। इन्होंने अपनी काव्य मीमांसा में अनेक स्थलों पर यायावरीय मत का उल्लेख किया है। ये ब्राह्मण थे किन्तु इनकी पत्नी अवन्ति सुंदरी चौहाणवंश की क्षत्रीया थीं। यह भी बड़ी विदुषी और कवियित्री थीं। राजशेखर महाराष्ट्रीय थे।

ये कन्नौज के शासक महेंद्रपाल के उपाध्याय थे और उनके पुत्र महीपाल के भी कृपापात्र थे। राजशेखर का काव्यसमय लगभग सम् ८८४—९२५ माना जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



का साहचर्य, देशवार्ता में मनोयोग, विदग्धजनों के साथ वार्तालाप, लोक व्यवहार का विशद ज्ञान तथा विद्वद्गोष्ठियों में सक्रिय भाग लेना तथा प्राचीन कवियों के निबंधों का अध्ययन और मनन, इन्हें काव्य की जननी समझना चाहिये। कहा भी है—

स्वास्थ्यं प्रतिभाभ्यासो भक्तिर्विद्वत्कथा बहुश्रुतता।
स्मृतिदाढर्यमनिर्वेदश्च मातरोऽष्टौ कवित्वस्य॥

स्वस्थ शरीर, तीव्र प्रतिभा, निरन्तर दत्तचित्त होकर शास्त्रों का अध्ययन और अधीत का अभ्यास, विद्वानों के साथ विद्वत्तापूर्ण वार्तालाप, बहुश्रुतता, सदा प्रस्तुत स्मरणशक्ति, और प्रसन्न हृदय— ये आठ काव्य की माताएं हैं।

कायिक, वाचिक और मानसिक, तीनों प्रकार की शुद्धियां कवि वर्ग के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। शास्त्रों के अध्ययन से मन और वाणी की शुद्धि होती है। कायिक शुद्धि के अन्तर्गत— नखों की शुद्धता ; मुख में पान आदि ; चन्दनादिकों का लेप ; उत्तम वस्त्र ; सुगंधित सुमनों का अधिक से अधिक प्रयोग, ये सब हैं। शुद्ध स्वभाव से ही भगवती सरस्वती को वश में किया जा सकता है।

कवि का स्वभाव जैसा होगा वैसे ही उसके काव्य भी होंगे जैसे देखा जाता है कि प्रायः जैसा चित्रकार होता है वैसे ही उसके चित्र भी होते हैं। कवि प्रसन्न मुख से बातें करें, उनके प्रत्येक कथन में चमत्कार हो, रहस्य हो ; सृष्टि के कँण-कँण को अन्वेषण की दृष्टि से देखें; दूसरों के काव्य में दूषण न निकालें। हां, यदि कोई ऐसा करने के लिए कहे तब उसमें जो कुछ उचित—अनुचित हो उसे कह दें।

कवि का निवास साफ-सुथरा हो। उसमें भिन्न-भिन्न ऋतुओं के उपयुक्त भिन्न-भिन्न स्थान हों। वहां तरह-तरह के वृक्ष, मूल,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



लतादिकों से सुशोभित वाटिका हो ; कल्पित नदी, समुद्र, शैल, दीर्घिका, पुष्करिणी और नहरें आदि हों ; मयूर, मृग, हारीत, सारस, चक्रवाक, हंस, चकोर, क्रौंच, शुक सारिका आदि पक्षी हों ; स्थान-स्थान पर सघन छाया, फुहारे और लतामण्डप आदि हों। वहां ऐसे भी एकान्त स्थान हों जहां भृत्यों तक की गति न हो और हृदय को अपेक्षित विश्रान्ति मिल सके।

कवि का परिचारकवर्ग *अपभ्रंश भाषा में, परिचारिकाएं मागध भाषा में, अन्तःपुरिकाएं प्राकृत और संस्कृत भाषाओं में अच्छी तरह भाषण करने वाली हों। कवि के मित्र प्रायः सभी भाषाओं के पण्डित हों। कवि के लेखक ( क्लर्क ) अधिकाधिक भाषाओं में कुशल, शीघ्रवक्ता, सुंदर अक्षर लिखने वाले, नाना लिपियों से अभिज्ञ, स्वयं कवि और लाक्षणिक हों। जब ये वैतनिक लेखक नियत समय पर चले जायं और रात्रि के अतिकाल में लिखना हो, ऐसे समय में परिचारक आदि से ही काम लिया जा सकता है।

---

*संस्कृतं प्राकृतं चैव सौरसेनी च मागधी।
पारसी च अपभ्रंशं भाषाषटकं च लक्षणम् ॥

संस्कृत, प्राकृत, सौरसेनी, मागधी, पारसी और अपभ्रंश, ये छः भाषाएं कही गयी हैं।

संस्कृत—शुद्धशब्दों वाली जैसे अधर, अरुण, प्रवाल, रम्य आदि।

प्राकृत—देश में प्रचलित। इसके अन्तर्गत मारवाड़ी, बुन्देलखण्डी, गुजराती, महाराष्ट्री, वैसवाड़ी, मध्यदेशीय और नाग आदि भाषाएं हैं।

सौरसेनी—व्रजदेश की भाषा।

मागधी—मगध देश की भाषा।

पारसी—यावनी भाषाएं।

अपभ्रंश—अशुद्ध शब्दों वाली। जैसे चन्द, अनन्द आदि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



कवि की रुचि के अनुसार उसके घर में भी भाषा का नियम होना चाहिये। कहा जाता है कि मागधराज शिशुनाग की आज्ञानुसार उनके अन्तःपुर में 'ट, ठ, ड, ढ, श, ष, ह और क्ष' वर्णों का उच्चारण वर्जित था। शूरसेनराज कुविन्द की आज्ञा थी कि उनके अन्तःपुर में परुषाक्षरों का उच्चारण न किया जाय। महाराज शातवाहन ने नियम बना रखा था कि उनके अन्तःपुर में केवल प्राकृत भाषा बोली जा सकती है। इसी प्रकार उज्जयिनी के राजा साहसांक का आदेश था कि उनके अन्तःपुर में केवल संस्कृत भाषा का प्रयोग किया जाय।

कवि को चाहिये कि पहले आत्मकल्पना करें और तब काव्य-कल्पना। मेरा संस्कार कितना है, मेरी शक्ति कितनी है, किस भाषा में कविता की जाय, लोक की रुचि किस ओर है, समाज की अवस्था और व्यवस्था कैसी है, समाज की चेतना का कितना विकाश हो चुका है; काव्य रचना करने के पूर्व इन बातों का ध्यान रखना होगा। जब तक कवि को इस बात का अच्छी तरह ज्ञान न होगा कि उसमें और समाज में कितनी समता है तब तक वह समाज के अनुकूल रचना नहीं कर सकता। समाज आत्मसम्मत अर्थों को ही ग्रहण करता है और असम्मत का तिरस्कार। लोक जिसका समर्थन नहीं करता उसे यथा-संभव न कहें। लोक की चाल बेढंगी है; वह दूसरों की तपस्या पर ध्यान नहीं देता, ध्यान देता है स्वार्थों पर। वह निरंकुश है और रहेगा इसलिए जनापवाद मात्र से अपमानित अथवा अधीर न होना चाहिये। अपने यथार्थ को स्वयं समझ कर संतुष्ट हों। यदि विचार सत्य हैं, आदरणीय हैं तो आज न सही, कल अवश्य आदर होगा। देखा गया है कि कवि की समुचित प्रतिष्ठा या तो विदेशों में होती है अथवा उसके दिवंगत होने पर। बड़ा से बड़ा कवि क्यों न हो,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



प्रत्यक्षभाव में अपने देश में उसकी संतोषप्रद प्रतिष्ठा होती ही नहीं। प्रत्यक्ष कवि की कविता, कुल-कामिनी का सौन्दर्य और गृह-वैद्य की विद्या, इन तीनों का जैसा चाहिये वैसा सत्कार कोई विरला ही करता है।

काव्यमर्मज्ञ स्वादिष्ट कविता के ही रसिक होते हैं। लेश-मात्र यदि चमत्कार हो और सुबोध तथा गेय हो, ऐसी कविता बालक, स्त्री और तुच्छ जाति के लोगों के लिए कौतुक सी हो जाती है और एक मुख से दूसरे एवं दूसरे से तीसरे में बराबर संचरित होती रहती है। जो विशेष अवसर परही विशिष्ट कविता की रचना करते हैं और जो परिव्राजक ( चलते-फिरते सन्यासी ) हैं अथवा जो राजा हैं, उनकी कविताएँ बड़ी तत्परतापूर्वक दसो दिशाओं में अनायास शीघ्र ही फैल जाती हैं। पिता की कविता को पुत्र, गुरु की कविता को शिष्य और राजा की कविता को उसके सैनिक विना समझे बूझे ही पढ़ा करते हैं।

कवि जब तक काव्य पूरा न करदें तबतक उसे किसी को न सुनावें। अपनी नयी रचना को किसी व्यक्ति को एकान्त में न सुनावें क्योंकि ऐसा हो सकता है कि वह व्यक्ति उस कविता को अपनी घोषित करदे और वास्तविक कवि अपना अधिकार प्रमाणित न कर सके। अपनी कविता की बहुत प्रशंसा न करें। बहुत प्रशंसा करने से लोग अच्छी भी कविता को बुरी समझने लगते हैं और बुरी को अधिक से अधिक बुरी। पक्षपात से गुण और दोषों में विपर्यय हो जाता है। कभी घमण्ड न करें क्योंकि तनिक भी घमण्ड करने से सारे संस्कार शिथिल हो जाते हैं किसी सदसद्विवेकी से अपने काव्य की परीक्षा भी करायें क्योंकि गुण-दोष का विवेचन जैसा पक्षपातविहीन उदासीन व्यक्ति कर सकता है वैसा स्वयं रचयिता नहीं। जो अपने को व्यर्थ महाकवि समझनेवाले हों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



उन्हें उनके अभिप्राय के अनुवर्तन से तत्काल तो प्रसन्न करदें किन्तु फिर कभी भविष्य में उन्हें कविता न सुनायें क्योंकि कविमानी के सामने सुभाषित भी अरण्यरोदन की तरह व्यर्थ हो जाते हैं। कवि-मानी कविता की अनर्गल पर्यालोचना ही नहीं करता बल्कि यथा-समय उसका अपहरण भी कर लेता है।

समय की व्यवस्था से रहित प्रवृत्तियों द्वारा ठीक और सुचारु रूप से काम नहीं लिया जा सकता, इसलिए कवि दिन और रात को यामक्रम से चार भागों में विभाजित करें। प्रातः काल उठकर संध्या-वन्दन करके भगवती सरस्वती का स्तुति पाठ करें। उसके बाद प्रहरान्त तक विद्याभवन में स्वस्थ होकर काव्य-विद्या और उपविद्याओं का अनुशीलन करें क्योंकि निरन्तर अनुशीलन से बढ़-कर प्रतिभा को उत्तेजित करने वाला और कोई साधन ही नहीं है। द्वितीय प्रहर में काव्य क्रिया का अभ्यास करें। मध्यान्त के पहले ही स्नान करें और अभीष्ट, शुद्ध,सात्विक तथा स्वास्थ्यवर्धक भोजन करें। भोजन के बाद कवि-गोष्ठी करें। कभी काव्य संबंधी प्रश्नोत्तर, कभी समस्यापूर्ति, कभी सुन्दरलेखनप्रतियोगिता और कभी चित्रयोग आदि कवि-गोष्ठी के विषय हों। चौथे प्रहर में अकेले अथवा परिमितपरिषद होकर उस दिन की की हुई रचना में आवश्यक संशोधन करें क्योंकि कविता रसावेश में की जाती है। इसलिए उस समय सदसद्विवेकिनी वुद्धि में अपेक्षित प्रभाव नहीं रहता। इस समय अविवक्षित को हटाना, न्यूनपदों की पूर्ति अन्यथा–स्थित में परिवर्तन और भूली बातों का अनुसंधान तथा सन्निवेश करना चाहिये।

सायंकाल में संध्या और सरस्वती की उपासना करें। फिर दिन में संशोधन की हुई रचना को रात्रि के प्रथम प्रहर तक लिख-वावें। थक जाने पर स्त्री के साथ विनोद कर श्रम दूर करें। रात्रि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



के द्वितीय और तृतीय प्रहर में निर्दोष-निद्रा में सोना अत्यन्त आवश्यक है। अच्छी तरह उचित सोना परमारोग्य और अभीष्ट विश्रान्ति का कारण होता है। प्रयत्न करके चाहे जैसे भी हो, चौथे प्रहर में अवश्य सोकर उठ जायँ क्योंकि उस समय मन प्रसन्न और मस्तिष्क स्वस्थ रहता है। ब्राह्म मुहूर्त में अल्प प्रयास से ही पदार्थों का प्रत्यक्षीकरण हो जाता है।

जो कवि गुहागर्भ अथवा भूमिगृहादि में प्रवेश कर निष्ठावृत्ति से कविता करते हैं उन्हें असूर्यंपश्य कहते हैं। जो कवि निष्ठावृत्ति से नहीं बल्कि भावनाओं की बाढ़ आने के ही कारण कविता करते हैं उन्हें निषण्ण कहते हैं। ये दोनों प्रकार के कवि चाहे जब कविता करें। इनके काव्य के लिए सभी समय हो सकते हैं। किंतु जिन कवियों की सेवावृत्ति है, जो जीविकोपार्जन के लिए स्कूल, पाठशाला, कालेज, दफ्तर अथवा अन्यत्र कहीं परतन्त्र हैं वे जब चाहें तब कविता नहीं कर सकते। उन्हें दत्तावसर कहते हैं। रात्रि में भोजन के पश्चात् जो तृप्ति होती है उससे दिन की क्लांति दूर हो जाती है और चित्त शान्त रहता है। इसलिए दत्तावसर कवि उस समय एकतान होकर कविता करें। रात्रि के चतुर्थ प्रहरार्ध को सारस्वत मुहूर्त कहा गया है। इस मङ्गलमय मुहूर्त में ध्यानावस्थित हो कर यदि रचना की जाय तो सर्वोत्तम हो सकती है। अथवा यात्रा के समय एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने में मध्यवर्ती जो अवकाश मिलता है उसे काव्य-कर्म में लगायें। उस समय भी एकान्त यात्रा में कवि की चित्तवृत्ति काव्यक्रिया के अनुकूल हो सकती है। यह अनुभव सिद्ध है कि पैदल अथवा साइकिल, मोटर, रेल, पालकी, या किसी भी सवारी से गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाने के समय तक, यदि कोई साथ न हो, चित्त को उद्वेजित करने का कोई विशेष कारण न हो और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



कवि-हृदय हो तो हृदय में बड़े सुन्दर भावों का जागरण होता है। यह न समझना चाहिये कि लेखन सामग्रियों के अभाव में उस समय आये हुए भाव फिर बाद में विस्मृत हो जायंगे। कवि के हृदय से जो भाव निकलते हैं वे इतने शीघ्र विस्मृत नहीं होते। भाव यदि सुन्दर और विषयानुकूल हैं तो वे कम से कम तब तक न खिसकेंगे जबतक उन्हें उल्लिखित न कर लिया जायगा। तात्पर्य यह है कि दत्तावसर कवि जब-जब यह समझें कि उन्हें काव्य करने का अवसर है और हृदय में कोई व्यवाय ( आर्ति ) नहीं है तब-तब कविता कर सकते हैं।

जो कवि प्रकरणविशेष के उपस्थित होने पर ही किसी मार्मिक इतिवृत्त को लक्ष्य कर कविता करते हैं उन्हें प्रायोजनिक कहा जाता है। प्रयोजन के अनुसार ही उनके काव्य की कालव्यवस्था होनी चाहिये।

कवियों को काव्य करने का अधिकार है लेकिन उसे नष्ट करने का नहीं क्योंकि यद्यपि काव्य उन्हीं के मस्तिष्क की उपज है फिर भी लोक का बहुत-कुछ कल्याण उस पर निर्भर रहता है; इसलिए काव्य पर समाज का भी अधिकार है। उचित यही है कि रचना ज्योंहीं प्रकाश में आने के योग्य हो जाय त्योंहीं उसे अनेकादर्शगत करे। पत्र-पत्रिकादिकों के द्वारा उनका प्रचार करने में तनिक भी संकोच न करें। काव्यविनाश के अनेकों कारण हो सकते हैं; निक्षेप, विक्रय, दान, देशत्याग, अल्पजीवन, आधी रचना के बाद कवि की मृत्यु, अग्नि, उपद्रव आदि। दरिद्रता, कुकर्म में विशेष प्रवृत्ति; अवज्ञा ( ऐसे व्यर्थ परिश्रम से क्या लाभ, आदि सोचना ), दुर्भाग्य ( मेरी योग्यता और परिश्रम की अपेक्षा अल्प बुद्धि और आलसी व्यक्ति अधिक सुखी जीवन व्यतीत कर लेते हैं और मेरा जीवन दुःख मय ही है, ऐसा सोचना ), अनुत्साह ( मेरे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



इतने सुन्दर काव्य का भी कोई उचित सत्कार नहीं करता, आदि विचार करना ), दुष्ट और शत्रुओं पर विश्वास करना आदि काव्य के लिए घातक सिद्ध होते हैं। 'अभी रहने दूँ, फिर कभी पूरा कर लूँगा, मित्रों से परामर्श कर संशोधन करना आवश्यक है' इत्यादि कवि की मानसिक चंचलता के कारण भी काव्य का नाश होता है।

राजा का धर्म है कि साहित्य की उन्नति के लिए कविसमाज को दान-दक्षिणादि से प्रोत्साहित करे। राजा यदि स्वयं कवि हो तो उत्तम है। उसके स्वयं कवि होने का प्रभाव कविसमुदाय पर विशेष पड़ता है। 'यथा राजा तथा प्रजा'। राजा के कवि होने पर प्राय: उसकी सारी प्रजा कवि-हृदय हो जाती है। राजा को चाहिये कि काव्य-परीक्षा के लिए तदनुकूल सभा का निर्माण कराए। इस सभा में सोरह स्तंभ हों, चार द्वार हों और आठ मत्त गज द्वार पर झूमते हों। सभा के समीप ही राजा का केलि-गृह हो जिससे कि सभा के वृहत्कार्य से जब वह क्लान्त हो जाय तब विनोद से उसका श्रम अनायास दूर हो सके। सभा के मध्य ऊँची मणि-खचित वेदिका पर राजासन हो। उसके उत्तर की ओर संस्कृत के कवि, वैदिक पौराणिक, धर्मशास्त्री और ज्योतिषी आदि क्रम से आसन ग्रहण करें। राजासन के पूर्व प्राकृत भाषा के कवि, नट, नर्तक, गायक, वादक, कथक, चारण और तालापचर ( ताली बजाने की कला में प्रवीण ) क्रम से बैठें। राजासन के पश्चिम दिशा की ओर अपभ्रंश भाषा के कवि, चित्रकार, मणिकार, रत्नकार, स्वर्णकार, यंत्रकार, लोहकार और काष्ठकार आदि क्रम से उपस्थित हों। और राजासन के दक्षिण की ओर भूत भाषा के कवि, बिट, वेश्याएँ, स्लवक ( तैराक ),

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



ऐन्द्रजालिक, दन्तोपजीवी, मल्ल तथा शस्त्रोपजीवी आदि तत्पर रहें।

ऐसी सभा में राजा कविगोष्ठी कराएँ, स्वस्थहृदय से समालोचन करें, और वासुदेव, सातवाहन, साहसांक आदि के समान काव्यपरीक्षा करके पारितोषिक वितरण करें। विद्वानों का उचित सत्कार अवश्य होना चाहिये। कविगोष्ठी के बीच-बीच में शास्त्रार्थ और मनोरञ्जन भी होना चाहिये जिससे कोई ऊब न जाय। तत्पश्चात् वैज्ञानिकों का सम्मेलन कराएँ। देश-देशान्तरों से जो दिग्गज आये हों उनसे अपने पण्डितों का सामना कराएँ; इससे दोनों को लाभ ही होगा। फिर उन्हें यथायोग्य पुरस्कार दिये जायँ। जो वृत्ति चाहते हों उन्हें वृत्ति दें।

इसके अतिरिक्त स्वमण्डलान्तर्गत अन्य बड़े-बड़े नगरों में भी काव्यप्रोत्साहन एवं परीक्षा के लिए ब्रह्मसभा करानी चाहिये। इस परीक्षा में जो सर्वप्रथम-श्रेणी में उतीर्ण हों उनका सम्मान 'ब्रह्मरथयान' अथवा 'पट्टबंध' से करें। ऐसा सम्मान पाटलिपुत्र में उपवर्ष, वर्ष, पाणिनि, पिङ्गल, व्याडि, वररुचि, पतञ्जलि का हुआ था और उसके बाद उज्जयिनी में महाकवि कालिदास, मेंठ, अमर, रूपसूर, भारवि, हरिश्चन्द्र और चन्द्रगुप्त का हुआ था।

———



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# कवि-कोष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवि-शिक्षा की अन्तिम कक्षा है 'परिचय प्राप्ति'। कविवर्ग की विभूति से जिन्हें आँच लगती है वे कहते हैं--शास्त्रेषु भ्रष्टाः कवयः। लेकिन सच तो यह है कि 'शास्त्रेषु भृष्टाः कवयः'। लोक अथवा शास्त्र की किसी भी दिशा में कवि से अधिक कौन जानता है? कवि को सर्वज्ञ होना होगा। तर्क, व्याकरण, नाट्य-शास्त्र, नीतिशास्त्र, कामशास्त्र, रामायण-महाभारत आदि, मोक्ष और आत्मयोग आदि, धातुविद्या, वादशास्त्र, रत्नशास्त्र, वैद्यक, ज्योतिष, धनुर्वेद, अश्वशास्त्र, गजशास्त्र, पुरुष लक्षण, द्यूत, इन्द्रजाल तथा प्रकीर्णशास्त्र का सम्यक् ज्ञान क्षेमेन्द्र के अनुसार कवि के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

इनके अतिरिक्त कवि को देश और काल का भी पूर्ण ज्ञान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



होना चाहिये। राजशेखर ने कहा है—देश संपूर्ण जगत और जगत के विभागविशेष को भी कहते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि स्वर्ग और भूलोक इन दोनों का समाहार जगत है, कुछ लोग कहते हैं कि स्वर्ग एक जगत है और पृथ्वी दूसरा जगत तथा कुछ लोगों का कहना है कि स्वर्ग. मर्त्य और पाताल ये तीन जगत हैं। कुछ लोगों का मत है कि जगत सात हैं; भू. भुव, स्व, मह, जन, तप, और सत्य। कुछ लोगों का विचार है कि उपर्युक्त सातो जगत् वायुमण्डल और पाताल में भी होते हैं। इस प्रकार उनके मत से एक्कीस जगत् हैं। इस तरह जगत के विषय में अनेक मतमतान्तर हैं। फिर भी सामान्यतः स्वर्ग, भू, और पाताल लोक ये तीन जगत माने गये हैं।

स्व, अव्यय, नाक, त्रिदिव, त्रिदशालय और सुरलोक आदि स्वर्ग के पर्यायवाची शब्द हैं। पर्याय-शब्दों के समझ लेने से पदार्थ की विशेषताएँ स्पष्ट हो जाती है, इसलिए प्रमुख और प्रचलित पर्यायों का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है।

स्वर्ग देवताओं का निवास है। विद्याधर, अप्सर, यक्ष, रक्ष, गंधर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध और भूत ये दस देव-योनियाँ हैं। सुर, अमर, विबुध, अमर्त्य वर्हिमुख ( वर्हि अर्थात अग्नि ही जिसका मुख है ) और वृन्दारक आदि देव के पर्याय हैं। ये अदिति की संतान हैं, इसलिए इन्हें आदितेय भी कहा जाता है। इन्हें स्वप्न नहीं होता इसलिए इनको अस्वप्नभी कहते हैं। ये कभी वृद्ध नहीं होते इसलिए इन्हें निर्जर कहते हैं। इनकी पलकें कभी नहीं गिरतीं। इन्हें गीर्वाण भी कहते हैं क्योंकि इनकी वाणी ही निग्रह और अनुग्रह में वाण की तरह सर्व-समर्थ होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सृष्टि करने वाले देवता ब्रह्मा हैं। आत्मभू, सुरज्येष्ठ, परमेष्ठी, पितामह, हिरण्यगर्भ, लोकेश, स्वयंभू, चतुरानन, धाता, अब्ज-योनि, विरंचि, कमलासन, स्रष्टा, प्रजापति, वेधा और विधाता आदि ब्रह्मा के पर्याय हैं। ब्रह्मा के पुत्र का नाम सनत्कुमार है।

सृष्टि का पालन करने वाले देवता विष्णु हैं। नारायण, कृष्ण, दामोदर, हृषीकेश, केशव, माधव, पुण्डरीकाक्ष, गोविन्द, गरुड़ध्वज, पीताम्बर, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र, चक्रपाणि, चतुर्भुज, पद्मनाभ, मधुसूदन, वासुदेव, श्रीपति, पुरुषोत्तम, वनमाली, कंसारि, विश्वंभर, और श्रीवत्सलांछन आदि विष्णु के पर्याय हैं। इनकी गदा का नाम कौमोदकी, खड्ग का नाम नन्दक और चक्र का नाम सुदर्शन है। ये कौस्तुभ मणि धारण करते हैं। गरुड़ इनके वाहन हैं। विष्णुरथ, सुपर्ण, खगेश्वर, पन्नगाशन और वैनतेय आदि गरुड़ के पर्याय हैं। विष्णु की स्त्री लक्ष्मी हैं। पद्मालया, पद्मा, कमला, श्री और हरिप्रिया आदि लक्ष्मी के पर्याय हैं।

भगवान शंकर सृष्टि का संहार करते हैं। शंभु, ईश, पशुपति, शिव, शूली, महेश्वर, ईश्वर, चन्द्रशेखर, भूतेश, गिरीश, मृत्युञ्जय, पिनाकी, कपर्दी, श्रीकण्ठ, नीलकण्ठ, वामदेव, महादेव, त्रिलोचन, धूर्जटि, हर, त्र्यम्बक, गङ्गाधर, वृषध्वज, भीम और रुद्र आदि शंकर के पर्याय हैं। क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर, यजमान, चन्द्र और सूर्य के अनुसार शिव की भिन्न-भिन्न मूर्तियों की भिन्न-भिन्न संज्ञाएँ हैं; क्षितिमूर्ति में 'सर्व्व', जलमूर्ति में 'भव', अग्निमूर्ति में 'रुद्र', गगन रूप में 'भीम', समीर रूप में 'उग्र', यजमान रूप में 'पशुपति', चन्द्रमूर्ति में 'महादेव' और सूर्यमूर्ति में 'ईशान'। शंकर के जटाजूट को कपर्द और धनुष को पिनाक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



कहते हैं। 'भूत' शिव के अनुचर हैं। गणेश और कार्तिकेय इनके दो पुत्र हैं। विनायक, विघ्नराज, गणाधिप, एकदन्त, हेरम्ब, लम्बोदर, और गजानन आदि गणेश के तथा षडानन, स्कन्द, सेनानी, गुह, कुमार, शिखिवाहन, और शक्तिधर आदि कार्तिकेय के पर्याय हैं। शंकर की स्त्री उमा हैं। कात्यायनी, गौरी, काली, शिवा, भवानी, रुद्राणी, सर्वमङ्गला, पार्वती, दुर्गा, चण्डिका और अम्बा आदि उमा के पर्याय हैं। कुबेर शंकर के परम मित्र हैं। ये धनके देवता और यक्षों के राजा हैं। धनद, राजराज, पौलत्स्य और नरवाहन आदि कुबेर के पर्याय हैं। [1]अलका इनकी पुरी है जो कैलाश पर्वत के पास है। इनके पुत्र का नाम नलकूबर, उद्यान का नाम चैत्ररथ और विमान का नाम पुष्पक है।

स्वर्ग और देवताओं के राजा इन्द्र हैं। मेघवाहन, सहस्राक्ष, सुरपति, वासव, शक्र, जिष्णु, पुरन्दर, पुरहूत, मघवा और

---

(१) महाकवि ने मेघदूत में लिखा है:—

अलका पुरी में वृक्ष सदा फूले-फले रहते हैं जिनपर भौरों की भीड़ लगी रहती है, सदा कमल खिले रहते हैं जिन्हें हंस घेरे रहते हैं, क्रीड़ा-मयूरों के बर्ह सदा चमकते रहते हैं, और प्रतिरात्रि ज्योत्स्ना से प्रसन्न रहती है; ऐसा नहीं कि ऋतुनियमों के अनुसार वृक्ष फूलें फलें, हेमन्त के प्रालेय से कमलकुल का विकाश हो जाय, मयूर केवल वर्षाकाल में ही बर्ह-युक्त हों और केवल शुक्लपक्ष में ही चन्द्रिका का विकाश होता हो।

वहाँ भी आंसू निकलते हैं लेकिन आनन्द के ही; शोकादिक अन्य निमित्तों से नहीं। वहाँ ताप होते हैं लेकिन केवल कामबाण के ही। वहाँ विग्रह होता है लेकिन केवल प्रणयकलह से ही। वहाँ के निवासियों की यौवन के अतिरिक्त और कोई अवस्था नहीं होती।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



विड़ौजा आदि इन्द्र के पर्याय हैं। इनकी राजधानी 'अमरावती' है। इनके घोड़े का नाम 'उच्चश्रवा', हाथी का नाम 'ऐरावत' अथवा 'अभ्रमातङ्ग', सारथी का नाम 'मातलि', प्रासाद का नाम 'वैजयन्त', वन का नाम 'नन्दन', पुत्र का नाम जयन्त और द्वारपाल का नाम देवनन्दी है। 'वज्र' इन्द्र का प्रधान आयुध है। शतकोटि, शम्ब, अशनि, पवि और कुलिश आदि वज्र के पर्याय हैं। इन्द्र की स्त्री शची हैं। शची को इन्द्राणी या पुलोमजा भी कहते हैं।

नारद आदि देवलोक के ऋषि हैं। देवसभा को सुधर्मा' कहते हैं। हवि देवताओं का भोज्य और सुधा उनका पेय है। स्वर्ग की गङ्गा को मन्दाकिनी, वियद्गङ्गा, स्वर्णनदी अथवा सुरसरि कहते हैं। मेरु देवताओं का आवास है। सुमेरु, हेमाद्रि, रत्नसानु और सुरालय आदि मेरु के पर्याय हैं। मन्दार, पारिजात, संतान, हरिचन्दन और कल्प ये पाँच देवलोक के वृक्ष हैं। देवलता 'नवमल्लिका' है। दो अश्विनीकुमार स्वर्ग के वैद्य हैं। उर्वशी, रंभा, मेनका, घृताची और तिलोत्तमा आदि अप्सराएँ देव-वेश्याएँ हैं। तुम्बूरु, विश्वावसु, चित्ररथ, हाहा और हूहू आदि देवलोक के गायक हैं। देवताओं के गुरु 'बृहस्पति' हैं। गुरु, धिषण, अङ्गिरस, वाचस्पति, और वागीश आदि बृहस्पति के पर्याय हैं। देवशिल्पी विश्वकर्मा हैं। देववाणी संस्कृत है. देवव्यच वेद हैं, देवपात्र अग्नि हैं। वह्नि, वर्हि, धनंजय, बृहद्भानु, कृशानु, पावक, अनल, हिरण्यरेता, दहन और चित्रभानु आदि अग्नि के पर्याय हैं। अग्नि विश्वानर के पुत्र हैं, इसलिए इन्हें वैश्वानर कहा जाता है। [1]इनके घोड़े का रङ्ग लाल है। काली, कराली मनोजवा,

(१) वरुणस्त्वसितानश्वान्कुवेरः कुमुदोपमान् ।
हुताशनः किंशुकाभावान् वायुवभ्रूंस्तथा वृणोत् ॥ — शालिहोत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी और विश्वदासा ये सात अग्नि की जिह्वाएँ हैं।

वायु अग्नि के सखा हैं। सदागति, गंधवह, अनिल, समीर अथवा समीरण, मरुत अथवा मारुत, जगत्प्राण, वात, पवन, पवमान और प्रभञ्जन आदि वायु के पर्याय हैं। पवन की संख्या उन्चास कही गई है। शरीरस्थवायु पांच हैं; प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। हृदयस्थ वायु 'प्राण', गुदास्थ 'अपान', नाभिस्थ 'समान', कण्ठस्थ 'उदान', और सर्वशरीरवर्ती 'व्यान' कहलाता है। अन्नप्रवेश, मूत्राद्युत्सर्ग, अन्नविपाचन, भाषणादि, निमेषादि व्यापार इन्हीं से संपन्न होते हैं।

[२]वायु आकाश के स्वामी हैं। व्योम, पुष्कर, अम्बर, नभ, अन्तरिक्ष, गगन, अनन्त, विष्णुपद आदि आकाश के पर्याय हैं। इन्द्र के वाहन मेघों का यह क्रीड़ास्थल है। धूम्रयोनि, घन, जीमूत, जलधर, पयोद धाराधर और वलाहक आदि मेघ के पर्याय हैं। मेघपरंपरा को कादम्बिनी कहते हैं। मेघ की ध्वनि को स्तनित्, गर्जित् अथवा रसित् कहते हैं। विद्युत् मेघ का हास्य है। शम्पा अथवा शम्बा, क्षणप्रभा, तड़ित, सौदामिनी, चंचला, चपला और ऐरावती आदि विद्युत् के पर्याय हैं। वृष्टिरोध को 'अवग्रह' कहते हैं। महावृष्टि को आसार कहते हैं। उपलवृष्टि को करका कहते हैं।

आकाश ग्रह और नक्षत्रों का स्थान है। सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु ये नवग्रह हैं। अश्विनी, भरणी, कृतिका, रोहिणी आदि सत्ताइस नक्षत्र हैं।

(२) 'शब्दाकाशबलानां च वायुरीशस्तथाकृतः।'—मुकुट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सूर्य, अङ्गिरा. अत्रि, पुलस्त्य. पुलह और क्रतु सप्तर्षि मण्डल में हैं। सूर्य ग्रहों के स्वामी हैं। भास्कर, प्रभाकर. मार्तण्ड, मिहिर, अरुण. पूषण. तरणि, मित्र, विरोचन, भानु, तपन, सविता, रवि. दिनकर आदि सूर्य के पर्याय हैं। इनके सात हरित वर्ण के घोड़े हैं इसलिए इन्हें सप्ताश्व अथवा हरिताश्व भी कहते हैं। इनके सारथी का नाम अरुण है। अरुण के जंघे नहीं हैं। ये कश्यप के पुत्र और गरुड़ के अग्रज हैं। सूर्य के पुत्र यमराज और पुत्री यमुना हैं। अन्तक, धर्मराज, पितृपति. समवर्ती, दण्डधर, श्राद्धदेव, काल आदि यम के पर्याय हैं। कालिन्दी. सूर्यतनया आदि यमुना के पर्याय हैं।

नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा हैं। हिमांशु, चन्द्र, इन्दु कुमुदबंधु, सुधांशु, ओषधीश, निशापति, सोम, कलानिधि, द्विजराज, शशधर, रजनीश आदि चन्द्रमा के पर्याय हैं। चन्द्रमा के षोड़शांश को कला कहते हैं। चन्द्र-चिह्न को कलंक, अंक, लाञ्छन और लक्षण भी कहते हैं।

उपर्युक्त नवो ग्रह राशियों पर चलते हैं। मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या. तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुंभ और मीन, ये बारह राशियाँ हैं। सभी ग्रहों में चन्द्रमा सबसे अधिक तेजी से चलते हैं। एक राशि से दूसरे राशि तक पहुँचने में सूर्य को प्रायः एक महीना, चन्द्रमा को सवा दो दिन, मङ्गल को डेढ़ महीने, बुध को एक्कीस दिन, बृहस्पति को एक साल, शुक्र को छब्बीस दिन, शनि को ढाई वर्ष और राहु तथा केतु को डेढ़ वर्ष लगते हैं। सूर्य और चन्द्रमा ये दोनों ग्रह तो सदा मार्गी रहते हैं अर्थात् निश्चित अवधि में सीधी चाल चलते हुए निश्चित मार्ग समाप्त करते हैं। लेकिन अन्य ग्रह कभीं वक्री और कभीं अति-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



चारी भी हो जाते हैं। बक्री का अर्थ है आगे न चल कर पीछे को चलना और अतिचारी का अर्थ है अधिक तेजी से चलना। अमावाश्या को सूर्य और चन्द्रमा समभाव में एक राशि पर रहते हैं, इसीलिए सूर्य का पूरा प्रकाश उनके ऊपर पड़ता है जिसमें वे खो से जाते हैं। सूर्य की गति मन्द और चन्द्रमा की अधिक होने के कारण चन्द्रमा ज्यों-ज्यों सूर्य से दूर-दूर होते जाते हैं त्यों-त्यों सूर्य का प्रकाश उनके ऊपर कम पड़ता है और फलतः चन्द्रमा का अधिकाधिक विम्ब प्रकाश में आता है। कृष्ण और शुक्लपक्षों का यही रहस्य है। 'पूर्णचन्द्र की एक-एक कला को देवता प्रतिदिन पीते-पीते अमावाश्या तक उन्हें कलामात्र-शेष बना देते हैं' यह कह कर उपर्युक्त तथ्य को धार्मिक स्वरूप ही दिया गया है। महाकवि ने भी रघुवंश के पंचम सर्ग में इस श्रुति को अपने साहित्य में स्थान दिया है।

जितनी देर में हमारा एक वर्ष व्यतीत होता है उतने ही समय में देवताओं का एक दिन और रात बीतती है। इसी को दैवअहोरात्र कहते हैं। हमारे जितने अहोरात्रों का एक हमारा संवत्सर होता है उतने ही 'दैवअहोरात्रों का 'दैवसंवत्सर' होता है। बारह हजार दैवसंवत्सर का एक महायुग होता है। ऐसे एक हजार महायुगों के बीतने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है। ब्रह्मा के एक दिन और एक रात को कल्प कहते हैं। इस प्रकार हमारे ८६४०००००० वर्षों का एक ब्राह्मअहोरात्र होता है। विधाता अपने दिन में सृष्टि की रचना कर सो जाते हैं। जब तक वे सोकर उठते हैं तबतक उनकी सृष्टि का प्रलय हो जाता है और फिर वे सृष्टि की रचना प्रारंभ कर देते हैं। हम जिसे महाकल्प कहते हैं वह तो ब्रह्मा का केवल एक दिन और रात है। ब्रह्मा की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



आयु उनके दिन-रात के हिसाब से सौ वर्षों की होती है। ३६० ब्राह्मअहोरात्र का एक ब्राह्मसंवत्सर, ५० ब्राह्मसंवत्सरों का एक परार्ध, और दो परार्ध की एक ब्राह्मशताब्दि होती है। इस प्रकार हमारे ३११०४०,००००००००० वर्षों में ब्रह्मा की आयु निःशेष हो जाती है। कुछ लोगों ने यह भी कहा है कि ७१ देवयुगों का एक इन्द्रपतन, १४ इन्द्रपतनों का एक मन्वन्तर और १४ मन्वन्तरों का एक ब्राह्मदिन होता है।

विधाता के एक हजार दिनों के अनन्तर भगवान विष्णु की एक घटिका होती है। जैसे ब्रह्मा अपने दिन-रात के हिसाब से १०० वर्षों तक जीवित रहते हैं उसी प्रकार विष्णु भी। हमारे ९३३१२०००००००००००००० वर्षों तक विष्णु जीवित रहते हैं।

भगवान विष्णु की १२ लाख घटिका भगवान रुद्र की अर्धघटिका के समान होती है। भगवान रुद्र अपने ऐसे सौ वर्षों तक जीवित रहते हैं। हमारे २२३९४८८०००००००००००-००००००० वर्ष भगवान रुद्र की आयु है। एक भगवान रुद्र की आयु में अनेकों विष्णु और एक भगवान विष्णु की आयु में अनेकों ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं तथा ब्रह्मस्वरूप में विलीन हो जाते हैं।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीनों प्रत्येक ब्रह्माण्ड के नायक हैं। एक ब्रह्माण्ड की आयु उतनी ही होती है जितनी रुद्र की। आजकल ब्रह्मा के द्वितीय प्रहरार्ध का प्रथम दिवस चल रहा है। इस प्रथम दिवस अर्थात् कल्प का नाम वाराहकल्प अथवा श्वेतवाराह कल्प है। यह वाराहकल्प हमारे ४३२००००००० वर्षों का है जिनमें से १९७२९४८९६८ वर्ष बीत चुके हैं।

सुमेरु देवपर्वत है। यहीं देवता रहते हैं इसलिए इसे सुरा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



लय कहा जाता है। यह पर्वत सोने का है इसलिए इसे हेमाद्रि कहते हैं। इसके शिखर देवरत्नमय है इसलिए इसे रत्नसानु भी कहा जाता है। सुमेरु पर्वत जम्बू द्वीप के मध्य में है। महाद्वीप सात हैं; जम्बूद्वीप, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर। जम्बूद्वीप सबके बीचोबीच है। प्लक्ष आदि छःवो द्वीप जम्बूद्वीप को क्रम से घेरे हुए हैं।

सुमेरु सर्वप्रथम वर्षपर्वत है। इसके चतुर्दिक् इलावृतवर्ष है। इसके उत्तर में तीन वर्षपर्वत हैं; नील, श्वेत और शृङ्गवान। नीलवर्षगिरि से सम्बद्ध रम्यकवर्ष, श्वेतवर्षगिरि से सम्बद्ध हिरण्मयवर्ष और शृङ्गवानवर्षगिरि से सम्बद्ध उत्तरकुरुवर्ष है। सुमेरु के दक्षिण में भी तीनवर्षगिरि हैं; निषध, हेमकूट और हिमवान। निषध से सम्बद्ध हरिवर्ष, हेमकूट से सम्बद्ध किंपुरुष-वर्ष और हिमवान से सम्बद्ध भारतवर्ष है। राजशेखर के अनुसार भारतवर्ष के नव प्रदेश थे; इन्द्रद्वीप, कसेरुमान, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान, नागद्वीप, सौम्य, गंधर्व, वरुण और कुमारी द्वीप। दक्षिण समुद्र से हिमालय तक १००० योजन का विस्तार माना जाता था। कुमारी द्वीप के अन्तर्गत सात पर्वत थे, विंध्य, परियात्र, शुक्तिमान, ऋक्ष, महेन्द्र, सह्य और मलय। हिमालय और विंध्यपर्वत के मध्यवर्ती देश को आर्यावर्त कहा जाता था।

काशी के पूर्व का भाग 'पूर्वदेश' कहा जाता था। पूर्वदेश के अन्तर्गत् अङ्ग, कलिङ्ग, कोसल, तोसल, मगध, मुद्गर विदेह, नेपाल, पुण्ड्र, प्राग्ज्योतिष, ताम्रलिप्तक, मलद, मल्लवर्तक, सुह्म और ब्रह्मोत्तर इत्यादि जनपद, बृहद्गृह, लोहितगिरि, चकोर, दर्दुर, नेपाल और कामरूप इत्यादि पर्वत तथा गङ्गा, करतोया, कपिशा आदि नदियाँ थीं। पूर्वदेश में लवली, ग्रन्थिपर्णक,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अगरु, द्राक्षा और कस्तूरिका आदि की उपज होती थी। यहाँ के निवासी प्रायः श्याम वर्ण के कहे गये हैं।

माहिष्मती के दक्षिण का भाग दक्षिणापथ कहा जाता था। दक्षिणापथ के अन्तर्गत् महाराष्ट्र, माहिषक, अश्मक, विदर्भ, कुन्तल, क्रथ कौशिक, सूर्पारक, कांची, केरल, कावेर, मुरल, वानवासक, सिंहल, चोल, दण्डक, पाण्ड्य, पल्लव, गाङ्ग, नाशिका, कोंकण, कोल्लगिरि और वल्लर इत्यादि जनपद, विंध्यका दक्षिणी भाग, महेन्द्र, मलय, मेकल पाल, मञ्जर, सह्य, श्रीपर्वत आदि पर्वत तथा नर्मदा, तापी, पयोष्णी, गोदावरी, कावेरी, भैमरथी, वेणा, कृष्णवेणा, वञ्जुरा, तुङ्गभद्रा, ताम्रपर्णी, उत्पलावती और रावणगङ्गा आदि नदियां थीं। यहाँ के निवासी प्रायः कृष्णवर्ण के कहे गये है।

देवसभा के पश्चिम का भाग पाश्चात्य देश कहा जाता था। पाश्चात्य देश के अन्तर्गत् देवसभ, सुराष्ट्र, दशेरक, त्रवण, भृगुकच्छ, कच्छीय, आनर्त, अर्बुद, ब्राह्मणवाह, यवन आदि जनपद और सरस्वती, श्वभ्रवती, वार्तघ्नी, मही, हिडिम्बा आदि नदियां तथा गोवर्धन, गिरनार, देवसम, माल्यशिखर, अर्बुद आदि पर्वत थे। पाश्चात्यदेश में करीर, पीलु, गुग्गुल, खजूर आदि की उपज होती थी। यहाँ के निवासी प्रायः पाण्डु वर्ण के हाते हैं ऐसा लेख मिलता है।

पृथूदक के उत्तर का भाग 'उत्तरदेश' कहा जाता था। उत्तरदेश के अन्तर्गत् शक, केकय, बोक्काण, हूण, वाणायुज, काम्बोज, बाह्लीक, वह्लव, लिम्पाक, कुलूत, कीर, तङ्गण, तुषार, तुरुष्क, बर्बर, हुरहूव, हुहुक, हंसमार्ग, रमठ, करकण्ठ आदि जनपद और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



हिमालय, कलिन्द, इन्द्रकील, चन्द्राचल आदि पर्वत तथा गङ्गा, सिंधु, सरस्वती, शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना, इरावती, वितस्ता, विपाश, कुहू, देविका आदि नदियाँ थीं। उत्तर देश में सरल देवदारु, द्राक्षा, कुंकुम, चमर, अजिन, सौवीर, स्रोतोञ्जन, सैंधव, वैदूर्य आदि की उपज होती थी। यहाँ के निवासियों का प्रायः गौर वर्णन हुआ है।

इन सब के बीच में जो देश था उसे मध्यदेश कहते थे। इस प्रकार मध्यदेश काशी से पश्चिम, माहिष्मती से उत्तर, देवसभा से पूरब और पृथूदक से दक्षिण था। यहाँ के निवासी सभी वर्णों के कहे गये हैं।

'अङ्ग' गङ्गा के दक्षिण तट पर एक विशाल राज्य था। इसकी राजधानी चम्पा थी। इसे अनंगपुरी भी कहते थे। लोगों का अनुमान है कि आधुनिक भागलपुर के आस-पास कहीं अनंगपुरी थी।

'कलिङ्ग' आधुनिक उड़ीसा से गोदावरी के उद्गम तक विस्तृत एक देश था। उसकी राजधानी कलिङ्ग नगर थी।

रामायण के अनुसार 'कोशल' सरयू के तट पर स्थित एक अत्यन्त समृद्ध देश था। यह उत्तरकोशल और दक्षिणकोशल इन दो भागों में विभक्त था। महाराज राम के उत्तराधिकारी कुश और लव ने क्रम से दक्षिण और उत्तर कोशल पर शाशन किया। कुश की राजधानी कुशावती और लव की राजधानी श्रावस्ती थी।

'मगध' की प्राचीन राजधानी गिरिव्रज अथवा राजगृह थी। गिरिव्रज में पाँच पर्वत थे; विपुलगिरि, रत्नागिरि, उदयगिरि, शोणागिरि और वैभारगिरि। कालान्तर में पाटलिपुत्र इसकी राजधानी हुई। मगध को बाद में कीकट भी कहा जाने लगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



'विदेह' मगध के उत्तर-पूर्व में स्थित था। इसकी राजधानी मिथिला थी जिसे जनकपुरी भी कहते थे। प्राचीन विदेह के अन्तर्गत आधुनिक सीतामढ़ी, सीताकुण्ड, तिरहुत जिले का उत्तरी भाग रहा होगा।

कहा जाता है कि आधुनिक तैलङ्गाना को ही प्राचीन काल में 'आंध्र' कहते थे। इसकी राजधानी अन्धनगर थी जिसे बाद में वेगी कहा जाने लगा। पश्चिम में पश्चिमी घाट और उत्तर तथा दक्षिण में गोदावरी और कृष्णा इसकी सीमाएं थीं।

अवन्ती नर्मदा के उत्तर में स्थित थी। इसकी राजधानी उज्जयिनी शिप्रा के तट पर स्थित थी। उज्जयिनी को अवन्तिपुरी, आवन्ती अथवा विशाला भी कहते थे। महाभारत के समय में दक्षिण में नर्मदा के तट तक और पश्चिम में मही तक इसका विस्तार था।

ताम्रलिप्ता के उत्तर से कपिशा नदी तक विस्तृत 'उत्कल' देश संभवतः आधुनिक उड़ीसा में स्थित था। जगन्नाथजी का प्रसिद्ध मन्दिर वहीं है।

लौहित्य अथवा ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर प्राग्ज्योतिष 'कामरूप' विशाल राज्य की राजधानी थी। कामरूप का विस्तार कारतोया अथवा सदानीरा नदी के तट से आसाम की सीमा तक, उत्तर में हिमालय और पूर्व में चीन की सीमा तक था। कहा जाता है कि महाभारत के युद्ध में कामरूप के महाराज ने किरातों की सेना के साथ दुर्योधन का पक्ष ग्रहण कर युद्ध किया था।

'काम्बोज' हिन्दूकुश पर्वत से तिब्बत तक विस्तृत था। यह देश उत्तम घोड़ों, और ऊनके शाल आदि के लिए प्रसिद्ध था।

'कुन्तल' राज्य चोल के उत्तर में स्थित था। इसकी राजधानी का



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



नाम कल्याण था। संभवतः यह आधुनिक हैदराबाद के दक्षिण-पश्चिम भाग में था।

दक्षिणी घाट और उत्तर कावेरी के मध्यवर्ती देश को 'केरल' कहते थे। नेत्रवती, सरावती और काली आदि यहाँ की प्रमुख नदियाँ थीं।

कौशाम्बी 'विस्ता' की राजधानी थी। प्रयाग से लगभग तीस मील दूर आधुनिक कोसम नामक स्थान पर संभवतः यह स्थित थी।

पुण्ड्र आधुनिक उत्तरी बंगाल का प्राचीन नाम था। इसे गौड़ भी कहते थे।

कुछ लोगों का विचार है कि चेदि राज्य वहीं स्थित था जहाँ आधुनिक मध्यभारत में बुन्देलखण्ड। चेदि का दूसरा नाम त्रिपुर भी था। त्रिपुरी इसकी कभी राजधानी थी।

कावेरी नदी के तट पर स्थित चोल राज्य मैसूर के उत्तरी भाग तक फैला था। पुलकेशी को कावेरी पार करके चोल पर आक्रमण करना पड़ा था। इसी को बाद में कर्नाटक कहा जाने लगा।

विदिशा 'दशार्ण' की राजधानी थी। यह वेत्रवती के तट पर थी। इसका वर्णन मेघदूत और कादम्बरी में किया गया है। दशार्ण मालव का दक्षिणी भाग था।

आधुनिक मद्रास के दक्षिण-पश्चिम में वेगवती के तट पर स्थित कांची 'द्रविड़' की राजधानी थी।

कहा जाता है कि जहाँ आजकल उत्तर भारत में कुमायूँ है उसी के आसपास कहीं 'निषध' राज्य था जहाँ महाराज नल राज्य करते थे। अलकनन्दा के तट पर स्थित अलका इसकी राजधानी थी।

राजशेखर ने गंगा और यमुना के बीच में 'पांचाल' की स्थिति बतायी है। भागीरथी का उत्तरी भाग उत्तर पांचाल और दक्षिणी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



भाग दक्षिण पांचाल कहा जाता था। महाभारत में यहाँ के राजा द्रुपद के निधन होने पर यह हस्तिनापुर में मिला लिया गया।

आधुनिक नागपुर मण्डल में चन्द्रपुर के पास कहीं 'पद्मपुर' था। यहीं संस्कृत के सुप्रसिद्ध कवि भवभूति की जन्मभूमि थी।

'महोदय' को कान्यकुब्ज अथवा गाधिनगर भी कहा जाता था। कहते हैं कि आधुनिक कन्नौज जहाँ है वहीं पर महोदय स्थित था। सत्रहवीं शताब्दि तक भारत में इसका सविशेष सम्मान था।

नर्मदा का उद्गम मेकल पर्वत से है। नर्मदा के पश्चिम 'लाट' देश था। कुछ लोगों का विचार है कि आधुनिक भड़ूच, बड़ौदा और अहमदाबाद लाट देश में ही थे।

पूर्वीय बंगाल को 'बंग' अथवा समतट कहते थे। बंगाल का समुद्रतट भी इसी के अंतर्गत था।

'सौराष्ट्र' को आनर्त भी कहा जाता था। इसकी राजधानी वलभी थी।

आधुनिक पंजाब में प्राचीन भारत की वाह्लीक, वाहीक जातियाँ रहती थीं। इन जातियों से अधिकृत प्रदेश उत्तम घोड़ों के लिए प्रसिद्ध था।

कुंतल के उत्तर कृष्णा के तट से लेकर नर्मदा के तट तक फैला हुआ 'विदर्भ' एक महान राज्य था। इसके महाविस्तार के कारण ही इसे महाराष्ट्र भी कहा जाता था। कुण्डिनपुर इसकी राजधानी थी। वरदा नदी के द्वारा यह दो भागों में विभक्त था। उत्तर विदर्भ की राजधानी अमरावती और दक्षिण विदर्भ की राजधानी प्रतिष्ठान थी।

समुद्रों की संख्या सात कही गई है; लवण, रस, सुरोदक, घृत, दधि, जल, दुग्ध। कुछ लोगों का मत है कि केवल लवण ही एक समुद्र है। कोई-कोई समुद्रों की संख्या तीन और कोई-कोई चार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



भी कहते हैं। जल के देवता वरुण हैं। वरुण को प्रचेता अथवा पाशी भी कहा जाता है।

भूलोक के नीचे पाताल लोक है। अधोभुवन, बलिसद्म और रसातल आदि पाताल के पर्याय हैं। यही नागलोक भी है। नागों के स्वामी शेषनाग हैं। शेषनाग को अनन्त भी कहा जाता है। पृथ्वी को शेषनाग ही अपने फणों पर उठाये हुए हैं ऐसा आस्तिक भारतीयों का विश्वास है। शास्त्रों में कुछ ऐसे सर्पों का भी उल्लेख है जिनकी फणा और पूँछ तो सर्पों जैसी होती है लेकिन आकार मनुष्यों का सा होता है। लेकिन इनकी गणना सर्पों के अतिरिक्त देवयोनि में की गयी है। सर्पों के राजा वासुकिनाग हैं। गोनस अथवा तिलित्स और अजगर आदि सर्प की जातिविशेष हैं। जल में रहने वाले सर्प को अलगर्द कहते हैं। जिस साँप के दो मुख हों और उसमें विष न हो उसे राजिल अथवा डुण्डुभ कहते हैं। चित्र-सर्प को मालुधान अथवा मातुलाहि कहते हैं। भुजग, भुजङ्ग, भुजङ्गम, विषधर, व्याल, कुण्डली, चक्षु-श्रवा, काकोदर, फणी, उरग, पन्नग, भोगी और पवनाशन आदि सर्प के पर्याय है।

तपन, अवीचि, महारौरव, रौरव, संहार और कालसूत्र आदि नरक के भेद हैं। नरक में प्रेतों का वास होता है। नरक की नदी वैतरणी है।

गङ्गा–यमुना के बीच में कुरुक्षेत्र और प्रयाग के मध्यवर्ती देश को 'अन्तर्वेदि' कहते हैं। आचार्यों का मत है कि इसी अन्तर्वेदि को केन्द्रमान कर दिशाओं का विभाग करना चाहिये। राजशेखर का विचार है कि इसमें भी विशेष कर महोदय ( कान्यकुब्ज ) को केन्द्र मानना चाहिये।

पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं को क्रम से प्राची, अपाची, प्रतीची और उदीची कहते हैं। दक्षिण-पूर्व के कोण को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



आग्नेय, दक्षिण-पश्चिम के कोण को नैऋत्य, उत्तर-पश्चिम के कोण के वायव्य और उत्तर-पूर्व के कोण को ऐशान कहते हैं। इनके अतिरिक्त ऊर्ध्व और अध ये दो दिशायें और मानी गयी हैं। पुराणों के अनुसार पूर्व दिशा के स्वामी इन्द्र, आग्नेय कोण के स्वामी अग्नि, दक्षिण दिशा के स्वामी यम, नैऋत्य कोण के स्वामी निऋति, पश्चिम दिशा के स्वामी वरुण, वायव्य कोण के स्वामी वायु, उत्तर दिशा के स्वामी कुबेर, ऐशान कोण के स्वामी ईशान, उर्ध्व दिशा के स्वामी ब्रह्मा और आधोदिशा के स्वामी नाग हैं। राजशेखर का मत है कि चित्रा और स्वाती नक्षत्रों के बीच की दिशा पूर्व, उसके सामने पश्चिम, ध्रुवतारा की ओर उत्तर और उसके सामने दक्षिण दिशा है। इनके अन्तराल में अवान्तर दिशाएँ हैं। ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अञ्जन, पुष्पदन्त, सार्वभौम और सुप्रतीक आदि एक-एक दिशा के दिग्गज कहे गये हैं। अभ्रमु, पिङ्गला, अनुपमा, ताम्रकर्णी, शुभ्रदन्ती, अङ्गना और अञ्जनावती आदि एक-एक दिशा की दिक्करिणी कही गई हैं।

दो क्षणों का एक 'लव' और दो लवों का एक 'निमेष' होता है। पन्द्रह निमेषों की एक 'काष्ठा' तीस काष्ठाओं की एक 'कला' तीस कलाओं का एक 'मुहूर्त' तीस मुहूर्तों का एक 'अहोरात्र' ( दिन-रात ) होता है। काल विभाग के ये ही भारतीय प्रारम्भिक माप हैं।

इस काल-मान को 'सौर' कहते हैं। सौर का अर्थ है 'सूर्य के अनुसार'। पन्द्रह अहोरात्रों का एक पक्ष होता है। शुक्ल पक्ष वह है जिसमें चन्द्रमण्डल प्रतिदिन बढ़ता है और कृष्णपक्ष वह है जिसमें चन्द्रमण्डल प्रतिदिन घटता है। दो पक्षों का एक मास होता है। मास के आदि में शुक्ल पक्ष और तदनन्तर कृष्णपक्ष होता है। इस समय-मान को 'पित्र्य' कहते हैं। इसी मान के अनु-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सार सभी वैदिक क्रियाएँ होती हैं। लेकिन आर्यावर्त के निवासी मास में प्रथम कृष्णपक्ष और तदनन्तर शुक्लपक्ष मानते हैं। ऐसे मास को 'चान्द्रमास' कहते हैं।

जिस मास की पूर्णिमातिथि को मृगशीर्ष नक्षत्र होती है उसे मार्गशीर्ष ( अगहन ), पुष्य नक्षत्र होती है उसे पौष, मघा नक्षत्र होती है उसे माघ, फाल्गुनी नक्षत्रें होती हैं उसे फाल्गुन, चित्रा नक्षत्र होती है उसे चैत्र, विशाखा नक्षत्र होती है उसे वैशाख, ज्येष्ठा नक्षत्र होती है उसे ज्येष्ठ, अषाढ़ नक्षत्र होती है उसे आषाढ़, श्रवण नक्षत्र होती है उसे श्रावण, भद्रपदा नक्षत्र होती है उसे भाद्रपद ( भादों ), अश्विनी नक्षत्र होती है उसे आश्विन ( कुवार ), कृत्तिका नक्षत्र होती है उसे कार्तिक कहते हैं।

चैत्र में दिन और रात सम होती है। चैत्र के पश्चात् तीन मास पर्यन्त प्रतिमास दिन में एक-एक मुहूर्त की वृद्धि और रात्रि में एक-एक मुहूर्त का ह्रास होता है। फिर तीन महीने तक प्रति-मास रात्रि में एक-एक मुहूर्त की वृद्धि और दिन में एक-एक मुहूर्त का ह्रास होता है। इस प्रकार आश्विन तक दिन-रात फिर बराबर हो जाते हैं। इसके बाद फिर तीन महीने तक दिन का एक-एक मुहूर्त बढ़ना और उसी हिसाब से रात का घटना तथा उसके अनन्तर रात का एक-एक मुहूर्त बढ़ना और दिन का उसी क्रम से घटना होता रहता है। चैत्र में फिर रात-दिन बराबर हो जाते हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि सूर्य के एक राशि से दूसरी राशि तक जाने में एक महीना लगता है। ऐसे दो-दो मासों की एक ऋतु होती है। मार्गशीर्ष और पौष में हेमन्त ऋतु, माघ-फाल्गुन में शिशिर ऋतु, चैत्र और वैसाख में बसन्त ऋतु, ज्येष्ठ और आषाढ़ में ग्रीष्म ऋतु, श्रावण और भाद्रपद में वर्षा ऋतु तथा आश्विन और कार्तिक में शरद ऋतु होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



कुछ लोगों का विचार है कि हेमन्त में पश्चिमी पवन बहता है और कुछ लोग कहते हैं कि उत्तरी पवन बहता है। शिशिर में भी ऐसी ही हवाएँ बहती हैं। बसन्त में दक्षिणी पवन बहता है। कुछ लोग कहते हैं कि बसन्त में नैऋत्य कोण की हवा बहती है और कुछ लोगों का विचार है कि बसन्त में यह निश्चित नहीं कि कौन सी हवा बहती है। कवि के देश में वर्षा ऋतु में पूर्वीय पवन ही बहता है। शरद में बहने वाली वायु की कोई निश्चित दिशा नहीं है।

ऋतुओं की चार अवस्थाओं का वर्णन मिलता है; संधि, शैशव, प्रौढ़ि और अनुवृत्ति। दो ऋतुओं के मध्यवर्ती काल को ऋतु:संधि कहते हैं। ऋतु का कुमारभाव ऋतुशैशव, प्रौढ़भाव ऋतुप्रौढ़ि कहा जाता है। ऋतुविशेष के व्यतीत होने पर भी जो उसके लक्षण दिखायी पड़ते हैं उसे अनुवृत्ति कहते हैं।

वसन्त के उल्लेख में पतझड़, गुलाबों की चटकाहट, जलाशयों में कमलादि का विकाश, तरु-लताओं का नवपुष्पित-पल्लवित होना, आवश्यकतानुसार सफलभाव, रसाल में मञ्जरी, शीतल-मंद-सुगंध दक्षिण-समीरण, सौरभ की चहल-पहल, अलियों का गुञ्जन, कोकिलकुल का कूजन, पीत प्रकृति, काम का स्फुरण, पलासादिकों का फूलना, पराग का उड़ना, सरसों आदि के खेत, संयोगियों का उल्लास और वियोगियों की विरहवेदनाओं का नाना उपमा-उत्प्रेक्षादिकों से अनुप्राणित वर्णन करना चाहिये। वसन्त में कोकिल की कूक वियोगियों के हृदय को टूक-टूक कर देती है, शीतल-मन्द-सुगन्धित समीर से उनके विरह की ज्वाला अधिकाधिक भड़कती है, द्रुमों का आलिंगन किए हुए पुष्पित लताएँ उन्हें अधीर किये देती हैं, कुसुमित कदम्ब की डालियाँ उन्हें मारे डालती हैं, पलास के लाल फूल उन्हें अङ्गारे मालूम पड़ते हैं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



आम के बौरों को देख कर वे बौरे हो जाते हैं; और इसी तरह।

ग्रीष्म ऋतु के प्रसङ्ग में मालती-पाटल आदि पुष्प, प्रचण्ड आतप से व्याकुल जीव-जन्तु और सृष्टि, आतप निवारण योग्य पदार्थ जैसे खस-घनसार-फुहारे आदि, बवण्डर, लूक, थके-माँदे, प्यासे-छाया ढूढ़ते हुए बटोही, सूखी हुई सर-सरिताएँ, मृगतृष्णा, आम्र आदि के पके फल इत्यादि वर्णन के विषय होते हैं।

'तवासी तपत धरामण्डल अखण्डल औ
मारतण्डमण्डल दवा सों होत भोर तै।'

'जब पीयो तब पीयो अब पीयो फेर अब,
पीवत हूँ पीवत बुझै ना प्यास पापिनी।'

'लूका भयो आसमान भूधर भभूका भयो
भभकि भभकि भूमि दावा उगलति है।'

'चन्दन किवार घनसार के पगार बीच
तऊ आनि ग्रीषम की झार झपटति है।'

'मेरे जान, काहू वृभभान जग मोचन को
तीसरे त्रिलोचन को लोचन खुलायो है।'

'निरखि दुपहरी जेठ की छाहौं चाहति छाँह।'

वर्षा ऋतु के प्रसङ्ग में आकाश में घटाएँ, नये-नये बादल, दामिनी, इन्द्र धनुष, वर्षा की झड़ी, बादलों का गर्जन, झंझा, पंक, उमड़ी सर-सरिताएँ, हंसों का प्रस्थान, दादुर का शोर, मयूर, वक, इन्द्रवधू जुगुनू, हरित और आर्द्र प्रकृति, प्रसन्न कृषक, कदंब, केतकी आदि, मलीन रवि-शशि, पथिकों का प्रस्थान, नायिकाओं की उत्सुकता, प्रिय की प्रतीक्षा, हिड़ोला, सावन की झड़ी इत्यादि का वर्णन करना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



'लहरि-लहरि बीज फहरि-फहरि आवैं
घहरि-घहरि उठैं बादल अषाढ़ के ।'
'लगन लगावन है मदन जगावन है
चातकी को गावन है आवन अषाढ़ की ।'
'बीजुरी उजेरा होत कौंधाचक फेरा होत
घनन को घेरा होत डेरा होत काम को ।'
'आयो सखि, सावन मदन सरसावन
सुलाग्यो बरसावन सलिल चहुँओर तें ।'
'दादुर नकीब चहुँओर सों पुकार करैं
मोरन की हांक सुनि सुरन जगायो है ।'
'झमक झरी की शोभा पौन के झकोरे की
घमक घटा की तामें रमक हिंडोरे की ।'

वर्षा ऋतु के बादल वियोगियों पर आग बरसाते हैं ।

'भरकी विरह आग करकी कठिन छाती
दरकी सजल जलधर की धमाक तें ।'
'पाऊँ जो पकरि कहूँ जाल सों जकरि तन,
फीहा-फीहा करौं या पपीहा दई मारे को ।'
'इन्द्र ते कहौ कि मैं मरी हौं आप ही ते धनु
रकत चमोरी तरवार सी निकारै ना ।'
'मार डारैं मदन, मरोर डारैं दादुर ये
दाबै आवैं बादर दबाये आवै दामिनी ।
'डग भई बावन की सावन की रतियाँ ।'
'पातकी पपीहा जलपान को न प्यासो काहू
विथित वियोगिन के प्रानन को प्यासो है ।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



शरद ऋतु के प्रसङ्ग में निरभ्र आकाश, कहीं-कहीं विरल वृष्टि, स्वच्छ दिशाएँ, धुली हुई प्रकृति, प्रसन्न चन्द्रमण्डल, निर्मल जल, सुगम मार्ग, बिना धूल की पृथ्वी सारस-हंस-चकोर-खञ्जन आदि का उदय, हरसिंगार और काश आदि का फूलना, कुश की वृद्धि, मोर के झरते हुए पुच्छ इत्यादि का वर्णन किया जाता है। शरद ऋतु की ज्योत्स्ना विरहियों को बड़ा कष्ट देती है।

'घन घेरो छुटिगो हरषि, चली चहूँ दिशि राह।
कियो सुचैनो आय जग, शरद शूर नर नाह ॥'

'मन अरुझावनी रसिक रास रस रंग,
भावनी सरद रैन सरद सुहावनी।'
'खंजन लखावैं कान्ह नैन मन रंजन से
सरद सुहावै कला कंजन विशाल की।'
'आयो री शरदकाल दरद बढ़ावन को
जरद करै है हमैं शोभा नन्दलाल की।'
'फूले आस-पास कास विमल विकास बास
रही न निशानी कहूँ महि में गरद की।'

हेमन्त ऋतु के प्रसंग में शीत और रात का बढ़ना, दिनमान का घटना, सूर्य और अग्नि का निर्बल होना, लोगों का अंगीठी से प्यार करना, मुख आदि से धूम का निकलना, तुषार, हिम समीर, और शीतनिवारण का वर्णन करना चाहिये। हेमन्त संयोगियों के लिए आनन्द-दायक और वियोगियों के लिए घातक कहा गया है।

'आवत जात न जानियत, तेजहिं तजि सियरान।
घरहि जमाई लौं घस्यो, खस्यो पूस दिनमान ॥
ज्यों-ज्यों बढ़ति विभावरी, त्यों-त्यों बढ़त अनन्त।
ओक-ओक सब लोक सुख, कोक-शोक हेमन्त ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अग्निदिशा दिनपति दुर्‌यो, हिमऋतु महँ हिम पीन।
अग्नि दुरत नर गोद महँ, नृपगति कहँ पुनि दीन॥'

'पावक खिलौना करि आयो है हिमन्त भूमि
दन्तन पिसावतो दिगन्त के नरन को।'
'आयो है हिमन्त चित्त चौगुनो चुराये लेत
नौगुनो न सौगुनो समीर सीत नाये देत।'
'परत तुषार भार काँपै हिय हार-हार,
रजनी पहार दिन आगी जैसे फूस की।'
जैसे-तैसे कान्ह षटमास लों वितीत कर्‌यो,
निपट जवाल भई काल रैन पूस की॥'

शिशिर ऋतु का वर्णन करते हुए सेनापति ने कहा है—

'शिशिर में शीत को सरूप पावै सविता हू,
घामहू में चाँदनी की दुति दमकति है।
'सेनापति' सीतलता होति है सहस गुनि,
रजनी की झाँई दिन हू में झमकति है।
चाहत चकोर सूर ओर दृग छोर करि,
चकवा की छाती तजि धीर धसकति है।
चन्द को भरम मोद होत है कुमोदिनी को,
ससि संक पंक जनि फूलन सकति है॥'

कवि 'वेणी' ने कहा है—

'नारी बिन होत नर नारी बिन होत नर
राति सियराति उरू लाये पयोधर में।
बेनी कवि शीतल समीर को सनाका सुनि,
सोवैं सब साँझ ही कपाट दै सहर में।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



पच्छी पच्छ जोरे रहैं फूल-फल थोरे रहैं,
पाला को प्रकाश आस-पास धराधर में।
बसन लपेटे रहैं तऊ जानु फेटे रहैं,
शीत के ससेटे लोग लेटे रहैं घर में ॥'

तीन ऋतुओं का एक अयन होता है। वर्षाऋतु से छः महीने तक सूर्य दक्षिण की ओर रहते हैं और शिशिर ऋतु से छः महीने तक उत्तर की ओर रहते हैं। इन्हों को दक्षिणायन और उत्तरायण कहते हैं।

बारह मास अथवा छः ऋतुओं अथवा दो अयनों का एक मानवीय संवत्सर होता है। संवत्सर का प्रारंभ चैत्र मास से होता है। ज्योतिषियों के मत से संवत्सर श्रावण से प्रारम्भ होता है।

१७२८००० मानवीय वर्षों का सतयुग, १२९६००० वर्षों का त्रेतायुग, ८६४००० वर्षों का द्वापर युग और ४३२००० वर्षों का कलियुग होता है। आज कल सत्य, त्रेता, द्वापर युग बीत कर कलियुग के ५००० वर्षों से अधिक बीत चुके हैं।

राजा के प्रसंग में अमात्य, कर्मसचिव, महामात्र, पुरोहित, अक्षदर्शक, प्रीतहार, रक्षिवर्ग, कनकाध्यक्ष, रूप्याध्यक्ष, अन्तःपुर, अन्तःपुराधिकृत, अनुजीवी, वयस्य, विदूषक, पारिषद, पार्ष्णिग्रह, मंत्रणा, राज्यविस्तार, नीति, गुण, रानी, राजकुमार, सेनाधिप, सैन्य, दूत, दुर्ग, हस्ती, अश्व, रथ, प्रयाण, युद्ध, राजधानी, प्रासाद, क्रीड़ोद्यान, आखेट, कर, चामर, सिंहासन, छत्र, शिविर, वैतालिक (प्रातःकाल राजा को जगाने वाले), मागध (वंशपरंपराप्रशंसक) वन्दी (स्तुति-पाठक), बन्दिशाला, बंधनगृह, वधस्थल, गणिका, शत्रु का अपकर्ष, राजा का दक्षिणनायकत्व आदि वर्णनीय विषय हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सभी सन्निधिनृपवर्ग जिसके वश में हो उसे अधीश्वर कहते हैं। भूमि के एकदेश के स्वामी को मण्डलेश्वर कहते हैं। जिस राजा ने राजसूय यज्ञ किया हो उसे सम्राट कहते हैं। कुछ लोगों का मत है कि जिसके अधीन बारह राजमण्डल हों उसे सम्राट कहते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि जिसके अधीन सभी नृप-वर्ग हो उसे सम्राट कहते हैं।

स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, बल और परस्परोपकार ये सात राज्य के अंग कहे गये हैं।

संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध और आश्रय ये छः राजगुण कहे गये हैं। मित्रता स्थापित करने को 'संधि' कहते हैं। दाह, लुण्ठन, उच्छेद आदि के द्वारा परमण्डल का विनाश करना 'विग्रह' कहा जाता है। विग्रह के तीन भेद हैं; प्रकाश, कुट और तूष्णी। प्रायः बढ़ते हुए विपक्षी की शक्ति का ह्रास अथवा नाश करने के लिए की गयी यात्रा को 'यान' कहते हैं। यान पाँच प्रकार का होता है; विगृह्ययान, संधायययान, संभूययान, प्रसंगयान और उपेक्ष्ययान। शत्रु के बल, द्रव्य, जनपद, वास आदि का अपहरण कर आगे बढ़ने को विगृह्ययान कहते हैं। शून्यराज्य ग्रहण में समर्थ शत्रु से संधि कर उसके संमुख जाने को संधायययान कहते हैं। बलवान शत्रु से संधि कर उसके साथ किसी दूसरे शत्रु पर चढ़ाई करने को संभूययान कहते हैं। प्रकृत उद्दिष्टयान के अन्तर्गत प्रसंगवश आवश्यकता पड़ने पर जो यान किया जाय उसे प्रसंग-यान कहेंगे। शत्रु पर चढ़ाई करते समय मार्ग में प्राप्त शत्रु के मित्रों के प्रति जो यान किया जाता है उसे उपेक्ष्ययान कहते हैं। यान के प्रसंग में नीराजनाविधि ( प्रस्थान के पहिले शस्त्रादिकों का पूजन ) भूमि का हिलना, रणभेरी का बजना, धूल से सूर्य का छिपना आदि वर्णनीय विषय हैं। 'अभी युद्ध करने की सामर्थ्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



मुझमें नहीं है' यह सोच कर उचित समय की प्रतीक्षा करते हुए अपेक्षित शक्ति का संचय करना 'आसन' कहलाता है। आसन भी पाँच प्रकार का होता है; विगृह्यासन, संधायासन, संभूयासन, प्रसंगासन और उपेक्ष्यासन। स्पष्ट विग्रह द्वारा शत्रु का विनाश करने में असमर्थ होने पर किसी भी प्रकार से उसके देश पर अधिकार जमाकर उसके दुर्ग में प्रवेश कर विग्रहपूर्वक रहने को विगृह्यासन कहते हैं। युद्ध में क्षयमाण दो तुल्यबल वाले राजाओं का परस्पर संधि कर लेना संधायासन कहलाता है। शत्रु अत्यन्त पराक्रमी है, उसके भय से अपने दुर्ग में भी रहना कठिन है; ऐसी दशा में किसी उससे भी बली मित्र के साथ रहना संभूयासन कहा जाता है। शत्रु पर चढ़ाई करने पर किसी मित्र के यहाँ प्रसंगवश डेरा डाल देने को प्रसंगासन कहते हैं। शत्रु बली है, किन्तु अपनी दुर्नीति के कारण वह स्वयं अपना उत्तरोत्तर ह्रास कर रहा है। ऐसी दशा में चुपचाप उचित अवसर की प्रतीक्षा करने को उपेक्षासन कहते हैं। 'द्वैध' भी कई प्रकार का होता है। दो बलवान शत्रुओं के मध्य ऐसा आचरण करना जिससे वह भी अनुकूल बना रहे और यह भी; एक। बली के साथ संधि और निर्बल के साथ विग्रह करना; दो। शत्रु की मूल प्रकृतियों के साथ संधि और शत्रु से विग्रह करना; तीन। 'आश्रय' दो प्रकार का होता है। एक तो, बलवान शत्रु द्वारा अपना विनाश निश्चित समझ कर किसी धार्मिक बलवत्तर का आश्रयण करना। दूसरा, उस बलवान शत्रु की ही सेवा करना अथवा उसे अपने कोषादि देकर उसकी अधीनता स्वीकार करना।

तीन शक्तियाँ कही गयी हैं; प्रभुशक्ति, उत्साहशक्ति और मंत्र-शक्ति। कोषदण्डज शक्ति को प्रभुशक्ति कहते हैं। इसी को प्रताप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



या प्रभाव भी कहा जाता है। विक्रमबल को उत्साहशक्ति कहते हैं। मंत्रशक्ति स्पष्ट है।

भेद, दण्ड, साम और दान ये चार उपाय कहे गये हैं। शत्रु के अमात्यादिकों को कौशल से शत्रु के विरुद्ध कर अपने अनुकूल बना लेने को भेद कहते हैं। निग्रह के ारा दमन करना दण्ड कहलाता है। प्रिय वचनादिकों का प्रयोग कर क्रोध को शान्त करने को साम कहते हैं। साम पाँच प्रकार का कहा गया है; परस्परोपकार का दर्शन, गुणकीर्तन, सम्बन्ध का आख्यान, मैत्रीभाव का प्रकाश, मधुरवाणी द्वारा आत्मसमर्पण। दान स्पष्ट है।

महाकवि ने महाराज दिलीप के वर्णन में कहा है--जैसे समुद्र में रत्नादि होने के कारण लोगों को उसमें जाना ही पड़ता है और उसमें भयंकर जल-जन्तु मकरादि रहते हैं, इसलिए सभी उसमें अनायास नहीं जा सकते उसी प्रकार महाराज दिलीप गम्य और अगम्य दोनों थे। राजा को सैन्य संचालन, सैन्य सन्निवेश, सैन्यों का विविध व्यूहों के रूप में रणक्षेत्र में संरक्षण, व्यूह विद्या आदि में पारंगत होना चाहिये। छिपकर शत्रुओं को मारना; नभ में, जल में अथवा स्थल में कहीं भी अदृश्य होकर शत्रुओं का संहार करना, भागते हुए शत्रु का बध करना, रात्रि में युद्ध करना, सोते हुए विपक्षी पर वार करना और अबलाओं पर हाथ उठाना भारतीय वीरता के विरुद्ध रहा है। राजाओं को उदार होना चाहिये। स्थूल संपत्ति के लिए युद्ध का कारण उपस्थित होने पर भी उनके हृदय की उदारता में संकोच न होना चाहिये। राजाओं में असन्तोष उनका जातिगत गुण कहा गया है। राजाओं को निरालस्य और निरन्तर उद्योगशील होना चाहिये।

राजा की जिस पत्नी का अभिषेक हुआ हो वही महिषी होती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



है। राजा की अन्य पत्नियों को भोगिनी कहते हैं। रानी के प्रसंग में भी उन सतोगुणों का वर्णन किया जाना चाहिये जो राजा में होते हैं। हाँ, आह्लादक सौन्दर्य, सौभाग्य, शील, श्रृङ्गार, लज्जा, चातुर्य, प्रेम, मान, सतीत्व, वीरमातृत्व, चेटी, सैरिंध्री आदिक यथावश्यक विशेषण अवश्य हों।

राजकुमार के प्रसङ्ग में शस्त्रशास्त्राध्ययन, मृगया, कला, गुण, कुमार भाव में ही प्रौढ़ यौवन की झाँकी आदि का वर्णन करना चाहिये।

मंत्री के प्रसङ्ग में उसका निरभिमान, नीतिज्ञता, क्षमता, गंभीरता, धैर्य, निःस्वार्थभाव, राजभक्ति, देशभक्ति, उत्साह आदि का वर्णन करना चाहिये।

सैन्य के चार अङ्ग कहे गये हैं; हाथी, घोड़े, रथ और पदाती। गजारोही सैनिक हाथी पर, अश्वारोही घोड़े पर, रथी रथ में और पदाती पैदल युद्ध करते हैं। जिस सेना में एक हाथी, एक रथ, तीन घोड़े और पाँच पदाती हों उसे 'पत्ति' कहते हैं। जिसमें ऐसी तीन पत्तियाँ हों उसे 'सेनामुख' जिसमें तीन सेनामुख हों उसे 'गुल्म', जिसमें तीन गुल्म हों उसे 'गण', जिसमें तीन गण हों उसे वाहिनी, जिसमें तीन वाहिनियाँ हों उसे 'प्रतना', जिसमें तीन प्रतनाएँ हों उसे 'चमू', जिसमें तीन चमू हों उसे 'अनीकिनी', और जिसमें तीन अनीकिनियाँ हों उसे अक्षौहिणी कहते हैं।

| सेना | पत्ति | सेना-मुख | गुल्म | गण | वाहिनी | प्रतना | चमू | अनीकनी | अक्षौहिणी |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| गज, रथ | १ | ३ | ९ | २७ | ८१ | २४३ | ७२९ | २१८७ | २१८७० |
| अश्व | ३ | ९ | २७ | ८१ | २४३ | ७२९ | २१८७ | ६५६१ | ६५६१० |
| पदाती | ५ | १५ | ४५ | १३५ | ४०५ | १२२५ | ३६४५ | १०९३५ | १०९३५० |

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



दन्ती, द्विरद, द्विप, मतङ्गज, नाग, कुंजर वारण, करी आदि गज के पर्याय हैं। यूथ में मुख्य हस्ती को यूथप कहते हैं। जिस हाथी के गण्डस्थल से मद झरता हो उसे मदोत्कट कहते हैं। हाथी का मद अत्यंत सुगन्धित होता है। हाथीके बच्चे को कलभ कहते हैं। करिणी और धेनुका आदि हस्तिनी के पर्याय हैं। गजकुंभ के मध्य भाग को 'विदु' कहते हैं। गज के ललाट को 'अवग्रह' कहते हैं। हाथी के लघुनेत्रगोलक को 'अक्षिकूट' कहते हैं। कर्णमूल को 'चूलिका' कहते हैं। कुंभ के अधोभाग को 'वाहित्थ' कहते हैं। वाहित्थ के अधो भाग को 'प्रतिमान' कहते हैं। मुख पर स्थित विन्दु समूह को 'पद्मक' कहते हैं। पूर्व जंघा भाग को गात्र कहते हैं। पश्चात्‌जंघाभाग को 'अवर' कहते हैं। हाथी जिस स्तंभ में बाँधा जाता है उसे 'आलान' कहते हैं। हाथी के ऊपर जो आस्त-रण होता है उसे 'प्रवेणी' कहते हैं। हाथी के प्रसङ्ग में उसकी विशालकाया, श्यामता, उच्चता, शत्रुघात, चिग्घाड़, शृंखला, अंकुश और उसके सज्जीकरण आदि का भी वर्णन करना चाहिये।

तुरग, तुरङ्ग, तुरङ्गम, वाजि, वाह, हय, सैंधव आदि अश्व के पर्याय हैं। पारसीक, काम्बोज, वाह्लीक और वनायुज घोड़े कुलीन कहे गये हैं। 'श्यामकर्ण' घोड़े से अश्वमेध यज्ञ होता है। सुन्दर चाल चलनेवाले अश्व को 'विनीत', अधिक वेगवान को 'जवन', भारवाही को 'पृष्ठ्य', श्वेताश्व को 'कर्क', रथवाही को 'रथ्य' कहते हैं। घोड़े के शब्द को हेषा, ग्रीवा के समीपभाग को निगाल कहते हैं। अश्व के उछल-उछल कर दौड़ने को 'आस्कन्दित' मध्यवेग से दौड़ने को 'रेचित', आगे की शरीर को समुल्लसित कर मुख को आकुंचित कर त्रिक को झुका कर दौड़ने को 'वल्गित', पक्षी और मृग के समान लाँघते हुए दौड़ने को 'प्लुत' कहते हैं।

अश्व के प्रसंग में घोण-कविका आदि, पुच्छ-वालधि आदि



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



छरहरी शरीर, उसका वक्रभाव, खुरों से पृथ्वी कुरेदना, चंचलता, थिरकना और शुभ लक्षणों का भी वर्णन करना चाहिये।

युद्धरथ को 'स्यन्दन', यात्रोत्सवादि में विहार के लिए रथ को 'पुष्यरथ', पुरुषस्कन्धबाह्ययानविशेष को 'प्रवहण' कहते हैं। इनके अतिरिक्त शकट, शिविका, दोला आदिकों की गणना भी रथ में ही है। रथ के प्रसंग में यानमुख, चक्र, रथनाभि, अरणि, रथगुप्ति, युगंधर, सारथी आदि का भी वर्णन करना चाहिये।

युद्ध के प्रसंग में प्रहरणक्रिया, बाहुयुद्ध, रणव्याकुलता, योद्धाओं के सिंहनाद, महान कल-कल, हाथियों का चिग्घाड़, वीरों की ललकार, धनुष की टंकार, सरमण्डप, शोणित की नदी, लिप्तक, तरकस, खड्ग, चर्ममेखला, मुद्गर, करवालिका, परिघ, कुठार, शेल, तोमर, कुन्त, वर्म, ध्वज, युद्धपटह, बलात्कार, युद्धछल, मूर्छा, प्रहार से निःशक्तिकरण, मरण, देवदाराओं से आवृत सुभट, पुष्पवृष्टि, रणगान और 'वीरपाण' आदि का वर्णन करना चाहिये। युद्ध के आरंभ और अन्त में सैनिक जो पान आदि करते हैं उसे वीरपाण कहते हैं। युद्ध की अतिभीषणता प्रदर्शित करने के लिए, योगिनी, भूत, पिशाच, काक, वैताल, कंक, आँत, मेद, वृक, कच, दाँत और शृगालादि का भी वर्णन करते हैं।

सेनापति—अजेय वीरता, अद्वितीय रण और तत्संबन्धी कौशल, व्यूह-रचना की दक्षता, कष्टसहिष्णुता, अविचलित धैर्य, कायिक-वाचिक-मानसिक कठोरता, स्वामिभक्ति आदि का वर्णन करना चाहिये।

सैन्य—हाथी, घोड़े, रथ, पदाती, सैनिकों का शौर्य, धैर्य, अभिमान, हर्ष, उत्साह, साहस, दृढ़ता, जुझाव, रणवाद्य, छल-बल, अस्त्र-शस्त्र, रणगान आदि का वर्णन करना चाहिये।

दूत—वाक्चातुर्य, स्वामी के प्रताप का कहना, प्रयत्न, धृष्टता,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



साहस, शत्रु को भयभीत करनेवाली चेष्टाएँ—ऐसी बातें कहना जिससे शत्रु दहल जाय, आदि का वर्णन करना चाहिये।

दुर्ग—दृढ़ता, उच्चता, स्वच्छता, मनोहरता, परिखा, पर्वत, परिधि, प्रहरी, प्रतिहार, चर, अस्त्र, शस्त्र, धन, अन्न, रक्षा करने वाली सेनाएँ, उपयुक्त स्थान पर शतघ्नी आदि युद्धयन्त्र, सुरंग, छिपने के स्थान, गुप्तद्वार आदि का वर्णन करना चाहिये।

आखेट—शैल, सघनवन, सिंह-सूकरादि, व्याध, मृगयाकुशल शुनक, वागुरा ( जालविशेष ), कूटयन्त्र ( मृगादि बंधनयंत्र ), वीतंस ( मृगादि बंधनसाधन ) पशु-पक्षियों में व्याप्तत्रास, किरात-शबर-पुलिंद आदि म्लेच्छ जाति इत्यादि का वर्णन करना चाहिये।

शैल—शिला, प्रपात, मेखला, सानु, उत्स ( जहाँ से जल निकलता है ), निर्झर, कन्दरा, गुहा, गण्डशैल ( पर्वत से गिरे हुए स्थूल पाषाण ), खनि, प्रत्यन्तपर्वत ( पर्वत के समीपस्थ छोटे-छोटे पर्वत ), उपत्यका, मेघ, औषधि, मणि, रत्न, मनःशिला और गैरिक आदि धातु तथा निकुञ्ज इत्यादि का वर्णन करना चाहिये।

लंकाधिष्ठान पर्वत को 'त्रिकूट', पश्चिम पर्वत को 'चरम-पर्वत' और उदयाचल को 'पूर्वपर्वत' कहते हैं। हिमवान, निषध, विन्ध्य, माल्यवान, परियात्र, गन्धमादन, हेमकूट, मलय, दर्दुर, चित्रकूट, मैनाक आदि मुख्य पर्वत हैं।

देश—पुर, ग्राम, वन-उपवन, आश्रम, सर, सरिता, समुद्र आदि का वर्णन करना चाहिये। देश धन-धान्य से संपन्न हों, वहाँ के निवासी अपने-अपने धर्मों का पालन करते हों, प्रजा सुखी हो, नाना प्रकार की खानें हों, ईति-भीति न हो।

नगरी, पुरी, पत्तन, निगम आदि 'पुर' के पर्याय हैं। पुर के प्रसंग में शाखानगर, हाट, पण्यवीथी, गोशाला, परिसर, घंटापथ, चतुष्पथ, मार्ग, सेतु, प्राकार, प्रासाद, गृह, कुटी, चतुःशाल, पर्ण-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



शाला, यज्ञस्थान, वाजिशाला, शिल्पिशाला, जलशाला, मठ, विहार, मदिरागृह, मण्डप, हर्म्यादि, पुरद्वार, गृहाराम, ध्वज, तोरण, मन्दिर, कूप, सर, सरिता, वापी, पौसरा, परिखा, वन-उपवन, वाटिका, वेश्या, हय, गज, पशु, पक्षी आदि का वर्णन करना चाहिये।

एक ग्राम के अधिकारी को 'स्थायुक' और अनेकों ग्रामों के अधिकारी को 'गोप' कहते हैं। ग्राम के प्रसंग में गृह, क्यारी, खेत, फुलवारी, मोटे-ताजे पशु, धन-धान्य, तरु-लता, ग्रामसत्संग, वहाँ के निवासी, ग्रामसुन्दरियाँ इत्यादि का वर्णन करना चाहिये।

गृह—बाहिद्वार, देहली, प्राङ्गण, नासा, गुप्तद्वार, पक्षद्वार, गृहाच्छादन, पक्षिस्थान, गर्भागार, सूतिकागृह, पूजास्थान, वातायन, कपाट, अर्गल, सोपान, अधिरोहिणी, शोधनी, गृहमुख, गृहपक्षी और गृहाराम आदि का वर्णन करना चाहिये।

अरण्य, विपिन, गहन, कानन, निर्जन, आदि बन के पर्याय हैं। महावन को 'अरण्यानी', कृत्रिम बन को 'आराम', मंत्री और वेश्या के गृहोपवन को 'वृक्षवाटिका', राजकीय साधारण बन को उद्यान और अन्तःपुरोचित वन को प्रमदबन कहते हैं।

बन के प्रसंग में वीथी, वृक्ष, बनस्पति, वानस्पत्य, आवश्यकतानुसार किरात, शवर, पुलिन्द, पशु-पक्षी और दावानल का भी वर्णन करना चाहिये।

उद्यान—सरित,सर, तरु, पुष्प, फल, वापी, कूप, लता, हंस, भ्रमर, कोकिल, मोर, शुक आदि का वर्णन करना चाहिये।

महीरुह, शाखी, विटपी, पादप, तरु, पलाशी और द्रुम आदि वृक्ष के पर्याय हैं। फल सहित वृक्ष को फली, बिना फूल के वृक्ष को बनस्पति जैसे आम आदि, जिसमें फूल हों उसे वानस्पत्य, फलरहित वृक्ष को अवकेशी, शाखा-पत्ररहित वृक्ष को स्थाणु और जिसके मूल तथा शाखाएँ सूक्ष्म हों उसे क्षुप कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



वृक्ष के प्रसङ्ग में अवलम्बित लता, प्रकाण्ड ( मूल से लेकर शाखावधि भाग ), स्कंध, जटा, शाखामूल, शिखर, वल्कल, कोटर, मञ्जरी, किसलय, पर्ण, विस्तार, फल, पुष्प, वृन्त, कलिका, स्तवक, मुकुल, मकरन्द, पराग, वानर, पक्षी आदि का वर्णन करना चाहिये।

खंजरीट, चातक, चकोर, कोकिल, कुक्कुट, चटक, काक, काकोल, चिल्ल, वक, सारस, चक्रवाक, कलहंस, कुरर, बलाका, मयूर, हारीत, कारण्डव, तित्तिर, लाव, कपोत, आदि प्रमुख पक्षी हैं। मयूर की वाणी को केका, पिच्छचन्द्राकृति को मेचक, और पिच्छ को शिखण्ड कहते हैं।

'पक्षी के विषय में पक्ष, पक्षमूल, चोंच, उनका उड़ना, नीड़, अण्ड, शावक और मिथुन विहार आदि का वर्णन करना चाहिये।'

'आश्रम के प्रसंग में उसकी पवित्रता, वहाँ के जीव-जन्तुओं का परस्पर अविरोध, त्रासहीनता, यज्ञधूम, ऋषि-मुनि, ऋषिबालक और ऋषिकन्याएँ, वल्कल, द्रुमों की अधिकता, अजिन, कमण्डल, फल, फूल और आतिथ्य सत्कार का वर्णन किया जाता है।'

'सर के प्रसंग में लहर, निर्मल जल, कमल, भ्रमर, हंस और चक्रवाक आदि, तट पर पथिक जलकेलि, और तत्रस्थ उपवन आदि का वर्णन किया जाता है।'

'नदी के प्रसंग में जल का मधुर कल-कल, मीन, मकर, कच्छप, बीची, आवर्त, तट के तरु और तपोभूमि, उपवन, कानन, कछार, सेवार, सिकता आदि का वर्णन किया जाता है।'

'समुद्र के प्रसंग में द्वीप, रत्न, जलजन्तु, आवर्त, तरंगमाला, ज्वार-भाटा, कुलीर, बड़वानल, तुमुल घोष, निःसीमभाव और गंभीरता, पूर्णचन्द्र से उसका उल्लास, नदियों का मिलना, आदि का वर्णन किया जाता है।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पद्य में गद्य की अपेक्षा कहीं कम स्वतंत्रता रहती है। इसलिए प्रायः कविजन कविता में संख्या के स्थान पर संख्या सूचक शब्दों का भी प्रयोग करते हैं।

शून्य के स्थान पर 'आकाश' कहा जाता है।

'एक' सूचक शब्द आत्मा, भूमि, चन्द्र, ब्रह्मा, गजमुक्ता और शुक्राक्ष आदि कहे गये हैं।

'दो' सूचक शब्द पक्ष, नेत्र, भुज, अयन, तट, असिधार, श्रुति, उरोज, रामपुत्र, गजदन्त, चक्र, और सारस आदि कहे गये हैं।

'तीन' सूचक शब्द राम, काल, अग्नि, ताप, गुण, लोक, शिव-नेत्र, काण्ड और संध्या आदि कहे गये हैं।

'चार' सूचक शब्द पदार्थ, आश्रम, वर्ण, युग, वेद, विधिमुख, हरिभुज, अवस्था, सुरपति, हस्ती, दन्त आदि कहे गये हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



'पाँच' सूचक शब्द यज्ञ, कन्या, भूत, गव्य, प्राण, गति, पांडव, शर, शिवमुख, गो, महापाप, आदि कहे गये हैं।

'छः' सूचक शब्द वेदांग, शास्त्र, अलिपद, राग, रस, ऋतु, दर्शन, कार्तिकेयमुख, त्रिशिरा नयन आदि कहे गये हैं।

'सात' सूचक शब्द रवितुरग, वार, ताल, लोक, स्वर, गिरि, सागर, मुनि, पाताल, अग्निशिखा, द्वीप, राज्यांग आदि कहे गये हैं।

'आठ' सूचक शब्द दिग्गज, योग, याम, सिद्धि, वसु, अहि, विधिश्रुति, व्याकरण आदि कहे गये हैं।

'नव' सूचक शब्द ग्रह, अंक, निधि, भक्ति, रंध्र, भूखण्ड, दुर्गा, नाड़ी, द्रव्य आदि कहे गये हैं।

नवाधिक अंकों के स्थान पर यदि तत्सूचक शब्द लिखने हों तो दाहिनी ओर से जो-जो अंक क्रम से स्थित हों उनके स्थान पर क्रम से उन-उन अंकों के सूचक शब्द लिखना चाहिये। जैसे ३५१ इसमें दाहिनी ओर से सर्व प्रथम १ फिर ५ फिर ३ हैं। एक के स्थान पर 'भूमि', पाँच के स्थान पर 'शर,' और तीन के स्थान पर 'गुण' लिखा जायगा। इस प्रकार 'भूमि शर गुण' ३५१ का सूचक हुआ।

'दश' सूचक शब्द दशा, दिशा, दोष आदि कहे गये हैं।

'ग्यारह' सूचक शब्द 'शिव' कहा गया है।

'बारह' सूचक शब्द राशि, सूर्य आदि कहे गये हैं।

'तेरह' सूचक शब्द किरण, नदी आदि कहे गये हैं।

'चौदह' सूचक शब्द रत्न, विद्या, मनु, भुवन आदि कहे गये हैं।

'पंद्रह' सूचक शब्द 'तिथि' कहा गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



'सोरह' सूचक शब्द संस्कार, शृंगार, कला आदि कहे गये हैं।

'अट्ठारह' के स्थान पर पुराण और बीस के स्थान पर नख कहा जाता है।

'द्विपद' से देवता–मनुष्य–और राक्षस का बोध होता है।
'त्रिकाण्ड' से कर्म–उपासना–और ज्ञान का बोध होता है।
'त्रिनाड़ी' से इंगला–पिंगला–सुषुम्णा का बोध होता है।
'त्रिदोष' से बात–पित्त–कफ का बोध होता है।
'त्रिदेव' से ब्रह्मा–विष्णु–महेश का बोध होता है।
'त्रिगुण' से सत–रज–तम का बोध होता है।
'त्रिकाल' से भूत–भविष्यत–वर्तमान का बोध होता है।
'त्रिलोक' से स्वर्ग–मर्त्य–पाताल का बोध होता है।
'त्रै अग्नि' से पावक–पवमान–शुचि अथवा
बड़वाग्नि–दावाग्नि जठराग्नि का बोध होता है।
'त्रिसंध्या' से प्रातः–मध्याह्न–सायं का बोध होता है।
'त्रिवेणी' से गंगा–यमुना–सरस्वती का बोध होता है।
'त्रिवर्ग' से धर्म–अर्थ–काम का बोध होता है।
'त्रैताप' से दैहिक–दैविक–भौतिकताप का बोध होता है।
'त्रैऋण' से देव–ऋषि–पितृऋण का बोध होता है।
'चतुर्वेद' से ऋग–साम–यजु–अथर्वण वेद का बोध होता है।
'चतुर्वर्ण' से ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य–शूद्र वर्ण का बोध होता है।
'चतुर्वर्ग' से धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष वर्ग का बोध होता है।
'चतुर्युग' से सत–द्वापर–त्रेता–कलियुग का बोध होता है।
'चतुर्दिक्' से उत्तर–दक्षिण–पूर्व–पश्चिम दिशा का बोध होता है।
'चतुर्मोक्ष' से सालोक्य–सारूप्य–सामीप्य–सायुज्य मोक्ष
का बोध होता है।
'चतुर्दर्शन' से श्रवण–चित्र–स्वप्न–प्रत्यक्ष दर्शन का बोध होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



'चतुराश्रम' से ब्रह्मचर्य–गृहस्थ–वानप्रस्थ–संन्यस्थ आश्रम का बोध होता है।
'चतुरंगिनी' से गज–अश्व–रथ–पदाती सैन्य का बोध होता है।
'चतुराकर' से अण्डज–पिण्डज–स्वेदज–उद्भिज का बोध होता है।
'चतुरुपाय' से साम–दान–दण्ड–भेद का बोध होता है।
'चतुरवस्था' से जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्त-तुरीय अवस्था का बोध होता है।
'चतुरुपवेद' से आयुर्वेद–धनुर्वेद–गांधर्ववेद–अथर्ववेद का बोध होता है।
'पंच महापाप' से ब्रह्महत्या–सुरापान–स्तेय–गुरुस्त्रीगमन–इनकी संगति का बोध होता है।
'पंचमहायज्ञ' से स्वाध्याय – अग्निहोत्र – अतिथि पूजन–पितृतर्पण–बलिकर्म ,, ,,
'पंचरत्न' से हीरा–नीलमणि–पद्मराग–मुक्ता–स्वर्ण ,, ,,
'पंचवटी' से पीपल – बेल–वट–आमला – अशोक इन वृक्षों के समाहार ,, ,,
'पंचवर्ग' से कवर्ग–चवर्ग–टवर्ग–तवर्ग–पवर्ग ,, ,,
'पंचवाण' से अरविन्द-अशोक-आम्र-नवमल्लिका-नीलोत्पल ,, ,,
'पंचाङ्ग' से तिथि–वार–नक्षत्र–योग–करण का ,, ,,
'पंचद्रव्य' से चन्दन–अगरु–कर्पूर–केशर–गुग्गुल ,, ,,
'पंचगव्य' से गोदुग्ध–दही–घी–मूत्र–गोबर ,, ,,
'पंचामृत' से गोदुग्ध–दही–घी–मधु–शर्करा ,, ,,
'पंचमकार' से मद्य–माँस–मत्स्य–मुद्रा–मैथुन ,, ,,
'पंचप्राण' से प्राण–अपान–व्यान–उदान–समान ,, ,,
'पंचनद' से वितस्ता–इरावती-चन्द्रभागा–शतद्रु–विपाशा ,, ,,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



'पंचदेवी' से दुर्गा-लक्ष्मी-राधा-वाणी-शाकम्भरी देवी का बोध होता है।
'पंचतत्व' से पृथ्वी–जल–तेज–वायु–आकाश ,, ,,
'पंचतन्मात्र' से रूप–रस–गंध–स्पर्श–शब्द ,, ,,
'पंचकन्या' से द्रौपदी – कुन्ती–तारा – मन्दोदरी–अहिल्या का ,, ,,
'पंचक' से धनिष्ठा–शतभिषा–पूर्वभाद्रपद–उत्तरा भाद्रपद–रेवती नक्षत्र ,, ,,
'पंचज्ञानेन्द्रिय' से नेत्र–नासिका – कर्ण – जिह्वा–त्वचा ,, ,,
'पंचकर्मेन्द्रिय' से हस्त–पाद – वाणी – मूत्रद्वार–मलद्वार ,, ,,
'पंचगौड़' से सारस्वत–कान्यकुब्ज–गौड़–मैथिल– ,, ,,
उत्कल–ब्राह्मण ,, ,,
-पंचद्राविड़' से गुर्जर–द्राविड़–महाराष्ट्र–कर्णाटक–तैलंग ब्राह्मण ,, ,,
'पञ्चावस्था'* से बाल्य-कुमार - किशोर - तरुण-वृद्ध अवस्था ,, ,,
'पञ्चोपासक' से शैव-वैष्णव-शाक्त-सौरि-गाणपत्य उपासक ,, ,,
'षड्गुण' से संधि–विग्रह – यान–आसन – द्वैध–आश्रय राजगुण का बोध होता है।
'षट्रिपु' से काम–क्रोध–मद–लोभ–मोह–मात्सर्य ,, ,,

---

* जन्म से पाँच वर्षों तक बाल्यावस्था, दश वर्षों तक कुमारावस्था, पन्द्रह वर्षों तक किशोरावस्था मानी गयी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



'षट्राग' से भैरव–मालकोष – हिण्डोल – दीपक–
श्री-मेघ राग का बोध होता है।
'षट्रस' से मधुर-क्षार-तिक्त-काषाय-कटु-अम्ल रस " "
'षट्दर्शन'† से मीमांसा-वैशेषिक-न्याय-योग-सांख्य-
वेदांग " "
'षट्चक्र' से मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूर-अनाहद-
विशुद्ध-ब्रह्मरंध्र " "
'तंत्र षट्कर्म' से शान्ति-स्तंभन - विद्वेष - उच्चाटन-
वशीकरण-मारण " "
'ब्राह्मण षट्कर्म' से यज्ञ करना–यज्ञ कराना–अध्य-
यन–अध्यापन–दान लेना–दान देना " "
'षट्ऋतु' से वसंत-ग्रीष्म - पावस-शरद - हेमन्त-
शिशिर ऋतु " "
'षट्ऊर्मि' से मोह-शोक-भूख - प्यास-वृद्धत्व - मृत्यु " "

---

† मीमांसा दो भागों में विभक्त है; एक पूर्व मीमांसा अर्थात् कर्म-मीमांसा, दूसरा उत्तरमीमांसा अर्थात् ब्रह्ममीमांसा। यह जैमिनि की रचना है।

वैशेषिक की व्युत्पत्ति है—

'विशेषं पदार्थभेदमधिकृत्य कृतः ग्रन्थः ठञ्।'

इसमें धर्माधर्म का विचार किया गया है। यह कणाद की रचना है।

न्यायदर्शन में 'पदार्थ निर्णय' किया गया है। यह गौतम की रचना है।

योगदर्शन में जीवात्मा और परमात्मा के अभेद का निरूपण किया गया है। यह पातञ्जलि की रचना है।

सांख्यदर्शन का विषय 'तत्त्वबोध' है। यह कपिल की रचना है।

वेदांग में ब्रह्मनिरूपण किया गया है। यह वेदव्यास की रचना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



षट् ईति' से काल-अवर्षण-शलभा-मूषक-उपलवृष्टि-
अतिवृष्टि का बोध होता है।

'षट् वेदाङ्ग' से छंद-कल्प-ज्योतिष - निरुक्त-शिक्षा-
व्याकरण ,, ,,

'सप्तलोक' से भू-भुवः - स्वः-महः - जन-तप-
सत्य लोक ,, ,,

'सप्ततल' में अतल - वितल - सुतल - महातल -
तलातल-रसातल-पाताल ,, ,,

'सप्तद्वीप' से जम्बू-शाक-कुश - क्रौंच-शाल्मल-
मेद-पुष्कर द्वीप ,, ,,

'सप्तसागर' से लवण - इक्षु दधि - दुग्ध - मधु -
मदिरा-घृत सागर ,, ,,

'सप्तपदार्थ से द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-
समवाय अभाव ,, ,,

'सप्तपुरी' से अयोध्या - माया-मथुरा - काशी -
काँची-अवन्तिका-द्वारिका ,, ,,

'सप्तर्षि' से कश्यप-अत्रि-भरद्वाज-विश्वामित्र-गौतम-
वशिष्ठ-यमदग्नि ऋषि ,, ,,

'सप्तधातु (खनिगत्)' से सोना-चाँदी ताँबा-राँगा-
जस्ता-शीशा-लोहा ,, ,,

'सप्तधातु ( शरीर गत् )' से चर्म - रुधिर - मांस-
मेद-अस्थि-मज्जा-वीर्य ,, ,,

'सप्तराजश्री' से मंत्री-शस्त्रास्त्र - अश्व - गज - देश-
कोश-दुर्ग ,, ,,

'सप्तवार' से रवि-सोम-मंगल - बुध-वृहस्पति-शुक्र-
शनिवार ,, ,,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



'अष्ट दिग्गज' से ऐरावत-पुण्डरीक - वामन-कुमुद-
अंजन-पुष्यदन्त-सार्वभौम-सुप्रतीक का बोध होता है।

'अष्टमहानाग' से वासुकी - तक्षक - कर्कोटक-शंख-
कुलिक-पद्म-महापद्म-अनन्त ,, ,,

'अष्टलोकपाल' से इन्द्र-अग्नि-यम-निर्ऋति-वरुण-
वायु-कुवेर-शंकर ,, ,,

'अष्टवसु' से धर-ध्रुव-सोम - विष्णु-अनल-अनिल-
प्रत्यूष-प्रभास ,, ,,

'अष्टशक्ति' से इन्द्राणी-कौमारी - ब्रह्माणी-वाराही-
चामुण्डा-वैष्णवी-माहेश्वरी-विनायकी शक्ति ,, ,,

'अष्टसिद्धि' से अणिमा - महिमा - लघिमा - प्राप्ति-
प्राकाम्य-ईशित्व-वशित्व-कामावसायिता-सिद्धि ,, ,,

'अष्ट योग' से यम - नियम - आसन - प्राणायाम -
प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधि-योग ,, ,,

'अ प्रहर'* से पूर्वाह्ण-मध्याह्न-अपराह्ण-सायं-प्रदोष-
निशीथ-त्रियामा-उषा ,, ,,

'अष्टमंगल'† से ब्राह्मण-गौ-अग्नि - सोना-घी-सूर्य-
जल-राजा ,, ,,

'अष्टवैयाकरण' से इन्द्र-चन्द्र-काशि-कृष्ण-पिशली-
शाकटायक-पाणिनि-अमर ,, ,,

---

* दिन के प्रथम प्रहर को पूर्वाह्ण, द्वितीय को मध्याह्न, तृतीय को अपराह्ण और चतुर्थ को सायं कहते हैं। रात्रि के प्रथम प्रहर को प्रदोष, द्वितीय को निशीथ, तृतीय को त्रियामा और चतुर्थ को उषा कहते हैं।

† कुछ लोगों का कहना है कि सिंह-वृषभ-गज-कलश-पंखा-माला-भेरी-दीपक को 'अष्टमङ्गल' कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



'अष्टछाप' से सूरदास-कृष्णदास-परमानन्द-कुंभनदास-चतुर्भुज-छीतस्वामी-नन्ददास-गोविन्ददास का बोध होता है।

'नव खण्ड' से कुरु-हिरण्मय-रम्यक-इला-हरि-केतुमाल-भद्राश्व-किन्नर-भारत " "

'नव द्रव्य' से पृथ्वी-जल-तेज-वायु-आकाश-काल-दिक्-आत्मा-मन " "

'नव ग्रह' से रवि-सोम-मंगल-बुध-गुरु-शुक्र-शनि-राहु-केतु ग्रह " "

'नव दुर्गा' से शैलपुत्री-ब्रह्मचारिणी-चन्द्रघण्टा-कूष्माण्डा-स्कन्दमाता-कात्यायनी-कालरात्री-महागौरी-सिद्धिदा " "

'नव निधि' से महापद्म-पद्म-शंख-मकर-कच्छप-मुकुन्द-कुन्द-नील-खर्व " "

'नव रत्न' से हीरा-पन्ना-माणिक-नीलम-लहसनीया-पुखराज-गोमेद-मुक्ता-मूँगा " "

'नव शक्ति' से वैष्णवी-ब्रह्माणी-रौद्री-माहेश्वरी-नारसिंही-वाराही-इन्द्राणी-कार्तिकी-सर्वमङ्गला " "

'नवधा भक्ति' से श्रवण कीर्तन-स्मरण-चरणसेवन-अर्चन-वन्दन-दास्य-सख्य-आत्मनिवेदन " "

'नव नाड़ी' से इड़ा-पिङ्गला-सुषुम्ना-गांधारी-गजजिह्वा-पूषा-प्रसाद-शनि-शंखिनी-नाड़ी " "

'नव रात्र' से चैत्र और आश्विन के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से नवमी पर्यन्त की रात्रि " "

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



'नव द्वार'* से नेत्र-कर्ण-नासिकारंध्र-मुख-लिंग-गुदा का बोध होता है।
'नव रस' से शृङ्गार-हास्य - करुण - शान्त - रौद्र - वीर-अद्भुत-भयानक-वीभत्सरस " "
'नव विप्रकर्म' से शम-दम-तप - शौच-क्षमा-ज्ञान- सरलता-विज्ञान-आस्तिक्य " "
'नव स्थायीभाव' से रति-हास-शोक-क्रोध-उत्साह- भय-ग्लानि-विस्मय-निर्वेद " "
'दशावतार' से मच्छ-कच्छ-वाराह-नृसिंह-वामन- परशुराम-राम-कृष्ण-बौद्ध-कलंकी अवतार " "
'दशविश्वेदेव' से क्रतु-दक्ष-वसु-सत्य-काम-काल- ध्वनि-रोचक-आदेव-पुरूरवा " "
'दश महाविद्या' से काली-तारा-षोडशी-भुवनेश्वरी- भैरवी-छिन्नमस्ता-धूमावती-बगला- मातंगी-कमला " "
'दश दिग्पाल' से इन्द्र-यम - वरुण - कुबेर-अग्नि - निर्ऋति-वायु-शिव-ब्रह्मा-शेष " "
'दश ब्राह्मण' से सारस्वत-कान्यकुब्ज-गौड़-मैथिल- उत्कल-गुर्जर-द्राविड़-महाराष्ट्र- कर्णाटक- तैलंग ब्राह्मण " "
'दश वायु' से प्राण-अपान - समान - व्यान-उदान- नाग-कूर्म-कृकल-देवदत्त-धनञ्जय " "
'दश दशा' से गर्भवास - जन्म - शिशुता - कौमार- किशोर - यौवन - अर्धवृद्धत्व - वृद्धत्व - प्राणरोध-नाश " "

---

* नेत्र, कर्ण और नासिकारंध्र की दो-दो संख्याएँ समझनी चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



'दश बल' से दान-शील - क्षमा-वीर्य - ध्यान-प्रज्ञा-
सामर्थ्य-उपाय-प्रणिधि-ज्ञान का बोध होता है।
'एकादश सूर्य' से अज-एकपात-अहिबुध्न-पिनाकी-
अपराजित-त्र्यंबक - महेश्वर - वृषाकपि-
शंभु-हरण-ईश्वर का बोध होता है।
'द्वादश सूर्य' से विवस्वान-अर्यमा - पूषा - त्वष्टा -
सविता - भग-धाता - विधाता - वरुण -
मित्र-शक्र-उरुक्रम सूर्य का बोध होता है।
'द्वादश मास'—'द्वादश राशि'—'द्वादश भूषण'
का वर्णन पहले किया जा चुका है।
'त्रयोदश भागवत' से प्रह्लाद-नारद-पराशर-पुंड-
रीक-व्यास-आम्बरीष-शुक-शौनक-भीष्म-
रुक्माङ्गद-अर्जुन-वाशिष्ठ-विभीषण का बोध होता है।
'चतुर्दश यम' से यम-धर्मराज-मृत्यु-अंतक-वैवस्वत-
नील-दध्न-काल-सर्वभूतक्षय-परमेष्ठि-
वृकोदर-औदुम्बर-चित्र-चित्रगुप्त का बोध होता है।
'चतुर्दश मनु' से स्वायम्भुव - स्वारोचिष - उत्तम -
तामस-रैवत-चाक्षुष-वैवस्वत - सावर्णि-दक्ष
सावर्णि-ब्रह्मसावर्णि-धर्मसावर्णि-रुद्रसावर्णि-
देवसावर्णि-इन्द्रसावर्णि का बोध होता है।
'चतुर्दश भुवन' से सप्तलोक और सप्तद्वीप के समा-
हार का बोध होता है जिनका वर्णन
पहले किया जा चुका है।
'चतुर्दश इन्द्र' से इन्द्र-विश्वभुक्-विपश्चित-विभु-
प्रभु-शिखि-मनोजव-तेजस्वी-वलिभौव्य-
त्रिदिव-सुशान्ति-सुकीर्ति-ऋतधाता-
दिवस्पति का बोध होता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



'चतुर्दश विद्या' से चार वेद—छः शास्त्र-मीमांसा-
न्याय-धर्मशास्त्र-पुराण का बोध होता है।
'चतुर्दश रत्न' से श्री-मणि-रंभा-वारुणी-अमृत-शंख-
गजराज-धनु-धन्वंतरि-धेनु-शशि-कल्पद्रुम-
विष-अश्व ( समुद्रमंथन से प्राप्त ) का बोध होता है।
'पंचदश तिथि' से प्रति पक्ष की प्रतिपदा से
पूर्णिमा तक की तिथियों का बोध होता है।
'षोड़श संस्कार' से गर्भाधान-पुंसवन-सीमन्त-जात
कर्म-नामकरण-निष्क्रमण-अन्नप्राशन- चूड़ा
करण-कर्णभेद-उपनयन-वेदारंभ-समावर्तन-
विवाह-गृहाश्रम-वानप्रस्थाश्रम-
सन्यासाश्रम का बोध होता है।
'षोड़श कला' से चंद्रमा की सोरह कलाओं अमृता-
मानदा-पूषा-तुष्टि-पुष्टि - रति-धृति-शशिनी-
चन्द्रिका-कांति-ज्योत्स्ना-श्रिय-प्रीति-अंगदा-
पूर्णा-पूर्णामृता का बोध होता है।
'षोड़श शृङ्गार' से शौच-उबटन-स्नान-केशबंधन-
अंगराग-अञ्जन-जावक-दन्तरञ्जन-ताम्बूल-
वसन-भूषण-सुगंध-पुषहार-कुंकुम-भाल
तिलक-चिबुकविन्दु का बोध होता है।
'अष्टादश स्मृति' से मनु - याज्ञवल्क्य - मिताक्षरा -
हारीत-पराशर-भृगु - सामापत-कात्यायन -
वशिष्ठ-भरद्वाज-कौशिक-बार्हस्पत्य-गौतम -
कश्यप-आसुर-यमदग्नि-अस-यम-स्मृति का बोध होता है।
'अष्टादश पुराण' से ब्रह्म-पद्म-विष्णु-शिव-भागवत-
नारद-मारकण्डेय-अग्नि-भविष्य-ब्रह्मवैवर्त-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



लिङ्ग-वाराह-स्कन्द - वामन - कूर्म-मत्स्य - गरुण -
ब्रह्माण्ड पुराण का बोध होता है।

'अष्टादश उपपुराण' से काली-साम्ब - सनत्कुमार-वरुण-
मरीचि-नन्दी-शिव-दुर्वासा-मनु-नारदीय-कपिल-
सौर-माहेश्वरी-शुक्र-भार्गव - नृसिंह-धर्म-पराशर
पुराण का बोध होता है।

'अष्टादश व्यसन' से मृगया-द्यूत-दिन में सोना-परदोष
कथन - स्त्रीआसक्ति - मद्यपान - वाद्य-नृत्य-गान -
व्यर्थभ्रमण-चुगली-दु:साहस - द्रोह-ईर्ष्या-असूया-
अपहरण-कटुकथन-अनुमानातिशय का बोध होता है।

'अष्टादश वर्ण' से चतुर्वेद-चतुर्वर्ण-चतुर्युग-त्रिलोक-त्रिकाल
के समाहार का बोध होता है जिनकी व्याख्या
पहले की जा चुकी है।

'पंचविंशति प्रकृति' से—शरीरस्थ मूलतत्व पाँच हैं; पृथ्वी-
जल-अग्नि-वायु-आकाश। प्रत्येक तत्वों की पाँच
पाँच प्रकृतियाँ हैं। पृथ्वी की त्वचा-केश-मांस-
नाड़ी-अस्थि। जल की ज्योति-स्वेद-रक्त-लार-
मूत्र। अग्नि की क्षुधा-तृषा - निद्रा-क्लान्ति-
आलस्य। वायु की दौड़ना-लेटना-काँपना-चलना-
संकोच। आकाश की काम-क्रोध-लोभ-मोह-भय।
इस प्रकार पचीस प्रकृति का बोध होता है।

'सप्तविंशति नक्षत्र' से अश्विनी-भरणी-कृत्तिका-रोहिणी-
मृगशिरा-आर्द्रा - पुनर्वसु-पुष्य - श्लेषा-मघा - पूर्वा
फाल्गुनी - उत्तरा फाल्गुनी - हस्त-चित्रा - स्वाती-
विशाखा-अनुराधा-ज्येष्ठा-मूल-पूर्वाषाढ़-उत्तराषाढ़
श्रवण-धनिष्ठा-शतभिष-पूर्व भाद्रपद - उत्तर भाद्र
पद-रेवती का बोध होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



'त्रिशति रागिणी' से भैरवी-वैराड़ी-मधुमाधवी-सिंधवी-बंगाली-टोड़ी-गौरी-गुनकली-खंभावती-कुकुभा-रामकली-देशाख-ललित-विलावल-पटुमंजरी-देशी कामोदी-नट-केदारा-कान्हड़ा-मालव-घनाश्री-वसंत-मालश्री-आसावरी-टंक-मलारी-गूजरी-भूपाली-देशकार का बोध होता है।

'चतुःषष्टि योगिनी' से नारायणी-गौरी-शाकंभरी-भीमा-रक्तदन्तिका-भ्रामरी-पार्वती-दुर्गा-कात्यायनी-महादेवी-चन्द्रघण्टा-महाविद्या-महातपा-सावित्री-ब्रह्मवादिनी-भद्रकाली-विशालाक्षी-रुद्राणी-कृष्ण पिंगला-अग्निज्वाला-रौद्रमुखी-कालरात्रि-तपस्विनी मेघस्वना-सहस्राक्षी-विष्णुमाया-जलोदरी-महोदरी-मुक्तकेशी-घोररूपा-महाबला-श्रुति-स्मृति-धृति-तुष्टि-पुष्टि-मेधा-विद्या-लक्ष्मी-सरस्वती-अपर्णा-अम्बिका-योगिनी-डाकिनी-शाकिनी-हारिणी-हाकिनी-लाकिनी-त्रिदशेश्वरी-महाषष्ठी-सर्वमंगला लज्जा-कौशिकी-ब्रह्माणी-ऐन्द्री-नारसिंही-वाराही-चामुण्डा-शिवदूती-विष्णुमाया-मातृका का बोध होता है।

'चतुःषष्ठि कला' से गीत-वाद्य-नृत्य-नाट्य-आलेख्य-विशेषकच्छेद्य-पूजाप्रकरादि योजन-आस्तरण-दशन-वसनांग राग-मणिभूरचना-शयन-कल्पना-जल स्तम्भयान-वाद्य-चित्रयोग-माल्यग्रन्थन-शेखरापीड़ योजना-नेपथ्य-कर्णपत्र क्रिया-सुगन्धि योजन-भूषादि योजन-ऐन्द्रजाल-कौचुमार-हस्तलाघव-सूदशास्त्र-पानकादि-सूचीबान क्रिया-सूत्रक्रीड़ा-वीणाडमरूवाद्यादि-प्रहेलिका-छायाचित्रनिर्माण-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



दुर्वचक योजन-पुस्तकवाचन-नाटकाख्यायिकादि निर्माण-समस्यापूरण-पट्टिकावेत्रवाणादि रचना-तर्कुकर्म - तक्षण - वास्तुविद्या - सुवर्णरूप्य रत्नादि परीक्षा-धातुवाद-रत्नरंजन-खनिभूज्ञान-वृक्षायुर्वेद-मेषकुक्कुटलावादियुद्धरीति - शारिका शुकवादन उद्वर्तन-केशमर्जन-लुप्ताक्षरमुष्टिवस्तुकथन-मलेच्छ भाषाकौशल-देशभाषणकौशल-पुष्पशकट-यंत्रमातृका-मातृकासंवाच्य - मानसकाव्य - अभिधानकोश-छन्दज्ञान-विकल्पा-छलितयोग-वस्त्रगुप्ति-सजीवनि र्जीवद्यूत-शास्त्रसंपाद्यपाटव-कर्यक्रीड़ा- वालक्रीड़ा-वैनायिकी-वैजयिकी-वैतालिकी इत्यादि कला का बोध होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# विषय-क्रम सूची

## कवि और काव्य

कवि और काव्य के विषय में मतमतान्तर। मम्मटाचार्य, विद्यानाथ, जयदेव, वाग्भट्ट, वामन, दण्डी, पण्डितराज जगन्नाथ, विश्वनाथ, शेली, विलियम वर्ड्सवर्थ, जान मिल्टन, बेन जानसन लार्ड बेकन, जी पटेनहम आदि विद्वानों के विचार। कवि और काव्य की परिभाषा। हम सभी कवि हैं! हम में और कवि में अन्तर। कवि का अमर-रसायन। कवि और लोक।

भगवान् स्वयं कवि है। कवि क्यों गाता है? कवि किसलय, कुसुम, चन्द्र, नक्षत्र, सागर आदि लौकिक पदार्थों का सम्मान करते हुए क्यों देखा जाता है? कवि के विषय में जड़-जगत के भाव। कवि कहता है कुछ और लोग सोचते हैं कुछ और। समस्त विश्व उसके गान की प्रतिध्वनि करता है। जो गान एक बार गाया जा चुका वह फिर नहीं गाया जा सकता।

कवि शब्द की व्युत्पत्ति। शब्द की उत्पत्ति का वैज्ञानिक कारण। ॐ का रहस्य। ध्वन्यात्मक और वर्णनात्मक शब्द। कवि की तीन भाषाएं। समाधि भाषा, लौकिक भाषा, परकीय भाषा। उत्तम कवि, मध्यम कवि, अधम कवि।

## शब्द और अर्थ

शब्दावतार—शब्द अवतीर्ण होते ही अभ्यस्त दिशा की ओर संकेत करते हैं। अर्थ-बोध। शब्दों की सामर्थ्य—कवि का अध्ययन। शब्दों का सुंदर से सुंदर उपयोग—कवि की कला। शब्द ही भिन्न-भिन्न प्रकृतियों के रूप! आधुनिक साहित्यकार इस दिशा में पिछड़े

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



हैं ! व्याकरण। कोष। पद। पदों की योग्यता वाक्य की आकांक्षा। पदों की सन्निधि।

शब्द-शक्ति—अभिधा। एक शब्द के अनेकों अर्थ क्यों ? अनेकार्थक शब्द के अभिलषित अर्थ का निर्णय। लक्षणा। व्यंजना। ध्वनि। गुणीभूत व्यंग्य। व्यंग्यार्थ कैसा हो ?

कविता-पाठ—काकु। अभिप्रायानुकूल कविता-पाठ भी कला है ! पाठ के दोष। कविता-पाठ कैसे करें ?

गुण—विवेचन। माधुर्य। ओज। प्रसाद।

रस—विवेचन। वेदना का अर्थ। रस और स्थायी भावों के सम्बंध। रस और उनके अंग। रसों के भेद। रसोंमें प्रधान। रसोंके वर्ण। रसों के देवता। परस्पर मित्र रस। परस्पर विरोधी रस।

दोष—विवेचन। शब्द-दोष। वाक्य-दोष। वाक्य कैसे हो ? विशेषणों का महत्व। अर्थ-दोष।

साहित्य—विवेचन। साहित्य और काव्य। काव्य का इतिहास। प्रवृत्ति। वृत्ति। रीति।

छंद—गद्य और पद्य। गीत आपसे आप बनते हैं—आपसे आप निकलते हैं। क्या छंद काव्य की सरल गति में बाधक होते हैं ? मात्रा। ह्रस्व और दीर्घ के नियम। चरण। साधारण छंद। दण्डक छंद। चरणांतों की स्वराक्षरमैत्री ( तुक )। सममात्रिक छंद। अर्धसममात्रिक छंद शुभाशुभ गण। शुभाशुभ अक्षर। गति और यति। चार से लेकर छब्बीस अक्षरों के साधारण वार्णिक छंद। दण्डक छंद। मुक्त छंद। छंदों का अध्ययन।

## कविता की चोरी

कविता की चोरी का अर्थ। शब्द हरण। अन्यथाकरण। अर्थ-हरण। दूसरे की कविता के पूर्वापर का विपर्यय कर। उसका कोई एक खण्ड लेकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



उसी के आधार पर। संक्षिप्त अर्थ को विस्तृत कर। भाषा में परिवर्तन कर। छंद में भेद कर। हेतु में भेद कर। प्रसंग में भेद कर। भिन्न-भिन्न कई रचनाओं के अनुकूल अर्थों को एकत्र कर। इधर-उधर थोड़ा-घना संस्कार कर। अलंकृत को अनलंकृत कर। सामान्य में विशेषाभिधान कर। गौण अंश को प्रधानता देकर। उक्ति विशेष से चमत्कारोत्पादन कर। विकृत व्यञ्जना को प्रकृतरूप देकर। विरोधी धर्मों का आरोप कर। उत्प्रेक्षा के बल पर। विधि को निषेधरूप देकर। कथन मात्र में भेद कर। अर्थान्तरण द्वारा विशेषता पूर्वक व्यवहार कर। कन्दभूत अर्थ को नाना दिशाओं में अंकुरित और विस्तृत कर।

किसी को कविता की चोरी क्यों करनी पड़ती है? किन-किन परिस्थितियों में ऐसी चोरियां की जाती हैं?

## मङ्गलवाद

मङ्गलवाद का अध्ययन। काव्य में मङ्गलवाद का प्रारंभ। तार्किकों की दृष्टिमें मङ्गलवाद। मङ्गलवाद का वैज्ञानिक विश्लेषण। मङ्गलवाद का रहस्योद्देश्य—कवि के मन की समाधि और बुद्धि की विशुद्धि। व्यवसायात्मिका बुद्धि और व्याकरणात्मक मन। कवि मन में ही मङ्गलपाठ क्यों नहीं कर लेता? मंगलाचरण के प्रकार।

## कवि के देश में

कवि के भोजपत्र। चन्दन। मयूर। मकर। मोती। शेफालिका। मालती। चन्द्रिका। अन्धकार। चक्रवाक। चकोर। कुन्द। अशोक। कर्णिकार। कुरवक। चंपा। तिलक। नमेरु। प्रियंगु। मन्दार। सहकार। वकुल। नीलकमल। कुमुद। पद्म। नदी। समुद्र। हंस। मानसरोवर। कामदेव। विशेषाभिधान। निषेध।

किन-किन पदार्थों का नील, श्वेत, लाल, पीत, धूसर, हरित, अथवा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



चित्र वर्णन किया जाता है ? किन-किन बातों को कविवर्ग असत्य होते हुए भी सत्य कहता है ? किनको सत्य होते हुए भी असत्य कहता है ? किनको ऐसे भी कहता है और वैसे भी ? किनका नियमतः अभिधान करता है।

कवि की दृष्टि में कौन पदार्थ तीक्ष्ण, कौन वक्र, कौन गुरु, कौन लघु, कौन अमधुर, कौन त्रिकोण, कौन वलिष्ठ, कौन अत्यन्त सुन्दर, कौन स्थिर, कौन मन्दगामी, कौन अस्थिर और कौन मधुर आदि होते हैं ?

अङ्गवसन। अङ्गवास। कौन अङ्ग कैसे हों ? इन पर उत्प्रेक्षाएं। स्त्रियों के श्रृंगार। स्त्रियों के आभूषण। पुरुषवर्णन। नृपवर्णन। शुभ लक्षण। उपमा की स्थापना। उपमा देने के विभिन्न प्रकार। उपमा और उत्प्रेक्षा। उपमा में दोष।

## कवि-शिक्षा

कवि-शिक्षा की पाँच कक्षाएं। कवित्व शक्ति। अकवि कवि कैसे होंगे ? प्रतिभा। कवित्व शक्ति को जाग्रत कैसे करें ? गुरु कैसे हों ? कवित्वशक्ति में चेतना उत्पन्न करने के उपाय। काव्य रचना का अभ्यास। समस्यापूर्ति। समस्यापूर्ति की उपयोगिता। समस्या कैसी हो ? समस्यापूर्ति में विचारणीय विषय। समस्यापूर्ति के प्रकार। कवित्वशक्ति को प्रौढ़ कैसे करें ? इसके लिए आवश्यक आचरण। कवि किन दोषों से बचें ? कवि की रचना में चमत्कार। चमत्कार के भेद। कवि का स्वास्थ्य। कवि का स्वभाव। कवि का निवास। कवि का परिचारकवर्ग। कवि के गृह में भाषा का नियम। कवि और लोक। कवि का सम्मान। कवि के हित की बातें। कवि और आलोचक। कवि की दिनचर्या। क्या कवि को अपने काव्य नष्ट करने का अधिकार है ? काव्यविनाश के कारण। राजा और कवि।

## कवि-कोष

कवि को सर्वज्ञ होना होगा। जगत-विचार।

स्वर्ग का अध्ययन—देवता। देव योनियाँ। ब्रह्मा, विष्णु, महेश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



आदि-आदि देवता तथा देवियाँ और उनकी विशेषताएँ। देव-ऋषि। देवसभा। देव भोज्य। देवपेय। देवनदी। देवतरु। देवलता। देववैद्य। देव वेश्याएँ। देवगायक। देवगुरु। देववाणी। देवपात्र। दैव। अहोरात्र, संवत्सर, शताब्दि, आयु, महायुग, कल्प, इन्द्रपतन, मन्वन्तर, सृष्टि की क्रिया और विनाश आदि।

अग्नि। वायु। आकाश। मेघ आदि। ग्रह। नक्षत्र। राशियाँ। ग्रहों की गति। शुक्ल-कृष्णपक्ष का रहस्य।

भूलोक का अध्ययन—द्वीप। वर्षपर्वत और वर्ष। भारतवर्ष। प्राचीन भारत। पूर्वदेश। दक्षिणपथ। पाश्चात्य देश। उत्तरदेश। मध्यदेश। अंग, कलिंग, कोशल, मगध, विदेह, आंध्र, अवन्ती, उत्कल देश, प्राग्ज्योतिष, कामरूप, कुन्तल, केरल, विस्ता, पुण्ड्र, चेदि, दशार्ण, द्राविड़, निषध, पांचाल, पद्मपुर, महोदय, लाट, वंग, सौराष्ट्र, विदर्भ आदि। सागर और पाताल लोक का अध्ययन। दिशाओं का अध्ययन। काल का अध्ययन।

भारतीय राजनीति का अध्ययन—अमात्य। कर्मसचिव। महामात्र। पुरोहित। अक्षदर्शक। प्रतीहार। रक्षिवर्ग। कोषाध्यक्ष। अन्तःपुर। अन्तःपुराधिकृत। अनुजीवी। वयस्य। विदूषक। पारिषद। पार्ष्णिग्रह। मंत्रणा। राज्य-विस्तार। नीति। गुण। रानी। राजकुमार। सेनाधिप। सैन्य। दूत। दुर्ग। हस्ती। अश्व। रथ। प्रयाण। युद्ध। राजधानी। प्रासाद। क्रीडोद्यान। आखेट। कर। शिविर। वैतालिक। मागध। वंदी। बंदिशाला। वंधनगृह। वध्यस्थल। गणिका आदि। अधीश्वर। मण्डलेश्वर। सम्राट। राज्य के अंग। राजगुण। शक्ति। उपाय। भारतीय राजाओं के आदर्श।

पर्वत, देश, पुर, ग्राम, गृह, अरण्य, उद्यान, वृक्ष, पशु-पक्षी, आश्रम, सर, सरिता आदि का अध्ययन।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



संख्या को पद्य में कैसे लिखें ? द्विपद, त्रिकाण्ड, चतुरुपाय, पञ्चद्रव्य और इसी प्रकार और भी जितने भी संख्या-संकेत हैं उनका स्पष्टीकरण।

[ कवि-कोष में पर्यायवाची शब्द भी लिखे गये हैं। उनसे पदार्थ-विशेष की विशेषता सरलता पूर्वक समझी जा सकती है। अध्यापकों को चाहिये कि बालकोंको व्युत्पत्तिपूर्वक पर्यायवाची शब्दों का अध्ययन करावें। ]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi